भारत का इतिहास

(1526 ई0 से 1857 ई0)

बी.ए.—II

(Option-I)

Directorate of Distance Education
Maharshi Dayanand University, Rohtak

भारत का इतिहास
(1526 ई0 से 1857 ई0)

बी.ए.– II

Option-I

दूरस्थ शिक्षा दिनेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक – 124001

Copyright c 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved, No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written prermission of the copyright holder

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

विषय सूची

भाग–1

अध्याय 1 मुगलों का आगमन व द्वितीय अफगान साम्राज्य

अध्याय 2 मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ीकरण तथा उसका सीमा विस्तार 2 2

अध्याय 3 मुगलों की राजपूत नीति 2 9

अध्याय 4 मुगलों का शासन प्रबन्ध 5 1

भाग–2

अध्याय 5 मुगलों के समय आर्थिक जीवन

अध्याय 6 मुगल काल में समाज

अध्याय 7 मुगल काल में चित्रकला तथा भवन निर्माण

अध्याय 8 अकबर की धार्मिक नीति 7 2

अध्याया 9 मुगल साम्राज्य का पतन 8 2

भाग–3

अध्याय 10 भारत में यूरोपिय शक्तियों का आगमन

अध्याय 11 बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार 1 0

अध्याय 12 ब्रिटिश काल में पश्चिमी शिक्षा का विकास 1 2 2

अध्याय 13 षि व्यवस्था में परिवर्तन व नवीन भू लगान प(तियाँ 1 2 8

अध्याय 14 1857 का विद्रोह 1 3

History of India
(C. AD 1526-1857)
n-I (B.A.-II- Option-I)

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Note : 1. At least 10 questions, will be set up. Candidates will have to attempt questions in all selecting at least on question from each section.

2. *There shall be a compulsory question on the map carrying 20 marks (12 for map work and 8 for explanatory notes). BlinD candidates may not attempt the map question. In lieu of the map question, they may attempt any other question. However, in case, they wish to attempt the map question, the part relating to the explanatory note will carry full marks.*
3. *There shall be one objective question. The question will divided into thre parts : Section I will have snap short type question of 10 marks, section II will have Multiple choice question and of 5 marks, section III will have matching type question of five marks.*

Unit-I

1. Advent of the Mughals and the second Afghan Empire.
2. Consolidation and territorial expansion under the Mughals.
3. Mughal Empire till 1707-Relations with Rajputs.
4. Mughal administration and institutions : administrative structure; land revenue system; manasabdari' and jagirdari.

Unit-II

1- Economics and technological development: agriculture, Industry, trade, commerce and urban centres.
2. Society under Mughals
   (i) Social classes-ulema; nobility, zamindars, peasantry, artisans, agricultural labour and slaves
   (ii) Status of women.
3. Art and architecture under Mughals.
4. Religion and Culture : Religious policies of Akbar and Aurangzeb, Sufism, Bhakti Movement and Composite Culture
5. Decline and disintegration of Mughal Empire.

Unit-III

1. Advent of European powers : Portugueses, French: and English.
2. Expansion and Consolidation of British rule : Occupation of Bengal, Warner Hastings, Lord Wellesley, Lord Hastings, Lord Dalhousis.
3. Social Changes : Spread of Western education upto 1854: Raja Ram Mohan Rai and early social reformers; development of means of communication.
4. Economic changes : Land revenue settlement-Permanent Settlement, Rayatwari and Mahalwari; decline of cottage industry and de-industrialisation.
5. Early resistence against Company's rule : Revolt of 1857 causes; nature and results.

Unit-IV

1. Political condition of India in 1526.
2. Mughal Empire at the death of Akbar (1605)
3. Indian Powers and Kingdoms around 1765.
4. Centres of early resistance to Company's Rule.
5. Areas and Centres of Socio-religious movements in early 19th century Indian.

Unit-V

Objectives Types Questions

भाग-1

अध्याय-1

मुगलों का आगमन व द्वितीय अफगान साम्राज्य

(Advent of Mughals and Second Afghan Empire)

मुगल वास्तव में मंगोल और तुर्क जातियों की संतान थे। क्योंकि लेनपूल जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार यह मानते हैं कि 'बाबर जो भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक था, की रगों में मध्य एशिया के दो महान विजेताओं चंगेज खाँ ;मंगोलद्ध व तैमूर ;तुर्कद्ध के रक्त का सम्मिश्रण था। 1526 में जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत की राजनीतिक दशा डांवाडौल एवं असन्तोषजनक थी। तुजुके–ए–बाबरी तथा अन्य एतिहासिक स्रोतों के आधर पर बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है।

उस समय उत्तरी भारत छोटे–छोटे स्वतन्त्र राज्यों के एक जमघट के समान था वे सदा एक दूसरे से लड़ते झगड़ते रहते थे। उत्तर भारत में उस समय दिल्ली, पंजाब, बंगाल, जोनपुर, मेवाड़, मालवा, गुजरात, सिन्ध, कश्मीर, उड़ीसा आदि अनेक छोटे–छोटे राज्य थे। और यही अवस्था दक्षिण की थी।

1. **दिल्ली राज्य** : दिल्ली राज्य को वह शान जो कभी खिलजी व तुगलक शासकों के समय थी अब जाती रही थी। अब वह राज्य बहुत संकुचित सा रह गया था। बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली पर इब्राहिम लोधी का राज्य था कहने को तो इस राज्य में पंजाब, दिल्ली, आगर दोआब, अवध, जोनपुर और बिहार आदि अनेक प्रदेश सम्मलित थे परन्तु वास्तव में इब्राहिम लोधी का प्रभाव दिल्ली व उसके आसपास के कुछ भागों तक ही सीमित था। इसका कारण यह था कि वह राज्य आगे अनेक छोटे–छोटे और लगभग स्वतन्त्र प्रान्तों तथा जागीरों में बंटा हुआ था। इन जागीरों तथा प्रान्तों में राजा की अपेक्षा वहां के जागीरदारों और गर्वनरों का अधिक प्रभाव था। और लोग प्रायः उन्ही का कहा मानते थे। एर्सकिन के अनुसार "दिल्ली का लोधी राज्य बहुत थोड़ी सी स्वतन्त्र रिसायतों जागीर तथा प्रान्तों का एक जमघट था, जिनका शासन प्रबन्ध कुछ पुराने परम्परागत सरदारों, जमींदारों, द्वारा चलाया जाता था। वहां की जनता अपने नजदीकी गर्वनरों को जिनके हाथ में उनका सुख दुख था उस शासन की अपेक्षा अधिक मान्यता देती थी जो उनसे कोसों दूर था।"

   इब्राहिम लोधी के कठोर स्वभाव, अकुशल प्रशासन तथा मूर्खतापूर्ण कार्यों के कारण पंजाब के सरदार दौलत खाँ लोधी और शक्तिशाली अफगान सरदार आलमखाँ और अनेक राजपूत उनके घोर शत्रु थे।

2. **बंगाल** : मुहम्मद तुगलक के समय बंगाल मुबारक शाह के अधीन (1838–39) में स्वतन्त्र हो गया था सिकन्दर लोधी ने एक बार इसे अपने अधीन करने की कोशिश की परन्तु सफल नहीं हो सका और बंगाल स्वतन्त्र ही बना रहा बाबर के आक्रमण के समय बंगाल में नुसरत शाह जैसा योग्य शासक राज्य कर रहा था।

3. **जोनपुर** : जोनपुर जिसकी नींव फिरोजशाह तुगलक ने अपने राज्यकाल में रखी थी वे नसीर खाँ लोहानी स्वतन्त्र रूप से शासन कर रहा था। उसने अवध तथा बिहार पर भी शासन कर लिया था। और वह इब्राहिम लोधी के प्रति घोर शत्रुता रखता था।

4. **मेवाड़** : राजपुताना में उस समय कई छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्य थे। जिनमें सबसे प्रसि(मेवाड़ था। बाबर के आक्रमण

के समय मेवाड़ में राणा सांगा शासन करता था। उसने अपने अधीन राजपूत शासकों का एक संघ संगठित कर रखा था। उसने अपने जीवनकाल में 100 से अधिक लडाईयां जीती थी। उसने यु(में अपनी एक आंख और भुजा खो दी थी। इसीलिए टाड ने उसे "सिपाही का अंश" (Fragment of a soldier) कहा है, यही नहीं बाबर ने भी अपनी आत्मकथा में राणा सांगा के पराक्रमों की प्रशंसा की है। राणा सांगा इब्राहिम लोधी के प्रति घोर शत्रुता रखता था।

5. **मालवा** : मालवा में महमूद खिलजी राजपूत सरदार मेदनी राव की सहायता से राज्य कर रहा था। उसने जब मेदनी राव के बढ़ते प्रभाव को रोकने का प्रयास किया तो मेवाड़ के शासक राणा सांगा की मदद से मेदनी राव ने मुहम्मद खिलजी को पराजित किया और स्वयं चन्देरी का स्वतन्त्र शासक बन गया। यद्यपि राणा सांगा ने उदारता दिखा कर मालवा का राज्य मुहम्मद द्वितीय को वापस कर दिया था लेकिन वह अपनी अयोग्यता के कारण मालवा की स्थिति सुधार नहीं सका।

6. **गुजरात** : गुजरात 1297 में अलाऊदीन खिलजी ने विजय किया था। परन्तु 1401 में गुजरात जाफरखाँ के अधीन स्वतन्त्र हो गया। बाबर के आक्रमण के समय इस प्रदेश पर मुजफ्फरपुर शाह द्वितीय का शासन था। उसे जीवन भर मालवा के मेवाड़ के शासकों से युद्ध करने पड़े, 1520 ई. में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र बहादुरशाह गद्दी पर बैठा।

7. **सिन्ध** : यह प्रदेश मुहम्मद तुगलक के समय से ही स्वतन्त्र हो गया था। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में सुमरा वंश शक्तिविहीन हो चुका था। ऐसी अवस्था का लाभ उठाकर कन्धार के गर्वनर शाहबेग ने 1520 ई. में सिन्ध पर अधिकार कर लिया और वह स्वयं अपना कन्धार का प्रान्त बाबर के लिए छोड़ आया जिसका मुकाबला करने में वह असमर्थ था 1526 ई. में बाबर के आक्रमण के समय सिन्ध पर शाहबेग का बेटा शाह हुसैन राज्य कर रहा था। जिसने मुलतान को भी विजय कर अपने राज्य में मिला लिया था।

8. **कश्मीर** : कश्मीर चौदहवीं शताब्दी में शाह मिर्जा के अधीन स्वतन्त्र हो चुका था। बाबर के आक्रमण के समय कश्मीर में आपसी लडाई झगड़े के कारण अशान्ति फैली हुई थी। अन्त में हुमायूँ के समय कश्मीर मुगल राज्य के अधीन हो गया।

9. **उड़ीसा** : उड़ीसा एक हिन्दू राज्य था। जिसका उत्तरी भारत की राजनीति में कोई महत्त्व नहीं था। परन्तु इस राज्य ने एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि इसने बंगाल की ओर से फैलते मुस्लिम राज्य को रोके रखा।

10. **खानदेश** : तैमूर के आक्रमण का लाभ उठा कर फिरोज तुगलक द्वारा नियत किया हुआ अधिकार मलिक फारूकी स्वयं स्वतन्त्र शासक बन बैठा। खानदेश के शासकों के गुजरात को शासकों के साथ लगातार युद्ध चलते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से लेकर बाबर के आक्रमण तक इस राज्य में भी अशान्ति मची रही। अन्त में अकबर के समय में इसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

11. **दक्षिण** : मुहम्मद तुगलक के समय में दक्षिण स्वतन्त्र हो गया और वह दो बड़े साम्राज्यों विजय नगर व बहमनी का उदय हुआ। बाबर के आक्रमण के समय बहमनी राज्य पाँच भागों – बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, अहमदनगर और बरार में विभक्त हो चुका था। इन राज्यों क दक्षिण में विजय नगर का राज्य था, जो कि इन राज्यों के साथ निरन्तर युद्धों में लीन था।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन

बाबर का वास्तविक नाम जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर था। उसका पिता उमर शेख मिर्जा तैमुर के वंश का था, और उसकी माता कुतुलुग निगार खानम, प्रसिद्ध मंगोल नेता चंगेज खाँ की वंशज थी। प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि "बाबर की नसों में मध्य एशिया के दो महान योद्धओं चंगेज खाँ और तैमूर का रक्त था" इसलिए बाबर में मंगोलों सा बल व तुर्कों सा साहस होना स्वाभाविक था।

जब 1483 में बाबर का जन्म हुआ तो उसका पिता तुर्कीस्तान की एक छोटी सी रियासत फरगना का मालिक था। उमरशेख मिर्जा की मृत्यु 1494 में हो गई, उस समय बाबर की आयु केवल 11 वर्ष थी। इतनी छोटी आयु में ही उसे न केवल फरगाना की रियासत के प्रबन्ध का भार अपने कन्धें पर लेना पड़ा, बल्कि कई शत्रुओं का सामना भी करना पड़ा। उसके सगे सम्बन्धी

और उजवेग सरदार शेबानी खाँ उसकी रियासत को छीनना चाहते थे। परन्तु बाबर ने कुछ समय के लिए उनके इरादों को विफल कर दिया और सुरक्षित रूप से फरगाना का प्रबन्ध संभाल लिया।

बाबर के पिता उमर शेख मिर्जा ने समरकन्द पर अधिकार करने का असफल प्रयास किया। बाबर ने भी इस महत्त्वपूर्ण नगर, जो कभी तैमूर की राजधानी थी जीतने के कई प्रयत्न किए। इसे दो बार सफलता भी प्राप्त हुई परन्तु उसकी ये सफलताएं क्षणिक रही। जब दूसरी बार बाबर ने समरकन्द पर अधिकार किया तो उसे शीघ्र ही यह समाचार प्राप्त हुआ कि उजवेग सरदार शेबानी खाँ ने उसकी फरगाना रियासत पर अधिकार कर लिया है। जब वह फरगाना पर अधिकार करने गया तो विद्रोही सरदारों ने समरकन्द पर भी अधिकार कर लिया इस तरह बाबर के हाथों से समर कन्द और फरगाना दोनो ही जाते रहे। अपनी आत्मकथा तुज्क–ए–बाबरी में उसने लिखा है कि "फरगाना की खातिर मैने समरकन्द छोड़ा था। परन्तु अब लगा कि मैनें दूसरे को प्राप्त किए बिना, पहला भी गवां दिया।"

समरकन्द और फरगाना दोनों को खोने के बाद बाबर काबुल की तरफ अपना भाग्य आजमाने चल पड़ा। काबुल से वहां के असुन्तुष्ट सरदारों की सहायता से उसने 1504 ई. में मनीम नामक शासक को पराजित किया। उसने काबुल के बाद गजनी और उसके आसपास के इलाकों को जीता। काबुल में अपनी स्थिती सुदृढ़ करने के लिए उसने अपने पूर्वजों के राज्य समरकन्द को उजबेगों से प्राप्त करने का असफल प्रयत्न किया। जिन दिनों बाबर समरकन्द को जीतने का प्रयत्न कर रहा था। उन्हीं दिनों मध्य एशिया में तीन महान शक्तियों में (उजबेग, सफावी तथा तुर्की) में संघर्ष चल रहा था। 1510 ई. में ईरान के शाह इस्माइल ने उजबेग नेता शेबानी खाँ को एक महत्त्वपूर्ण लड़ाई में पराजित कर मार डाला। अब एशिया ईरान एवं सुन्नी आटोमन साम्राज्य को प्राप्त हुई उजबेग ट्रांसआक्सियाना के निर्विरोध स्वामी बन रहे। ईरान में शियाओं का प्रभाव सीमित रहा। बाबर ने उजबेगों से अपने खोए साम्राज्य को प्राप्त करने का प्रयास पुनः जारी किया लेकिन उसने शीघ्र ही समझ लिया कि वह उस विशाल शक्ति से टक्कर लेने की स्थिति में नहीं है। इसलिए उसने पश्चिम (मध्य एशिया) के स्थान पर पूर्व (भारत) की ओर ध्यान दिया।

बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहन देने वाले कारण

1. **बाबर की महत्त्वकांक्षा** : बाबर को भारत की डावांडोल राजनैतिक स्थिति ने ही आक्रमण करने की प्रेरणा नहीं बल्कि कुछ अन्य कारणें से भी उसे ऐसा करने को प्रोत्साहित किया। जैसे कि उसकी महत्वाकांक्षा, बाबर तत्कालीन अन्य अनेक शासकों की तरह महत्वाकांक्षी था। बाबर स्वंय कहता था, "काबुल की प्राप्ति से लेकर (1504 ई) पानीपत की विजय (1526) तक मैने कभी हिन्दुस्तान को जीतने का लक्ष्य नहीं छोड़ा।" उसे इस महान कार्य को करने के लिए उपर्युक्त अवसर ही नहीं मिला। पहले तो बाबार समरकन्द (जिसे वह बहुत प्यार करता था) को प्राप्त करने के लिए लगातार संघर्ष में ही जुटा रहा। जब उसे प्राप्त करने में वह पूर्णतया असफल हो गया तो उसने अपने साम्राज्य विस्तार की महत्वकांक्षा को भारत विजय पर पूरा करना चाहा।

2. **भारत की आत्याधिक सम्पत्ति** : कुछ विद्वानों के विचारानुसार बाबर ने भारत पर आक्रमण यहाँ की अतुल सम्पत्ति से आकर्षित होकर किया। जिस तरह पहले अनेक मध्य एशिया से आक्रमणकारी धन प्राप्त करने के लिए आए उसी तरह बाबर भी धन प्राप्ति के उद्देश्य से आया थां भारत को उस समय सोने की चिड़िया कहा जाता था। बाबर ने भारत की सम्पत्ति के बारे में अनेक कहानियाँ सुन रखी थीं उसका पूर्वज तैमूर यहाँ से अपार धन दौलत ले गया था।

3. **कानूनी अधिकार एवं दायित्व** : दिल्ली सल्लनतकालीन सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के बाद तैमूरलंग ने भारत को जीता। उसने पंजाब के कुछ क्षेत्रें को भी अपने राज्य में मिला लिया जो बाद में तैमूर के उत्तराधिकारियों के अधीन थे। जब बाबर ने काबुल पर अधिकार कर लिया तो उसने पंजाब व अन्य प्रदेशों पर अधिकार करना अपना कानूनी अधिकार समझा। यही विचार रखते हुए वह भारत को जीतने के लिए निकल पड़ा।

4. **भौगोलिक कारण** : काबुल से भारत बहुत नजदीक है। इस प्रकार भौगोलिक कारणों ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह भारतीय क्षेत्र को अपने काबुल राज्य में आसानी से मिला सकता था।

5. **काबुल की आय बहुत कम थी** : बाबर को काबुल से प्राप्त होने वाली आय बहुत कम थी। उसे कई बार अपनी सेना एवं कर्मचारियों को वेतन देने में कठिनाई होती थी। उसके पास कुछ सीमांत प्रदेश ऐसे थे जहां पर उसे आय प्राप्ति से अधिक खर्च करना पड़ता था। इसलिए उसने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए पंजाब जैसे उपजाऊ प्रदेश को

जीतना चाहा।

6. **निमंत्रण पत्र** : कुछ इतिहासकारों के अनुसार बाबर को इब्राहिम लोदी पर आक्रमण करने के लिए पंजाब के शासक दौलत खाँ लोदी एवं सुल्तान इब्राहीम के चाचा आलमखां ने अलग–अलग निमन्त्रण दिया था। सम्भवतः इन्हीं दिनों मेवाड़ के राणा सांगा एवं बाबर में भी कुछ राजनैतिक साठ गांठ हुई थी इसी प्रकार का एक निमंत्रण प्राप्त हुआ। इन निमंत्रणों से प्रेरित होकर बाबर ने भारत को जीतना चाहा।

7. **उजबेगों का भय** : बाबर का भारत की तरफ बढ़ने का एक कारण यह भी था कि उसने दिल में उजबेग आक्रमणों का काबुल पर डर था। उसने भारत को काबुल की तुलना में अधिक सुरक्षित स्थान समझा। उसने यह भी सोचा कि भारत में वह उजबेगों के विरूद्ध अपनी शक्ति आसानी से तथा निर्भय होकर सुदृढ़ कर सकेगा।

बाबर की प्रारम्भिक विजय

विभिन्न कारणों तथा कारकों से प्रेरित होकर बाबर ने भारत के विरू(अपना सैनिक अभियान शुरू किया। पानीपत की लड़ाई के पूर्व बाबर ने भारत पर चार आक्रमण किये। प्रथम आक्रमण, बाबर ने भारत पर 1519 ई. में किया। उसने बजौर के किले पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद बाबर ने झेलम नदी के किनारे पर स्थित भीरा नामक स्थान पर भी अधिकार किया। इसके बाद वह काबुल लौट गया। दूसरा आक्रमण, बाबर ने 1519 ई. के अन्त में किया। इस बार उसने पेशावर में किलाबंदी करने की कोशिश की परन्तु बदख्शां में गड़बड़ी फैलने के कारण वह इस कार्य को अधूरा छोड़कर ही वापस चला गया। तीसरा आक्रमण, बाबर ने 1520 ई. में किया था। इस बार उसने स्यालकोट और सैय्यदपुर पर अधिकार कर लियां इस बार भी वह आगे न बढ़ सका। क्योंकि कंधार में गड़बड़ हो जाने के कारण उसे वापस लौट जाना पड़ा। चौथा आक्रमण बाबर ने 1524 ई. दौलत खां के निमंत्रण पर किया। इस बार उसने लाहौर, दीपालपुर तथा जालंधर पर अधिकार कर लिया। उसने दौलतखां लोदी को केवल जालंधर सुल्तानपुर के क्षेत्र ही दिये और शेष पंजाब का इलाकां एवं दिलावरखां नामक सरदारों को केवल देखरेख के लिए देकर बाबर स्वयं काबुल लौट गया। परन्तु उसके भारतीय मित्रें दौलतखां, दिलावरखां और आलमखां ने तुरन्त ही अपनी गलती महसूस की। जब उन्होंने देखा कि भारत में जीते हुए प्रदेशों को छोड़ने का बाबर का कोई इरादा नहीं है तब वे उसके विरूद्ध हो गए। 1525 ई. में जब बाबर पेशावर में था, उसे समाचार प्राप्त हुआ कि दौलतखां लोदी ने पुनः अपना पाला बदल लिया है बाबर ने बड़े पैमाने पर आक्रमण की तेयारियां शुरू कर दी। बाबर ने शीघ्र ही लाहौर की ओर बढ़ती हुई दौलतखां लोदी की सेना को पराजित किया। उसने बाबर से क्षमा याचना की। बाबर ने भी उसे माफ कर दिया। इस प्रकार सिन्ध नदी पार करने के 20–22 दिनों के भीतर ही उनका पंजाब के अधिकांश भाग पर अधिकार हो गया। अब दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी से संघर्ष अवश्यम्भावी था।

पानीपत की प्रथम लड़ाई (21 जुलाई 1526 ई.)

बाबर अपनी सेना के साथ 1526 ई. में पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में पहुँचा। इब्राहीम लोदी लगभग एक लाख सैनिकों तथा एक हजार हाथियों के साथ उसका सामना करने के लिए आ पहुँचा। बाबर के पास केवल 12 हजार सैनिक थे। यद्यपि बाबर की सेना संख्या में इब्राहिम लोदी से बहुत कम थी लेकिन उसने अपनी सेना की व्यूह रचना वैज्ञानिक तरीके से की। बाबर की रणपद्धति को इतिहास में रूमी या तुलगमा पद्धति के नाम से जाना जाता है। बाबर ने इस प(ति के अनुसार अपनी सेना का एक बड़ा भाग पानीपत शहर में सुरक्षित रखा तथा बाकी सेना को लेकर एक लाभकारी स्थान पर मोर्चा लगाया। उसकी सेना दायीं ओर से पानीपत शहर की ओर से सुरक्षित थी तो बाईं और से खाईयों से सुरक्षित थी। इन खाइयों को बाबर ने पेड़ों की शाखाओं और पत्तियों से ढक दिया था। उसने सेना के केन्द्रीय भाग के सामने 700 गाड़ियां चमड़े की रस्सियों से परस्पर बांध कर लगा दी। गाड़ियों के बीच–बीच में जगह छोड़ दी गई थी। जहां से सैनिक शत्रु पर एक साथ हमला कर सकते थे। हर दो गाड़ियों के बीच ईंटों की छोटी–छोटी दीवारें बना दी गई थी ताकि सैनिक उन पर अपनी बंदूकें व बारूद रख सकें ताकि समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर आत्मरक्षा के लिए उनकी ओट ले सकें। 700 गाड़ियों के दाईं और बाईं ओर तोपचियों को लगा दिया गया था। तोपचियों की रक्षा के लिए कुछ मोर्चे भी बनाए गए थे। उस्ताद अली और मुस्तफा ने क्रमशः तोपचियों का दायां और बायां पक्ष सम्भाल लिया। घुड़सवार सेना को तीन भागों में बांट दिया गया। इस सेना का बायां पक्ष योग्य सेनापति मोहम्मद मिर्जा के अधीन था तो दायां बाबर के पुत्र हुमायूँ के अधीन था। बाबर ने स्वयं सेना का मध्य पक्ष सम्भाला। इस तरह बाबर ने वैज्ञानिक एवं कुशल युद्ध पद्धति का प्रयोग इब्राहिम के विरूद्ध किया। दूसरी और इब्राहिम लोदी एक विशाल सेना को

लेकर पुरानी युद्ध पद्धति से बाबर से लड़ने को तैयार था। दोनों सेना एक सप्ताह तक आमने सामने खड़ी रहीं। 21 अप्रैल को बाबर ने अधीर होकर अपनी सेना को इब्राहिम की सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। 2 अथवा 3 घन्टों तक युद्ध होता रहा। अनुमान है कि इब्राहिम के अतिरिक्त उसके 1500 से अधिक सैनिक इस लड़ाई में मारे गए। बाबर ने स्वयं लिया है, "सर्वशक्तिमान ईश्वर की दया और कृपा से दिल्ली की विशाल सेना आधे दिन के अन्दर अन्दर धूल में मिल गई।" इस प्रकार बाबर ने एक शानदार विजय प्राप्त की तथा मुगल अफगान संघर्ष का प्रथम चरण समाप्त हो गया।

अफगानों के विरूद्ध बाबर की विजय के कारण

1. **बाबर का तोपखाना** : बाबर का तोपखाना भी उसकी विजय का एक महत्त्वपूर्ण कारण था। बाबर ने पनीपत की प्रथम लड़ाई में बारूद का प्रयोग किया। उसकी तोपों का भारतीय शूरवीर सैनिक भी सामना ना कर सके। बाबर के अत्यंत निपुण तोपची उस्ताद अली तथा मुस्तफा थे। जिन्होंने लड़ाई के मैदान में तबाही मचा दी। सामने की ओर से बाबर के तोपचियों ने अच्छी निशोनबाजी की। प्रसिद्ध इतिहासकार आर. बी. विलियम्स के अनुसार, "यदि किसी एक भौतिक तथ्य ने ही किसी और अन्य बात से उसका ;बाबर कीद्ध अन्तिम विजय का एक मार्ग बनाया तो वह उसका शक्तिशाली तोपखाना था।"

2. **बाबर का योग्य सेना नेतृत्व** : बाबर एक योग्य सैनिक तथा कुशल सेनाध्यक्ष था। उसने युद्ध क्षेत्र में तुलगमा युद्ध पद्धति को अपना कर यह प्रमाणित कर दिया कि वह इब्राहिम से अधिक कुशल सेनापति है उसने सेना को तीन भागें में बांटा। उसने मोर्चाबंदी इस ढंग से की जिससे वह अपनी छोटी सी सेना से लोदी की विशाल सेना को हरा सका। उसने कुछ सेना को रिजर्व रखकर आवश्यकता अनुसार प्रयोग किया। उसने उज्बेगों तुर्की व इरानियों से कुशल सेना नीतियां सीख ली थी, जिन सब का प्रयोग उसने पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी के विरूद्ध किया।

3. **इब्राहिम लोदी को अलोकप्रियता व अकुशलता** : इब्राहिम लोदी को व्यवहार अच्छा नहीं था। जिससे कुछ सरदार गुप्तरूप से बाबर से मिल गए। उन्होंने बाबर की सहायता भी की। उसने अलोकप्रिय होने के कारण अन्य भारतीय शासकों ने उसे सैनिक सहायता नहीं दी। इब्राहिम लोदी सैनिक एवं नेतृत्व की दृष्टि से बाबर के समान कुशन नहीं था। उसके दुष्ट व्यवहार के कारण ही उसका चाचा आलमखां तथा पंजाब का शासक दौलतखां बाबर से जा मिला।

4. **इब्राहिम द्वारा बाबर की शक्ति का गलत मूल्यांकन** : कुछ विद्वानों के विचारानुसार स्वयं इब्राहिम ने भी बाबर की विजय को निश्चित कर दिया। लोदी की सेना ने यह सोचा कि बाबर की सेना थोड़ी है तथा उसे हराना बहुत आसान है। इससे लोदी की सेना के जोश में कमी रही। बाबर ने भी अपनी आत्मकथा में लिखा है "भारतीय सैनिक मरना जानते हैं, लड़ना नहीं।" इससे भी बाबर को लाभ हुआ।

5. **लोदी द्वारा हाथियों का प्रयोग** : इब्राहिम लोदी ने अपनी सेना में हाथियों का प्रयोग बडी संख्या में किया। हाथियो की तुलना में मुगलों के घोड़े अधिक फुर्तीले थे। प्रायः युद्ध में घायल होकर हाथी मुड़कर अपनी ही सेना को रोंदता हुआ चला जाता था।

6. **भारतवासियों में आपसी फूट** : भारतवासियों में आपसी फूट के कारण भी बाबर को विजय प्राप्त हुई। दोलतखां ओर आलमखां जैसे इब्राहिम के सगे संबंधियों ने भी इब्राहिम की मदद नहीं की। भारत के बड़े–बड़े सरदार एवं राजा मिलकर एकता का परिचय देते हुए इब्राहिम की मदद करते तो बाबर कभी भी जीत नहीं सकता था।

7. **इब्राहिम लोदी के सैनिकों में निष्ठा की कमी** : इब्राहिम लोदी ने अधिकतर सैनिक अस्थाई रूप से सेना में भर्ती किये हुए थे। वे सभी भाड़े के सैनिक थे, बाबर के सैनिकों की तरह उनमें राष्ट्र प्रेम की भावना नहीं थी। लोदी की सेना अनेक सैनिक दलों का जमघट मात्र थी। इसी कारण वह तालमेल से न लड़ सकी क्योंकि हर सैनिक टुकड़ी अपने अपने सेनापति की आज्ञा का पालन कर रही थी। वह किसी एक सर्वमान्य कमांडर के अधीन नहीं थी।

8. **बाबर के तीरन्दाज** : बाबर को पानीपत के मैदान में इसलिए भी सफलता मिली क्योंकि उसके तीरन्दाज बहुत कुशल थे। स्वयं बाबर अपनी विजय का श्रेय अपने तीरन्दाजों को देता है।

पानीपत की प्रथम लड़ाई का महत्त्व

1. **लोदी वंश के शासन का अन्त** : पानीपत की प्रथम लड़ाई भारतीय इतिहास में एक निर्णायक लड़ाई मानी जाती हैं

इस लड़ाई के बाद भारत से लोदी वंश का शासन समाप्त हो गया था।

2. **मुगल वंश की स्थापना** : पानीपत की लड़ाई के बाद बाबर भारत ने धन लेकर नहीं गया। उसने यहाँ मुगल वंश की स्थाना की। अगर हम सूरी वंश अफ़गान शासकों के करीब 15 वर्षों के शासन को बीच में से निकाल दे तो इसी वंश ने 200 वर्षों से भी अधिक समय तक भारत में शासन कियां

3. **राजनैतिक स्वार्थों का स्थानान्तरण** : पानीपत की लड़ाई के पूर्व बाबर के राजनैतिक स्वार्थ प्रायः काबुल, और मध्य एशिया की तरफ टिके हुए थे। लेकिन अब उसके राजनीतिक स्वार्थ भारत में केन्द्रित हो गये। पहले काबुल उसकी राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र था और अब आगरा और दिल्ली उसकी राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

4. **बाबर चिंतामुक्त** : पानीपत की लड़ाई की सफलता को बाबर के जीवन में सबसे अधिक महतवपूर्ण सफलता मानते हुए इतिहासकार रस बूक विलियम्स ने ठीक कहा है, "इस यु(में विजय होने से बाबर के बुरे दिनों का अन्त हो गया और उसको अपने प्राणों तथा सिंहासन के लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रही।

5. **नए संघर्षों का जन्म** : एक दृष्टि से देखा जाए तो पानीपत की लड़ाई राजनैतिक क्षेत्र में इतनी निर्णायक नहीं थी जितनी समझी जाती हैं निसंदेहः इस विजय के बाद बाबर दिल्ली और आगरा का शासक बन गया। लेकिन उसे अभी मेवाड़ के राणा सांगा जैसे भयंकर शत्रु तथा अन्य अनेक स्वतंत्र अफगान शासकों से लोहा लेना बाकी था। वास्तविकता तो यह है कि इस विजय ने मुगल अफगान संघर्ष के केवल प्राथमिक चरण को समाप्त किया। अभी तीन चरण बाकी थे जो पानीपत में दूसरी लड़ाई में अकबर की सफलता से पूरे हुए। फिर भी पानीपत की प्रथम लड़ाई भारतीय इतिहास में अपना ही महत्त्व है क्योंकि इससे भारत में मुगल राज्य की नींव पड़ी। पानीपत की सफलता ने बाबर को साम्राज्य निर्माण के पथ पर अग्रसर कर दिया और उसने अपने पथ का सर्वाधिक बड़ा रोड़ा ;अफगान जातिद्ध को हटा दिया। प्रसि(इतिहासकार डा. सतीश चन्द्र कहते हैं कि "इसका वास्तविक महत्त्व इस बात में है कि इसने उत्तर भारत पर आधिपत्य के लिए संघर्ष का एक नया युग प्रारम्भ किया।

खानवा का युद्ध

बाबर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया उस समय मेवाड़ का शासक राणा सांगा था। राणा सांगा का वास्तविक नाम राणा संग्राम सिंह था। वह एक महत्त्वकांक्षी शासक था। उसने अपनी सैन्य कुशल और वीरता के कारण राजपूतानों की अनेक छोटी–छोटी रियासतों को मेवाड़ में मिला लिया था। ग्वालियर, चंदेरी, मारवाड़ और अजमेर के राजपूत राज्य उसके अधीन थे तथा उसे प्रतिवर्ष कर दिया करते थे। उसे मालवा और गुजरात राज्यों पर सफल आक्रमण कर उन पर अधिकार कर लिया था। कहा जाता है कि राणा सांगा ने अपने जीवनकाल में लगभग 100 लड़ाईयाँ लड़ी। इन्हीं लड़ाईयों ने राणा सांगा के कई अंग बेकार हो गए उनके शरीर पर 80 घाव होते हुए भी चेहरे से राजोचित तेज टपकता था। राणा सांगा को बाबर से खानवा नामक स्थान पर 1527 ई. में युद्ध करना पड़ा, इस युद्ध के अनेक कारण बताए जाते हैं :

1. **राणा सांगा की महत्वकांक्षा** : राणा सांगा बहुत महत्त्वकांक्षी था। उसकी शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी। वह धीरे–धीरे अपनी शक्ति और बढ़ा कर दिल्ली पर कब्जा कर देश में विशाल साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। राणा की महत्त्वकांक्षा ने उसे बाबर से संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया। सिन्धु गंगा घाटी में बाबर द्वारा साम्राज्य की स्थापना से सांगा को खतरा बढ़ गया। सांगा ने बाबर को भारत से खदेड़ने के लिए कम से कम उसे पंजाब से सीमित रखने की तैयारियां शुरू कर दीं।

2. **राणा सांगा की शक्ति का बढ़ना** : बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा में राणा सांगा को शक्तिशाली शासक माना है बाबर को यह भली भांति मालूम था कि राणा सांगा जब तक शासक बना रहेगा मुगल साम्राज्य भारत में कभी भी स्थायी नहीं रह सकता। बाबर के इस भय ने उसे राणा के प्रति शत्रुता की नीति अपनाने को प्रोत्साहित किया। राणा ने मालवा और गुजरात पर अधिकार कर लिया था। इससे बाबर और चिन्तित हो गया था। क्योंकि राणा सांगा का प्रभाव आगरा के निकट एक छोटी सी नदी पीलिया खार तक बढ़ गया था।

3. **बाबर द्वारा साम्राज्य की स्थापना** : राणा सांगा का विचार था कि इब्राहिम लोदी को पराजित करने के उपरान्त

बाबर काबुल लौट जाएगा और ऐसी स्थिति में वह दिल्ली पर आसानी से अधिकार कर लेगा। किन्तु बाबर ने दिल्ली और आगरा में मुगल साम्राज्य की नींव रख दी। इससे राणा सांगा और बाबर के मध्य युद्ध होना अनिवार्य हो गया।

4. **राणा पर बाबर द्वारा विश्वासघात का आरोप** : बाबर ने अपनी जीवनी तुज्क--ए--बाबरी में राणा सांगा से प्राप्त एक पत्र का उल्लेख किया है। उस पत्र में राणा सांगा ने बाबर को इब्राहिम लोदी पर आक्रमण करने के लिए कहा था तथा इस कार्य में उसे सहायता भी देने का वायदा किया था। बाबर का कहना था कि पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी के विरूद्ध सहायता ना देकर राणा सांगा ने उसके साथ विश्वासघात किया है इसी दृष्टि से बाबर ने राणा सांगा पर अपने आक्रमण को न्यायोचित बताया है।

5. **अफगानों द्वारा राणा सांगा को उकसाना** : अनेक अफगानों ने बाबर से पराजित होने के बाद राणा के यहाँ शरण ली और उस को बाबर के विरूद्ध लड़ाई छेड़ने के लिए उकसाने लगे जब वह उनके कहने पर बाबर के विरू(सेना इकट्ठी कर ही रहा था उन्हीं दिनों हसनखां मेवाती और महम्मद लोदी नामक अफगान सरदारों की अध्यक्षता में एक अफगान सेना भी उससे आ मिली। जिससे राणा को बाबर के विरूद्ध संघर्ष छेड़ने के लिए प्रोत्साहन मिला। सच्चाई यह है कि अफगानों को यकीन था कि राणा अगर बाबर से जीत गया तो वह अफगानों को शायद दिल्ली की गद्दी सौंप दे।

घटनाएँ

जो भी हो उपयुक्त कारणों के फलस्वरूप 16 मार्च 1527 में खानवा का युद्ध हुआ। राणा सांगा एक विशाल सेना के साथ आगरा की ओर बढ़ा। सीकरी से 10 मील की दूरी पर खानवा के मैदान में बाबर भी उसका मुकाबला करेन के लिए पहुँच गया। इस युद्ध में अफगान सरदारों ने राणा सांगा को सहायता दी। राणा की विशाल सेना को देखकर बाबर की सेना में हलचल उत्पन्न हो गई। बाबर ने युद्ध क्षेत्र में नमाज़ पढने के बाद कसम खाई कि यदि वह इस युद्ध में विजयी हुआ तो वह मद्यपान नहीं करेगा। बाबर के सैनिकों में धर्माधता जाग्रति करने हेतु जिहाद की घोषणा की। लड़ाई से पहले की शाम उसने अपने आप को सच्चा मुसलमान सिद्ध करने के लिए शराब के घढे उलट दिये और सुराहियां फोड़ दीं। उसने अपने राज्य में शराब की खरीद फरोख्त पर पाबंदी लगा दी तथा मुसलमानों पर से सीमाकर हटा लिए। बाबर के इस भाषण से मुगलो की सेना में नव चेतना उत्पन्न हो गई। परिणाम स्वरूप भयंकर युद्ध हुआ। बाबर के अनुसार राणा की सेना में 2 लाख से भी अधिक सैनिक थे। इनमें 10 हजार अफगान सैनिक भी शामिल थे। बाबर ने संभवतः यह संख्या बढ़ा चढ़ा कर बताई हो लेकिन यह निश्चित है कि राणा सांगा की सेना बाबर की सेना से कहीं अधिक थी। राजपूतों ने इस युद्ध में अपने शौर्य का खुब प्रदर्शन किया तथा बाबर की सेना का वीरता से सामना किया। परन्तु तोपों की गोलियों की बौछार ने उनकी नाम में दम कर दिया। बाबर के तोपखाने और फुर्तीले घोड़ों ने राजपूतों के लिए गंभीर स्थिति उत्पन्न कर दी। राणा के अनेक वीर एक के बाद वीरगति को प्राप्त होते गए। संभवतः राणा भी शीर्घ ही मूर्छित अवस्था में युद्ध क्षेत्र में गिर पड़ा और उसे राजपूत सरदास बसवा उठा कर ले गए। राजपूतों की पराजय अवश्यम्भावी हो गई इसलिए अनेक क्षत्रियों ने जौहर किया ताकि वे अपने सम्मान की रक्षा कर सकें।

परिणाम

इस युद्ध के कारण सांगा का सम्पूर्ण भारत का शासक बनने का स्वप्न भंग हो गया। वह अपनी पराजय के शोक को सहन न कर सका तथा कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई। बाबर के एक शक्तिशाली शत्रु का अन्त हो गया। इस प्रकार खानवा की लड़ाई ने राजपूत शक्ति को समाप्त कर मुगल साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ कर दिया। खानवा में बाबर की सफलता ने उसकी पानीपत की विजय को पूरी तरह सुदृढ़ कर दिया। क्योंकि उस समय राजधानी का सर्वाधिक शक्तिशाली योद्धा अपने अन्त को प्राप्त हुआ। इस विजय से प्रोत्साहित होकर आगरा के पूर्व में ग्वालियर तथा धौलपुर जैसे सुदृढ़ किला की श्रृंखला जीतकर बाबर ने अपनी स्थिति और भी मजबूत कर ली। उसने हसन खां मेवाती से अलवर का बहुत बड़ा भाग भी छीन लिया।

चन्देरी का युद्ध (19 जनवरी 1528 ई.)

एक बार पिफर राजपूतों ने अपनी बची शक्ति को बटोर कर मेदनी राव नामक सेनापति के नेतृत्व में बाबर के विरूद्ध युद्ध की तैयारियां शुरू कर दी। बाबर ने चन्देरी के किले को घेर लिया। इस युद्ध में भी बाबर विजयी रहा। मेदनी राव की मृत्यु के साथ ही राजपूतों की शक्ति पूरी तरह समापत हो गई। यह युद्ध 19 जनवरी 1528 ई. को पूरी तरह समाप्त हो गया। अपनी

इस विजय के बाद बाबर ने अफगानों की ओर ध्यान दिया।

घाघरा की लड़ाई (6 मई 1529 ई.)

जब दिल्ली सल्तनत पूरी तरह समाप्त हो गई तब अफगानों ने बिहार में इब्राहिम लोदी के छोटे भाई ने महमूद लोदी के नेतृत्व में संगठित होना शुरू किया। वे बाबर से एक बार युद्ध करना चाहते थे। बाबर पानीपत की लड़ाई के बाद राजपूतों को पराजित करने में लगा हुआ था। इस अवसर का पूरा–पूरा लाभ अफगानों ने उठाया तथा वे सैनिक तैयारियां करते रहे। बंगाल के शासक नसरत शाह ने भी उनकी सहायता की। दूसी ओर बाबर भी अफगानों को पूरी तरह कुचलना चाहता था। बाबर ने अफगानों के विरूद्ध की घोषणा कर दी जिससे 1529 ई. में घाघरा नामक स्थान पर बाबर एवं अफगानों में युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी बाबर को ही विजय प्राप्त हुई। बंगाल के शासक नसरतशाह ने बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह बाबर ने बंगाल और बिहार भी प्राप्त कर लिया। उसका साम्राजय काबुल से बिहार तक तथा हिमालय से चन्देरी तक फैल गया। घाघरा की लड़ाई के साथ ही उत्तर भारत में साम्राज्य की स्थाना के लिए मुगल एवं अफगानों में होने वाले संघर्ष का प्रथम चरण पूरा हुआ। पर इतनी कठिनाईयों के साथ प्राप्त हुई विजयों का फल बाबर अधिक समय तक भोग न सका क्योंकि शीघ्र ही आगरा में उसकी मृत्यु (26 दिसम्बर 1530 ई.) हो गई।

बाबर की भारत विजय का महत्त्व

1. **भारत में विशाल साम्राज्य निर्माण का श्री गणेश** : बाबर की भारत विजय ने ही विशाल साम्राज्य के निर्माण का शुभारंभ किया। यद्यपि वह कुशल प्रशासक न होने के कारण इस साम्राज्य को सुदृढ़ नहीं कर सका तो भी उसने मुगल साम्राज्य की नींव रखी तथा इस साम्राज्य को अकबर ने एक विशाल रूप प्रदान किया। बाबर की विजय ने एक बार फिर देश को केन्द्रीय प्रशासन प्राप्त करने का अवसर दिया। यदि बाबर भारत विजय न करता तो शायद देश वर्षो छोटे–छोटे राज्यों में बंटा रहता था उसके उत्तराधिकारी मुगल देश के एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न न कर करते।

2. **काबुल कांधार भारतीय साम्राज्य में** : कुशाण साम्राजय के पश्चात प्रथम बार काबुल और कांधार भारतीय साम्राज्य में शामिल हुए। इन क्षेत्रों के मिल जाने से भारत को बाहरी हमलों से सुरक्षा मिल गई। अब यदि आक्रमणकारी मध्य एशिया से आया तो सबसे पहले उसे काबुल कांधार की सीमा पर ही रोक दिया जाता था। इससे भारत को सुरक्षा प्राप्त हुई तथा भारतीय वाणिज्य और व्यापार में वृद्धि हुई। भारत सीधा मध्य एशिया के विभिन्न देशों से व्यापार कर सकता था। भारत मध्य एशिया की राजनीतिक घटनाओं एवं परिवर्तनों की जानकरी भी तुरन्त पा सकता था।

3. **बारूद तथा तोपखानों का व्यापक प्रयोग** : भारत में बाबर से पूर्व युद्ध में बारूद का प्रयोग नहीं किया जाता था। पानीपत, खानवा, चन्देरी और घाघरा के युद्धों में बाबर को विजयी बनाने में उसकी 200 तोपों का बड़ा हाथ था। भारतीय शासकों ने भी अब बारूद तथा तोपों का सामरिक महत्व समझ लिया। वे जान गए कि बारूद तथा तोपों से बड़ी से बड़ी सेना को नष्ट किया जा सकता है। बाद के युद्धों में तोपों एवं बारूद का व्यापक प्रयोग हुआ।

4. **रूमी या तुलगमा में नई रणपद्धति का प्रचलन** : बाबर की सफलता का महत्वपूर्ण कारण उसके द्वारा युद्ध की वैज्ञानिक विधि को अपनाना भी था बाबर द्वारा अपनाई गई युद्ध पद्धति भारतीय शासकों ने बाद में धीरे–धीरे अपनाई।

5. **रिजर्व सेना** : बाबर से पूर्व युद्ध में रिजर्व सेना नहीं रखी जाती थी। भारत में बाबर को उसकी रिजर्व सेना व्यवस्था ने भी विजय प्राप्ति में मदद दी। इसलिए बाद में रिजर्व सेना रखने की प्रणाली को भी अधिकांश भारतीय शासकों ने अपनाया।

6. **सेना में घोड़ों का अधिक उपयोग** : बाबर की सफलता का कारण यह भी था कि उसने अपनी सेना में हाथियों का प्रयोग नहीं किया घोड़ों की चुस्ती एवं स्फूर्ती से बाद के भारतीय शासक बहुत प्रभावित हुए और धीरे–धीरे सेना में हाथियों के स्थान पर घोड़ों पर अधिक विश्वास किया जाने लगा।

7. **ताज की प्रतिष्ठा की पुन स्थापना** : बाबर से पूर्व दिल्ली सुल्तनत स्वयं को खलीफा का प्रतिनिधि समझ कर राज्य

करते थे। वे खलीफा के नाम पर ही खुतबा पढ़ते थे। प्रायः सिक्कों पर भी उसका नाम खुदवाया गया। दिल्ली सुल्तान अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए खलीफा से औपचारिक रूप से सुल्तान पद प्राप्ति की स्वीकृति भी लेते थे। बाबर ने ताज की प्रतिष्ठा की पुर्नस्थापना की। उसने स्वयं को सम्राट या बादशाह कहा। वह किसी भी बाह्य शाक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं था।

8. **शासन के नए स्वरूप का आरंभ** : बाबर ने भारत में प्रथम बार मुगल शासन प्रणाली को प्रारंभ किया। सम्राट की स्थिति सर्वोच्च थी। वह सार्वभौमिकता का प्रयोग स्वयं करता था। बाबर ने नई सैनिक व्यवस्था और व्यक्तिगत व्यवहार से शासक के उस महत्त्व की पुनः स्थापना की जो फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के बाद कम हो गया था। यद्यपि लोदी वंश दो महान शासकों ;सिकन्दर और इब्राहिमद्ध ने राजा के सम्मान को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। परन्तु वे अधिक सफल न हो सके। क्योंकि अफगानों में जातीय स्वतन्त्रता की भावना तथा अफगान सरदारों में समानता की भावना ने उनके प्रयत्नों को पूरी तरह सफल नहीं होने दिया। बाबर के मुगल सरदार जानते थे कि बाबर की नसों में दो महान योद्धाओं का रक्त है इसलिए उन्होने सम्राट से कभी भी बराबरी के व्यवहार की मांग नहीं कि और न ही उन्होंने स्वतंत्र राज्य की कभी मांग की। उसे तो कोई तैमूर वंशज या राजकुमार ही चुनौती दे सकता था। यद्यपि बाबर कट्टर सुन्नी मुसलमान था तो भी व धर्मान्ध नहीं था। उसने शांति काल में मंदिरों और मुर्तियों को नहीं तोड़ा। उसका दरबार तत्कालीन मध्य एशियाई दरबारों की तरह शिया सुन्नी के झगड़ों से भी मुक्त था।

बाबर का व्यक्तित्व और चरित्र

बाबर एशिया के इतिहास में अत्यनत रोजक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व था। डा. स्मिथ ने बाबर के बारे में लिखा है, ''उसे किसी देश के और किसी युग के राजाओं में उच्च स्थान दिया जा सकता है। वह केवल एक बहादुर सिपाही ही नहीं था जो केवल यही जानता हो कि सेना को संगठित और व्यवस्थित कर के युद्ध किस प्रकार किया जाता है। बल्कि वह एक उच्च कोटि का विद्धान भी था। उसे प्राकृतिक सौंदर्य से बहुत प्यार था। उसके चरित्र में अनेक गुण थे। यद्यपि उसने भारत पर 4–5 वर्ष तक ही राज्य किया। उसे भारत के महान शासकों की पंक्ति में स्थान दिया जाता है।''

हुमायूँ

हुमायूँ का जन्म 1508 ई. में काबुल में हुआ था वह बाबर का सबसे बड़ा पुत्र था। उसकी माता का नाम माहीम बेगम था। बाबर ने उसकी शिक्षा कि और विशेष ध्यान दिया। उसे प्रशासनिक प्रशिक्षण देने के लिए बाबर ने 1528 ई. में बदख्जा को राज्यपाल नियुक्त किया। बाबर की भारत विजय में भी हुमायूँ ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। बाबर की मृत्यु के बाद दिसम्बर 1530 में वह बादशाह बना।

बाबर हुमायूँ के लिए विरासत में जो राज्य छोड़कर गया था वह पूरी तरह से कठिनाइयों से भरा हुआ था। हुमायूँ को जो राज्य विरासत मे मिला उसमें :–

(1) राजनैतिक अस्थिरता थी, क्योंकि अफगान एक बार फिर से अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त करना चाहते थे।

(2) उसमें एक सुसंगठित शासन व्यवस्था का अभाव था क्योंकि बाबर के पास शासन को सुदृढ़ बनाने का समय नहीं था।

(3) हुमायूँ का उत्तराधिकारी में खाली कोष भी मिला। बाबर ने भारत विजय द्वारा जो धन प्राप्त किया, वह सब बड़े–बड़े सरदारों को दावतें देने तथा अपने सैनिकों को खुले दिल से बांटने में समाप्त कर दिया।

(4) हुमायूँ की सबसे बड़ी कठिनाई उसके अपने भाई कामरान अस्करी और हिन्दाल थे। मुगलों में उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था इसलिए हुमायूँ द्वारा राज्य बांट दिये जाने पर भी वे सन्तुष्ट नहीं थे और सदा उसके सामने भीषण समस्यायें खड़ी करते रहते थे।

(5) हुमायूँ के चचेरे भाई तथा अन्य निकट सम्बन्धी भी उसके घोर विरोधी थे।

हुमायूँ के प्रारम्भिक सैनिक अभियान

1. **कालिंजर दुर्ग का घेरा** : हुमायूँ को सूचित किया गया कि कालिंजर का शासक विरोधी अफगानों को सहायता दे रहा है। इसलिए हुमायूँ ने 1531 में बुन्देलखण्ड में कालिंजर के दुर्ग पर घेरा डाल दिया। कई महीनों के घेरे के बाद

भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई अन्त में वहां के राजा से कुछ धन वसूल करने के बाद तथा पूर्व के अफगानों से सामना करने के लिए उसे लौट जाना पड़ा। इस तरह हुमायूँ ने कालिंजर के राज्य की शक्ति को पूरी तरह कुचले बिना ही घेरा उठा लिया।

2. **पूर्व में महमूद लोदी पर आक्रमण** : कालिंजर के बाद उसने अफगानों की ओर ध्यान दिया। सबसे पहले उसने पूर्व में महमूद लोदी को लखनऊ के पास पराजित किया वह बंगाल की ओर भाग गया। इस तरह महमूद लोदी की जोनपुर पर अधिकार करने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी।

3. **चुनार के किले का घेरा** : महमूद लोदी को पराजित करने के बाद हुमायूँ ने चुनार के किले को घेर लिया वह किला उस समय शेरखां के अधीन था। लगभग पांच महीने के बाद शेरखां ने नाम मात्र के लिए हुमायूँ कर अधीनता स्वीकार कर ली। इस सन्धि के बाद हुमायूँ ने चुनार के किले का घेरा उठा लिया। यह हुमायूँ की सबसे भयंकर भूल थी इसकी वजह से उसे आगे चलकर अपनी गद्दी से हाथ धोना पड़ा।

हुमायूँ की गुजरात विजय

गुजरात का शासक बहादुरशाह एक शक्तिशाली तथा महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने मालवा को भी जीत लिया था। उसने चित्तौड़ पर अधिकार कर राजपूतों की शक्ति को काफी कम कर दिया। बाद की कुछ कथाओं के आधार पर कहा जाता है कि चित्तौड़ की रानी कर्मवती ने हुमायूँ को राखी भेजकर मदद मांगी तथा हुमायूँ ने बड़ी उदारता से उसे मदद देने के निर्णय लिया। यद्यपि इस कहानी पर पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता तो भी यह सत्य है कि हुमायूँ आगरा से गुजरात अभियान पर निकल पड़ा तथा ग्वालियर पहुँच भी गया।

बहादुर शाह जब राजपूतों से युद्ध कर चुका तो हुमायूँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में बहादुरशाह को मन्दसौर माण्डू और चम्पानेर नामक स्थानों पर पराजय मिली और बहादुरशाह दिपू के टापू में शरण लेने के लिए चला गया।

शेरशाह हुमायूँ संघर्ष

इतिहासकारों को शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन के बारे में अधिक जानकारी नहीं है उसके बचपन का नाम फरीद था। वह सन् 1472 ई. में होशियार पुर पंजाब में उत्पन्न हुआ। उसके पिता हसन पंजाब के सुबेदार जमाल खाँ का नौकर था। जब जमालखां जोनपुर का सुबेदार बना तो फरीद अपने पिता के साथ वहां चला आया। हसन को जमाल खाँ ने सहसराम का जागीरदार बना दिया। शोरशाह अपनी सौतेली माँ के व्यवहार से तंग आकर सहसराम छोड़ पुनः जोनपुर आ गया तथा वहां पर उसकी शिक्षा दिक्षा हुई बाद में जमाल खाँ के कहने पर उसके पिता ने उसे सहसराम की जागीर का प्रबन्धक बना दिया। यही से प्रशासन का प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। एक जागीर के प्रबन्धक के रूप में उसेन जमीन की पेमाईश करवाई तथा किसानों के हित के लिए अनेक कार्य किये। 1527 में शेरखाँ ने बाबर के यहाँ नौकरी कर ली तथा इस दौरान मुगलों की युद्ध प्रणाली की सीखा और उनकी सैनिक कमियों को भली भांति जानने की कोशिश की।

शेरशाह की शक्ति का उदय बिहार से हुआ। बिहार के शासक बहार खाँ लोहानी की मृत्यु के बाद जब उसका अव्यस्क पुत्र जलालखाँ सन 1528 ई. में शासक बना तो उसकी माता ने शेरखाँ को उसका शिक्षक एवं संरक्षक नियुक्त कर दिया। शेरखाँ ने इस पर कार्य करते हुए अपनी शक्ति को खूब बढ़ाया। इसी समय चुनार के शासक ताजखाँ की मृत्यु हो गई। शेरखां ने उसकी विधवा से विवाह कर लिया। इसके परिणामस्वरूप शेरखां को बहुत सी सम्पत्ति एवं चुनार का किला भी प्राप्त हुआ। 1531 ई. में हुमायूँ ने जब चुनार के किले को घेर लिया तो शेरशाह ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार करने का नाटक किया। तथा धीरे–धीरे अपनी शक्ति को मजबूत किया। शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति से चिढ़कर लोहानी सरदारों ने जलालखां के कान भरने शुरू कर दिये। जलाल खां ने शेरखां से छुटकारा पाने के लिए बंगाल के शासक मुहम्मद शाह से सैनिक सहायता प्राप्त की परन्तु इन दोनों की सयुंक्त सेनाओं को शेरखां ने पराजित कर दिया। बंगाल का शासक अपने राज्य से भाग गया और सारा बिहार शेरखां के अधिपत्य में आ गया।

हुमायूँ का बंगाल की ओर प्रस्थान

जिस समय हुमायूँ बंगाल विजय में व्यस्त था। उस समय शेरशाह अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए बिहार में लगा हुआ था। उसने बंगाल पर आक्रमण कर दिया बंगाल के शासक महमूद से सहायता मांगी और हुमायूँ उसकी मदद के लिए चल पड़ा। वह

सीधे बंगाल की राजधानी गोड़ की और बढ़ने की बजाए, जहां वह बंगाल के शासक के साथ मिलकर आसानी से शरखा को पराजित कर सकता था, रास्ते में ही चुनार के किले को दोबारा घेर बैठा और छ' महीने का समय व्यतीत कर दिया। इस समय शेरशाह ने गोड़ को खूब लूटा और सारी सम्पत्ति अपने रिस्तेदारों को रोहतास के किले में भेज दिया। हुमायूँ जब बंगाल पहुँचा तो शेरखां बिहार वापस आ चुका था। इस प्रकार हुमायूँ को बंगाल आसानी से मिल गया। लेकिन पीछे से आगरा में उसके भाई हिन्दाल ने अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया और हुमायूँ को वापस लौटना पड़ा।

चोसा का युद्ध 1539 ई0

हुमायूँ जब आगरा की ओर लौट रहा था कि मार्ग में बनारस के समीप चौसा नामक स्थान पर1539 ई. में शेरखां ने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया। हुमायूँ ने यहां एक और गलती कीं उसने अपने मोर्चे के लिए नीची भूमि चुनी। वर्षा का पानी भरने के कारण वह अपनी तोपों का प्रयोग नहीं कर सका। इस युद्ध में हुमायूँ पराजित हुआ तथा वह अपनी जान बचाने के लिए घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ नदी में कूद पड़ा। उसे एक भिश्ती ने नदी में डूबने से बचाया। एक दन्त कथा के अनुसार इसी भिश्ती को हुमायूँ ने एक या दो दिन का राज लौटा दिया जिसने चमड़े के सिक्के चलाये थे। इस लड़ाई मे लगभग 7000 मुगल सैनिक मारे गये थे। चौसा के युद्ध में विजय प्राप्त करके शेरखां का साहस बहुत बढ़ गया। चोरा की विजय शेरशाह सूरी के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। इस युद्ध ने शेरशाह के जीवन का उद्देश्य ही बदल दिया। डा. कानूनगों इस विषय में ठीक लिखते हैं, "चौसा की लड़ाई से पूर्व यदि बंगाल में उससे छेड़छाड़ न कि जाती तो वह मुगलों के अधीन रहने से सन्तुष्ट रहता। एक ही झटके में उसने बंगाल, बिहार और जौनपुर हथिया लिये। और वह मुगल बादशाह से बराबरी का दावा कर सकता था।" इस पराजय के बाद मुगल अफगानों को तभी पराजित कर सकते थे। जबकि उनमें पूरी तरह एकता होती। हुमायूँ के भाई कामरान के पास 10 हजार सैनिकों की विशाल सेना थी परन्तु उसने हुमायूँ की सहायता नहीं की। वह आगरा से अपनी सेना लेकर लाहौर वापस चला गया।

कनौज का युद्ध 1540 ई.

कामरान के वापस चले जाने पर भी हुमायूँ ने हिम्मत नहीं हारी और चौसा की पराजय का बदला लेने के लिए सैनिक तैयारी में जुट गया। उसने अपने सम्बन्धियों और भाईयों अस्कारी तथा हिन्दाल की सहायता प्राप्त की। हुमायूँ को समाचार मिला कि शेरखां ने बंगाल पर पुनः अधिकार कर लिया है। करीब 40,000 सैनिकों के साथ हुमायूँ शेरखां का सामना करने के लिए कन्नौज पहुँचा। यह लड़ाई शेरखां और हुमायूँ के बीच में निर्णायक साबित हुई। इस में विजय शेरखां के हाथ लगी। शेरखां ने आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया और स्वंय को 1540 ई. में भारत का सम्राट घोषित कर दिया। उसने शेरशाह सूरी की उपाधि धारण की।

शेरशाह सूरी की अन्य विजयें

जिस समय शेरशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा उस समय वह 67 वर्ष का था। लेकिन इसके बावजूद उसने अपना विजय अभियान जारी रखा तथा कई प्रदेशों को जीत कर अपने राज्य में मिलाया जिनमें मुख्य निम्न लिखित हैं :–

1. **पंजाब विजय** : आगरा और दिल्ली को जीतने के बाद शेरखां ने हुमायूँ के भाई कामरान से पंजाब छीन लिया। वह उसके भय से पंजाब छोड़ कर काबुल भाग गया।

2. **खोखरों के राज्य पर अधिकार** : पंजाब जीतने के बाद उसने खोखरों जैसी लड़ाकू जाति के राज्य की ओर ध्यान दिया। उसका राज्य झेलम व सिन्धु नदी के बीच था। इस सीमावर्ती राज्य पर यद्यपि शेरशाह को पूरी सफलता नहीं मिली, क्योंकि उसे वहीं पर बंगाल के गर्वनर के विद्रोह का समाचार मिला इसलिए वह शीघ्र ही 1541 ई. मे बगाल की ओर चल पड़ा। शेरशाह ने जितने भू–भाग को जीता था उसमें सैनिक चौकियाँ बना कर खोखरों की गतिविधियों को रोके रखा।

3. **बंगाल की विजय** : शेरशाह ने बंगाल पहुँचकर वहाँ के गर्वनर को बन्दी बना लिया। उसने विद्रोहियों को नौकरी से अलग कर दिया। उस प्रान्त को कई जिलों में केवल उसी के प्रति उत्तरदायी अधिकारियों को जिले का प्रशासन सौप दिया।

4. **मालवा की विजय 1542 ई.** : शेरशाह की अगली विजय मालवा की विजय थी। उसके समक्ष मालवा क शासक

कादिरशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया। शेरशाह ने मालवा को अपने साम्राज्य का अंग बना दिया। शेरशाह ने कादिर शाह के साथ दयालुता का व्यवहार किया और उसे लखनौती का राज्यपाल नियुक्त कर दिया।

5. **रायसीन की विजय** : मालवा की विजय के बाद शेरशाह ने पश्चिम के राजपूतों की तरफ ध्यान दिया। 1543 ई. में उसने रायसीन के पूर्णमल पर आक्रमण कर दिया। राजपूतों ने डट कर मुकाबला किया। शेरशाह ने पूर्णमल को आश्वासन दिया कि यदि वह किला सौंप दें तो किसी व्यक्ति को भी नहीं मारा जाएगा। परन्तु किले से निकलते हुए राजपूतों पर शेरशाह की सेना टूट पड़ी। शेरशाह ने रायसीन को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

6. **मुल्तान और सिन्ध की विजय** : शेरशाह के सेनापति ने शेरशाह के आदेशानुसार 1543 ई. में मुल्तान व सिन्ध पर आक्रमण कर दिया। ये दोनों प्रान्त जीतकर शेरशाह सूरी ने अपने साम्राज्य का अंग बना लिया।

7. **मारवाड की विजय** : मुल्तान और सिन्ध विजय के तुरन्त बाद ही शेरशाह ने मारवाड पर एक विशाल सेना के साथ आक्रमण किया। शेरशाह ने राजपूतों की वीरता देख कर छल से उस पर कब्जा करना चाहा। इस छल में उसे सपफलता मिली। उसने कुछ झूठे पत्र मारवाड के राजा मालदेव के पास पहुँचा दिये जिनको पढ़ कर उसके मन में अपने साथियों के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया। मालदेव जान बचाकर भाग गया। मारवाड पर शेरशाह का अधिकार हो गया। किन्तु शेरशाह कि मृत्यु के बाद पुनः मालदेव ने अफगान गर्वनर को पराजित कर मारवाड पर अधिकार कर लिया।

8. **चितौड़ और अजमेर पर अधिकार** : मेवाड़ का राज्य उदय सिंह शेरशाह के समय नाबालिग था। जब शेरशाह के आक्रमण का समाचार राजपूतों को मिला तो राजूपतों ने शेरशाह से लड़ने की अपेक्षा उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। परिणाम स्वरूप शेरशाह ने चितौड़ और अजमेर पर अधिकार कर लिया।

कालींजर पर आक्रमण और शेरशाह की मृत्यु

शेरशाह की अन्तिम विजय कालींजर की थी। उसने इस किले को करीब एक वर्ष तक घेरे रखा जब विजय की कोई आशा न रही तो उसने बारूद से किले को उड़ाने का हुक्म दिया। इस बारूद के विस्फोट से शेरशाह भी घायल हो गया और इसी से 1545 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह का शासन प्रबन्ध

शेरशाह न केवल एक महान विजेता तो था वरन् एक उच्च कोटि का प्रबन्धक भी था। डा. के. आर. कानूनगों ने उसे एक नवीन अविष्कार करने वाला तथा उच्च कोटि का सुधारक बताया है डा. आर. पी. त्रिपाठी ओर डा. पी. सरन इस बात से सहमत नहीं। उसका कहना है कि शेरशाह ने किसी नई चीज को नहीं चलाया, उसने जो कुछ किया वह अलाउद्दीन खिलजी जैसे उसके पहले आने वाले सुल्तान कर चुके थे। परन्तु इस बात से सभी सहमत है कि शेरशाह एक उच्च कोटि का प्रबन्धक तथा महान सुधारक था। उसने अपने पाँच वर्ष के छोटे से समय में राज्य की प्रशासनिक समस्याओं को अच्छी तरह सुलझाया तथा उसे एक नई दिशा भी दी। उसके शासन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

केन्द्रीय प्रशासन

शेरशाह स्वयं केन्द्रीय प्रशासन का प्रधान था और राज्य के सभी सैनिक तथा सिविल अधिकार उसी से सीमित थे। वह पूर्ण रूप से निरंकुश शासक था तथा अपने अधिकारियों तथा वजीरों को अपनी इच्छानुसार बदल सकता था। फिर भी उसे सहयोग देने एवं कार्यों में हाथ बटाने के लिए कई मन्त्री थे। इनमें महत्वपूर्ण विभाग निम्नलिखित थे।

1. **दिवाने–ए–वजारतः** इस विभाग के मुख्य अधिकार को वजीर कहा जाता था। यह राज्य के राजस्व एवं वित्त सम्बंधी कार्यों को देखता था। वह विभिन्न करों से प्राप्त राज्य की आय तथा विभिनन कार्यों पर किए गए व्यय का पूरा हिसाब रखता था।

2. **दिवान–ए–अर्ज** : इस विभाग के मुखिया को अर्ज–ए–मुमालिक कहा जाता था। यह विभाग सेना सम्बन्धी काम काज चलाता था। सेना की भर्ती अनुशासन तथा संगठन की देखभाल करना इसी कार्य था। परन्तु वह सेनाओं का सेनापति नहीं होता था।

3. **दिवान–ए–रसलत** : यह विभाग विदेश मन्त्री के अधीन था। दूसरे देशों में राजदूत भेजना तथा विदेशों से आए दूतों का स्वागत करना इसी का कार्य था।
4. **दिवान–ए–इशां** : इस विभाग का मन्त्री शाही घोषणा एवं पत्र व्यवहार सम्बन्धी कार्य करता था।
5. **दिवान–ए–कजा** : यह विभाग मुख्य काजी के अधीन था यह न्याय प्रशासन को देखता था।
6. **दिवान–ए–बारीद** : इस विभाग का अध्यक्ष बारीद–ए–मुमालिक कहलाता था। जो राज्य के गुप्तचर विभाग को सम्भालता था।

प्रान्तीय प्रशासन

डा. कानूनगों के अनुसार "शेरशाह के समय प्रान्त नहीं थे" लेकिन आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार सम्भवतः उसने या तो प्रान्त बनाए ही नहीं या उसकी संख्या बहुत कम थी। लेकिन डा. परमात्मासरन के अनुसार "शेरशाह के राज्य की ईकाई या प्रान्त थी। और उसका राज्य ऐसी बाहर इकाईयों में विभाजित था।" जहां प्रान्त थे वहा सूबेदार सम्राट की तरह निरंकुश होकर प्रान्तीय प्रशासन चलाता था।

सरकार का प्रशासन

शेरशाह ने अपने साम्राज्य को प्रशासन की सुविधा के लिए 47 सरकारों में बांट रखा था। प्रत्येक सरकार का प्रशासन दो अधिकारी चलाते थे। प्रथम अधिकारी को शिकदार–ए–शिकदारान अथवा मुख्य शिकदार कहते थे। तथा दूसरे अधिकारी को मुन्सफ–ए–मुलसफान अथवा मुख्य मुन्सफ कहते थे। यह अधिकार सरकार में क्रमशः शन्ति व कानून व्यवस्था परगने के अधिकारियों की देखरेख में तथा न्याय व्यवस्था प्रबन्ध करते थे।

परगने का प्रशासन

शेरशाह ने प्रत्येक सरकार को कई परगनों मे बांट रखा था परगने में शिकदार तथा मुनसफ नाम अधिकारी होते थे। शिकदार का काम परगने में कानून व्यवस्था बनाए रखना था जबकि मुन्सफ राजस्व को एकत्र करने वाला अधिकारी होता था। इन दो अधिकारियों के अलावा खजांची खजाने का अध्यक्ष होता था।

स्थानीय अथवा गांव का प्रशासन

शेरशाह ने स्थानीय अथवा गांव का प्रशासन सल्तनत काल की तरह बिना परिवर्तन किए चलते रहने दिया प्रत्येक गांव में एक पंचायत होती थी। जो गांव के कल्याणकारी कार्यों के साथ–साथ न्याय भी करती थी। इसके अलावा गांव में एक पटवारी तथा चौकीदार भी होता था।

भूमि सुधार एवं भू राजस्व प्रबन्ध

शेरशाह के प्रशासन में अगर सभी पहलुओं पर विचार किया जाए तो निसन्देह यह मानना पड़ेगा कि उसने भूमि सम्बन्धी शासन प्रबन्ध की तरफ विशेष ध्यान दिया। उसने भू–राजस्व सम्बन्धी निम्नलिखित सुधारों को लागू किया।

भूमि की पैमाईस : शेरशाह ने सर्वप्रथम अपने राज्य की कुल कृषि योग्य भूमि का नाम जानने के लिए अपने मन्त्री टोडर मल के निरीक्षण में उसकी पैमाईस करवाई।

उत्पादकता के आधार पर भूमि का वर्गीकरण : शेरशाह ने सारी भूमी की नाप के बाद उसे उत्तम, मध्य तथा निकृष्ट तीन श्रेणियों में बांटा। ताकी लगान का आधार भूमि की उत्पादकता बन सके। तीन प्रकार की एक–एक बीघा भूमि का औसत लेकर उसी को साधारण उपज मान लिया गया।

औसत उपज पर भूमि कर : शेरशाह ने सभी प्रमुख पैदावरों की औसत उपज का 1/3 से 1/4 भूमि कर लिया। निसन्देह यह भू–राजस्व अधिक नहीं था।

लगान निर्धारित करने में उदारता लेकिन वसूली में सख्ती : शेरशाह ने सभी लगान वसूल करने वाले अपने अधिकारियों को स्पष्ट निर्देश दिए की चाहे लगान तय करते समय किसानों के प्रति उदारता बरती जाए, लेकिन वसूली के समय सख्ती बरती जाय जिससे लगान की बकाया रकम कम से कम हो सके। लेकिन इसमें भी किसानों को बहुत अधिक दिक्कत नहीं हुई क्योंकि प्राकृतिक विपत्तियों के समय प्रायः लगान माफ कर दिया जाता था।

पट्टा और कबूलियत : शेरशाह ने सर्वप्रथम सहसराम जागीर के प्रबन्धक के रूप में किसानों से कबूलियत लिखवाई तथा उनको लिखित पट्टा देने की प्रथा शुरू की थी। यह एक दस्तावेज था जो सरकारी रिकार्ड में रखा जाता था। तथा उसमे लिखे गये विवरण की सूचना किसानों को दी जाती थी।

सम्राट बनने के बाद भी उसने ऐसा ही किया। उसने हिन्दी फारसी जानने वाले कारकूनों अर्थात लेखकों की नियुक्ति की। पट्टों में कृषक की भूमि का क्षेत्रफल तथा लगान की रकम लिखी होती थी। कबूलियत में किसान भूमि सम्बन्धी सरकारी शर्तों को मानने की अपनी लिखित स्वीकृति देता था।

भू-कर के अतिरिक्त कर

शेरशाह के शासन काल में किसानों को भूमि कर के अतिरिक्त अकाल कर, जरीबाना व मुहसीलाना नामक तीन और कर भी देने पडते थे। किसानों को अकाल बाढ जैसी प्राकृतिक विपत्तियों के समय देने के लिए एक विशेष कर लिया जाता था। इसको प्राय. अन्न के रूप मे लिया जाता था। इसके अतिरिक्त भूमि की नपाई तथा निरंग सुविधा के लिए जरीबाना कर जो लगान का ढाई से पांच प्रतिशत तक होता था तथा कर्मचारियों को वसूली के भत्ते के रूप में मुहसीलाना नामक कर भी देना पड़ता था। यह मात्र भी नरीबाना जितनी होती थी।

भूकर निर्धारण विधियाँ

शेरशाह ने अपने राज्यकाल में निम्न चार प्रकार की भू कर राजस्व निर्धारण विधियाँ अपनाई :–

1. **टोडरमल की जब्ती प्रणाली** : इस प्रणाली को अमल में लाने का श्रेय शेरशाह के भू राजस्व मन्त्री टोडर मल को जाता है। इसलिए इसे टोडरमल पद्धति भी कहते हैं। इस प्रणाली में भूमि की पैमाईश, उत्पादकता, प्रति बीघा औसत उत्पादन एवं उसके औसत मूल्य के आधार पर ही लगान तय होता था।
2. **बटाई अथवा गल्ला बख्शी** : इस पद्धति में किसान की पकी हुई फसल किसान की उपस्थिति में सरकारी कर्मचारी तीन या चार भागों में बांट देते थे। जिसका एक भाग सरकार को कर के रूप में मिल जाता था। फसल बंटाई के लिए तीन–तीन तरीके होते थे। खेत बंटाई, डग बंटाई, व रस्सी बंटाई। कई बार फसल को काटने के बाद भी बांट दिया जाता था।
3. **नसक अथवा कंकूत** : इस पद्धति में किसानों द्वारा पिछले वर्षों में दिए गए भूकर के आधार पर अनुमान लगा कर भूमि कर तय कर लिया जाता था।
4. **ठेका या ईजारेदारी** : इस पद्धति में किसान निश्चित कर पर निर्धारित समय के लिए भूमि ठेके पर ले लेता था, फसल अच्छी हो या बुरी हो या न हो, किसानों को निर्धारित रकम सरकारी खजाने में जमा करानी होती थी। नहीं तो उसकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाता था।

सैनिक सुधार

शेरशाह स्थाई सेना के महत्त्व को भली प्रकार से जानता था। वह सैनिकों की भर्ती के समय स्वयं उपस्थित रहता था। भर्ती के समय सैनिकों को सम्राट के प्रति वफादार रहने की कसम दिलाई जाती थी। शेरशाह ने सैनिकों का हुलिया दर्ज करने तथा घोड़ों को दागने की प्रथा को जारी रखा। उसने सैनिकों को नकद वेतन दिया। इन सुधारों के कारण ही उसके पास एक स्थाई और कुशल सेना थी उसकी सेना में डेढ लाख घुडसवार 500 हाथी 25000 पैदल सैनिक तथा तोपें थी। उसने सेना को युद्ध मे आते जाते समय कृषि को किसी भी प्रकार का नुकसान न करने की हिदायत दी। देश के विभिन्न भागों में किले तथा छावनियां बनवाई। छावनियों में सेना फौजदार नामक अधिकारी के अधीन होती थी। सेना में भर्ती व पदोन्नति योग्यता के आधार पर होती थी।

न्याय व्यवस्था

शेरशाह ने न्याय के मामले में सभी को बराबर समझा उसने हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं किया। वह कहा करता था "न्याय सबसे उत्तम धर्म रीति है। और इसे काफिरों तथा मोमिनों के राजाओं द्वारा एक समान दर्जा दिया जाना चाहिए।" उसने सारे राज्यों में न्यायालयों की स्थापना की। अपराधियों को कठोर दण्ड दिए ताकि वे पुनः अपराध करने का

साहस न कर सकें। वह स्वयं भी हर बुद्धवार को अदालत लगाता था तथा अपराधियों को कठोर दण्ड देता था।

जासूसी व्यवस्था

शोरशाह ने सारे राज्य में अपने विश्वस्त गुप्तचरों का जाल बिछा रखा था, जो उसे राज्य में होने वाली गतिविधियों की जानकारी देते रहते थे। इन गुप्तचरों के भय से सरकार तथा परगने के अधिकारी सम्राट के विरूद्ध किसी प्रकार का षड्यन्त्र करने का साहस नहीं कर सकते थे। इस तरह शेरशाह की शासन व्यवस्था की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उसकी गुप्तचर प्रणाली को जाता है।

पुलिस व्यवस्था

शेरशाह ने नवीन प्रकार की पुलिस व्यवस्था को आरम्भ किया। उसने पुलिस अधिकारियों को अपने–अपने क्षेत्र की शान्ति एवं कानून व्यवस्था के लिए जिम्मेदार बना दिया। सरकार ने पुलिस का मुख्य अधिकारी मुख्य शिकदार व परगने में शिकदार होता था। यह अधिकारी अपने–अपने इलाकों में समाज विरोधी तत्वों पर कड़ी निगाह रखते थे। गांव में पुलिस कार्य की जिम्मेदारी मुकद्दम की थी।

मुद्रा सुधार

शेरशाह से पहले चलने वाले सिक्के शुद्ध धातु के बने हुए नहीं होते थे। इससे व्यापार को हानि होती थी। इसलिए शेरशाह सूरी ने सिक्कों में संशोधन किया और शुद्ध सोने व चांदी के सिक्के चलाए। उससे दाम, आधा दाम, चौथाई दाम जैसे ताम्बे के छोटे सिक्के भी चलाए। चांदी के सिक्के का नाम रूपया रखा जो समस्त मुगल काल तक चलता रहा। बी.ए. स्मिथ के अनुसार अंग्रेजी कम्पनी ने भी उसे जारी रखा और अपनी मुद्रा का आधार बनाया।

सड़कें तथा सराय

शेरशाह ने व्यापार को सुविधा देने के लिए सैनिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए तथा देश का प्रबन्ध ठीक चलाने के लिए कई सड़कों का निर्माण किया। इन सड़कों मेंचार सड़कें प्रसिद्ध हैं :–

1. सबसे प्रसिद्ध व लम्बी सड़क जिसे आजकल जी.टी रोड के नाम से जाना जाता है बंगाल के सुनार गाँव से लेकर भारत की पश्चिमी सीमा में झेलम नदि के किनारे बसे रोहतास नगर तक जाती थी।
2. दूसरी सड़क आगरा से लेकर दक्षिण की और बुरहानपुर तक।
3. आगरा से राजपुताना की जोधपुर और चितौड़ तक।
4. लाहौर से मुल्तान तक जाती थी।

इन सड़कों के दोनों ओर लोगों की सुविधा के लिए छायादार वृक्ष लगाए गए। और दो–दो कोश की दूरी पर सराय बनाई गई जिनमें रहने तथा भोजन का प्रबन्ध था।

शेरशाह अकबर का पथ प्रदर्शक

अनेक इतिहासकार शेरशाह को अबकर का अग्रगामी या पथ प्रदर्शक मानते हैं। इन इतिहासकारों के अनुसार शेरशाह ने राजनैतिक, सैनिक, धार्मिक व भूमि सुधारों के बारे में जिस नीति को अपनाया, उसी नीति पर मुगल वंश का महान सम्राट अकबर चला। उसके अनुसार अकबर ने मुख्यतः शेरशाह का अनुकरण किया।

1. **राज्य विस्तार की नीति** : शेरशा ने सम्राट बनने के बाद जिस तरह अपने साम्राज्य विस्तार के कार्य को जारी रखा उसी तरह अकबर ने उत्तरी भारत के अधिकांश राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य का अंग बनाने में सफलता प्राप्त की। लेकिन अकबर का साम्राज्य शेरशाह से कहीं अधिक विशाल था। अकबर के साम्राज्य में उन क्षेत्रें के अतिरिक्त जो शेरशाह के अधीन थे काबुल, कान्धार और कश्मीर भी शामिल थे। उसने दक्षिण भारत के कुछ राज्य भी जीतकर अपने साम्राज्य में शामिल किए।
2. **प्रशासन की सुविधा के लिए साम्राज्य विभाजन** : शेरशाह ने अपने प्रशासन को अधिक कुशलता से चलाने के लिए सारे साम्राज्य को 47 सरकारों में बांट रखा था। शेरशाह की तरह अकबर ने भी साम्राज्य विभाजन किया। किन्तु उसके काल में सरकार के स्थान पर प्रान्त की सर्वोच्च तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाईयां थी।

3. **सम्राट पद के प्रति धारणा** : शेरशाह की सम्राट पद के प्रति धारणा थी कि उसे बहुत ही शक्तिशाली होना चाहिए। उसने निरंकुश शक्ति का विभाजन नहीं किया उसने अपने मन्त्रियों को पूरी तरह आधुनिक साथियों की तरह ही रखा। यद्यपि अकबर ने भी सम्राट के पद के बारे में शेरशाह की धारणा का ही अनुसरण किया। तो भी वह कदम–कदम पर मंत्रियों से परामर्श लेता रहा।

4. **सेना की व्यवस्था** : शेरशाह ने सेना में कई सुधार किए। उसने घोड़ों को दागने व सैनिकों के हुलिया दर्ज करने की प्रथा को जारी रखा। वह स्वयं सैनिकों की भर्ती करता था। अकबर ने उसका अनुसरण किसा और कई सुधार किए अकबर के काल में सैनिक सुधारों की एक नई प्रथा मनसबदारी शुरू हुई

5. **न्याय प्रणाली** : शेरशाह न्याय प्रिय शासक था। वह न्याय को पूनित एवं उत्तम धार्मिक संस्कार मानता था। उसने न्याय के मामले में हिन्दुओं तथा मुसलमानों से कोई भेदभाव नहीं किया। अकबर ने इसी न्याय प्रणाली को जारी रखा जो शेरशाह के काल में थी।

6. **धार्मिक सहनशीलता की नीति** : शेरशाह ने एक शासक के रूप में आंशिक धार्मिक सहनशीलता की नीति अपनाई। इस सम्बन्ध में विख्यात, इतिहासकार, प्रो. सतीश चन्द्र लिखते हैं कि "सूरीर के अधीन राज्य रक्त और जाति आधारित अफगान संस्था ही रहा। अकबर उदय के बाद इसमें मूलभूत परिवर्तन हुए।" जो भी हो शेरशाह ने कभी हिन्दुओं को सताया नहीं मन्दिरों को तोड़ा नहीं उनकी उपेक्षा भी नहीं की। उसने हिन्दु और मुसलमानों को समान समझा। उन्हें सेना में उच्च पद दिये अकबर धार्मिक सहनशीलता की नीति में शेरशाह से भी आगे बढ़ गया। उसने जजीया तथा तीर्थ यात्रा जैसे घृणित कर हटा दिए।

7. **भूमि सुधार तथा भू राजस्व प्रणाली** : शेरशाह ने अनेक भूमि सुधार किए तथा भू राजस्व नये सिरे से तय किया। अकबर ने शेरशाह की भूमि सुधारों को अपनाया। शेरशाह के काल में टोडरमल ने भूमि सुधार किये थे अकबर ने भी उसकी सेवाओं का भरपूर लाभ उठाया। लेकिन अकबर ने शेरशाह से आगे भी सुधार किए।

हुमायूँ का पुनः आगमन

हुमायूँ को जब कहीं शरण नहीं मिली तो वह भागकर ईरान के शाह के पास चला गया। यहाँ वह लगभग 15 वर्ष रहा। भारत की राजनैतिक गड़बड़ी के बारे में सुनकर हुमायूँ ने ईरान के शाह से सैनिक सहायता करने का अनुरोध किया। जिसे शाह ने मंजूर कर लिया। बदले में हुमायूँ ने वादा किया कि वह शिया धर्म को स्वीकार करेगा। ईरान के शाह ने 11000 सैनिक सहायता प्रदान की। उस सेना की सहायता से हुमायूँ ने 1554 में कन्धान और काबुल पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान को बन्दी बनाकर अन्धा करके मक्का भेज दिया। हिन्दाल इस युद्ध में मारा गया तथा अस्करी भी मक्का चला गया। काबुल कन्धार जीतने के बाद हुमायूँ ने पंजाब पर आक्रमण किया। इस समय अफगानों का कोई एक सर्वमान्य शक्तिशाली नेता नहीं था उनके मध्य युद्ध चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में हुमायूँ ने लाहौर पर अधिकार कर लिया तथा इसी वर्ष जुलाई के महीने में वह दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार करने में सफल हो गया। किन्तु हुमायूँ विजय का फल खाने के लिए अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका। 24 जनवरी 1556 के वह अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिर पड़ा और उसकी मौत हो गयी।

अध्याय-2

मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण तथा उसका सीमा विस्तार (Consolidation and Territorial Expansion Under the Mughals)

अकबर

प्रारंभिक जीवन : अकबर का पूरा नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर था। उसका जन्म 23 नवम्बर 1542 को हुमायूँ की इरानी पत्नी हमीदा बानू बेगल की कोख से अमर कोट नामक स्थान पर हुआ। जब उसके पिता हुमायूँ एक शरणार्थी के रूप में ईरान के शाह के पास चले गये तो उसका पालन–पोषण उसके चाचा कामरान ने किया। 12 वर्ष पश्चात् हुमायूँ ने भारत को पुनः प्राप्त कर लिया।

24 जनवरी 1556 को हुमायूँ की मृत्यु हो गई। उस समय उसकी आयू 13 वर्ष की थी। जब उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह पंजाब में कलानोर नामक स्थान पर था। बैरम खां ने उसी समय अकबर का राज्यभिषेक, कर दिया तथा स्वयं उसका संरक्षक बन बैठा।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जब अकबर सिंहासन पर बैठा, एक तो वह अभी बच्चा था और दूसरे उसके सामने अनेक कठिनाइयां थी।

1. अकबर के अधिकार में पंजाब का थोड़ा सा क्षेत्र था, उसे इस छोटे राज्य को अनेक शत्रुओं से बचाकर धीरे–धीरे बढ़ाना था।
2. पंजाब क्षेत्र को अफगान सरदार सिकन्दर सूर अकबर से छीन कर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था।
3. काबुल में उसके सौतेले भाई मिर्जा हाकिम ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। वह पंजाब व दिल्ली को भी अपने अधीन करना चाहता था।
4. राजपूत पुनः अपनी खोई शक्ति को संगठित करके मुगलों के विरूद्ध तैयार थे मेवाड़, जोधपुर, कालींजल और जैसलमेर जैसे शक्तिशाली राजपूत राज्य स्वतंत्र हो चके थे।
5. गुजरात और मालवा में बहादुर के उत्तराधिकारी स्वतन्त्र रूप से शासन कर रहे थे।
6. उत्तर भारत में उसका सबसे बड़ा शत्रु अफगान व सम्राट आदिलशाह और उसका यौग्य मन्त्री हेमू था। आदिलशाह का चुनार से बंगाल तक के क्षेत्र पर अधिकार था। हुमायूं की अचानक मृत्यु का लाभ उठा कर हेमू ने दिल्ली स्थित मुगल अधिकारी तार्दी बेग को खदेड़ कर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया था।
7. अकबर के पास धन का अभाव था और देश की आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी। भयंकर अकाल के कारण लोगों का जीवन कष्टमय हो चुका था। इस समस्या का समाधान करने के लिए अकबर को अनेक सुधार करने थे।

पानीपत की दुसरी लड़ाई

कारण

1. हुमायूं की मृत्यु के समय जब अकबर पंजाब में था तो आदिलशाह के मन्त्री हेमू ने समय का पूरा लाभ उठाकर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया।

2. अकबर तथा उसके संरक्षक बेरम खाँ ने अपने खोए हुए प्रदेशों को वापस लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था इसलिए युद्ध होना स्वाभाविक था।

घटनाएं : अकबर व बैरम खाँ को पंजाब में तार्दी बेग की पराजय का समाचार मिला। वे हेमू के विरूद्ध सेना सहित पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में आ गये। हेमू के पास करीब एक लाख लोगों की विशाल सेना थी। 5 नवम्बर 1556 को दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। प्रारम्भ में हेमू का पक्ष भारी रहा लेकिन अचानक उसकी आंख में एक तीर लगा जिसने लड़ाई के पक्ष को मुगलों के पक्ष में बदल दिया। हेमू को पकड़ कर मार दिया गया।

पानीपत की दूसरी लड़ाई का महत्त्व

पानीपत की दूसरी लड़ाई का परिणाम निर्णायक सिद्ध हुआ। इस लड़ाई ने मुगलों के पक्ष में अपना निर्णय देकर भारत में प्रभु सत्ता प्राप्ति के लिए मुगलों और अफगानों के मध्य चले आ रहे लम्बे संघर्ष का अन्त कर दिया। शीघ्र ही दिल्ली और आगरा पर अकबर का अधिकार सिद्ध हो गया। औपचारिक रूप से अकबर के सम्राट बनने की पुनः घोषणा की गई इस लड़ाई की सफलता ने अकबर की सैनिक शक्ति की धाक सारे देश में जमा दी और धीरे–धीरे उसने अनेक सैनिक सफलताएं प्राप्त की। इस लड़ाई के कुछ समय बाद ही सिकन्दर सूर ने मानकोट (पंजाब) में अकबर के सामने आत्मसर्मपण कर दिया। अब अफगानों में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो अकबर को चुनौती दे सके।

अकबर और बैरम खाँ

बैरम खाँ ईरान का रहने वाला था। अबुल फजल के अनुसार "बैरम खाँ एक सज्जन व्यक्ति था और उसमें उत्कृष्ट गुण थे। वह अपने इन्ही गुणों के सहारे उन्नति करते हुए मुगलों के साम्राज्य में बहुत ऊँचे पद तक पहुंचा।

सर्वप्रथम बैरम खाँ हुमायूँ की सेवा में आया और अपने स्वामी का हर सुख–दुख में साथ दिया। युद्ध में वीरता से लड़ा। परन्तु मुगलों से हारजाने के पश्चात् वह हुमायूँ से फिर आ मिला। बैरम खाँ के ही प्रयत्नों द्वारा ही हुमायूं को ईरान के शाह से सैनिक सहायता मिल सकी और वह काबुल तथा कन्धार विजय प्राप्त करने में सफल हो सका भारत के राज्य को पुनः प्राप्त करने में भी बैरम खाँ ने हुमायूँ की बहुत सहायता की। माच्छीवाड़ा तथा सरहीन्द के युद्ध में उसने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। हुमायूँ ने उसकी सेवा से खुश होकर उसे "खान–खाना" की उपाधि दी।

जब हुमायूँ की मृत्यु हो गई तो अकबर बैरम खाँ के साथ सिकन्दर सूरी का पीछा करने के लिये पंजाब की ओर गया हुआ था। बैरम खाँ ने स्वामी भक्ति का परिचय देत हुए कलानौर के स्थान पर अकबर की ताजपोशी कर दी तथा उसे सम्राट घोषित कर दिया। वी.ए. सिमथ के अनुसार, "उस समय अकबर को किसी निश्चित राज्य का स्वामी नहीं कहा जा सकता था।" यह बैरम खाँ के प्रयत्नों का ही फल था कि अकबर को साम्राज्य की पुनः प्राप्ति हो सकी।

बैरम खाँ का प्रभुत्व : 1556 से 1560 तक के काल को मुगल काल से बैरमखाँ का काल माना जाता है। इस दौरान राज्य की समस्त शक्तियां बैरमखाँ के हाथों में रही अकबर तो केवल नाममात्र का बादशाह था वह जिसे भी चाहता, उच्च पद पर नियुक्त कर सकता था।, उसेन शिया मत को मानने वाले कई व्यक्तियों को उच्च पद पर नियुक्त किया। वह अपनी इच्छा अनुसार बड़े स बड़े अधिकारी को उसके पद से हटा सकता था। उसने पीर मुहम्मद को नायब पद से हटा दिया था। वह सप्ताह में दो बार दिवाने खास में बैठता था तथा सैनिक व असैनिक–कार्यों सम्बन्धी आदेश जारी करता था। इस दौरान अकबर ने उनके कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया।

बैरम खाँ के पतन के कारण

बैरम खां के पतन के निम्नलिखित कारण थे :–

1. **बैरमखाँ के स्वभाव में परिवर्तन** : शक्ति प्रायः मनुष्य को पथ भ्रष्ट कर देती है। 1556 के बाद बैरम खाँ का स्वभाव भी शक्ति पाकर बदल गया। उसने हुमायूँ की बहन की बेटी सलीला बेगन से विवाह कर अपना सम्बन्ध शाही परिवार से जोड़ लिया। वह बहुत घमण्डी व कठोर हो गया। इससे लोग उसके शत्रु बन गये।
2. **इर्षालू अमीर** : मुगल दरबार में अनेक अमीर बैरम खाँ की उन्नति और उत्कर्ष से नफरत करते थे। इन लोगों ने बैरम खाँ के विरू(एक दल बना लिया। वे सम्राट को उसके विरूद्ध उकसाने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे।
3. **शिया मतावलम्बी होना** : बैरम खाँ शिया धर्म को मानने वाला था। वह शिया लोगों के प्रति अधिक सहानुभूति रखत था। उसने अपने पंद का लाभ उठाते हुए शेख गदाई मुख्य सदर के पद पर नियुक्त कर दिया। इसे सुन्नी लोग सहन नहीं कर सकते थे।

4. **अकबर का बालिग होना** : इतिहासकार बैरम खाँ को पतन का सबसे महत्वपूर्ण कारण अकबर का बालिग होना मानते हैं। 1560 में अकबर 18 वर्ष का हो चुका था। वह अपने आपको परिपक्व पुरूष महसूस करने लगा तथा अब वह किसी के बन्धन में रहना अच्छा नहीं समझता था। दूसरी ओर बैरम खाँ अकबर को नियन्त्रण में रखना चाहता था। अकबर और बैरम खाँ में कई छोटी–छोटी बातों पर मतभेद हो गया। अकबर ने बैरम खाँ के साथ हुए मतभेद से सीख लिया कि अधिक दिनों तक राज्य सत्ता किसी दूसरे व्यक्ति के हाथों में नहीं सौपी जा सकती, चाहे वह किसी समय कितना ही स्वामीभक्त क्यों न हो।

5. **हरम की साजिश** : बैरम खाँ के पतन का मुख्य तथा तत्कालीन कारण हरम की उसके विरू(साजिश थी। अकबर की मुरब्बी माहम अनगा ने अपने पुत्र आदम खाँ, दिल्ली के गर्वनर साहबुदीन और अकबर की माता हमीदा बानो बेगम के साथ मिलकर बैरम खाँ को राज्य कार्यों से अलग करने की योजना बनाई। अकबर को उसकी माता के बीमार होने के बहाने से आगरा से दिल्ली बुलाया गया और यहाँ सब लोगों ने मिलकर सम्राट को प्रेरित किया कि वह बैरम खाँ से सब राज्य शक्तियाँ अपने हाथ में ले लें। और उसे राजनीतिक कार्यों से अलग कर दें।

अकबर ने बैरम खाँ की शक्ति छीनने के लिए बड़ी होशियारी से काम लिया। वह शिकार के बहाने आगरा से दिल्ली आ गया। दिल्ली से बैरम खाँ के नाम एक फरमान जारी करके उसे संरक्षक के पद से हटा दिया और साथ ही सलाह दी कि अब बैरम खाँ को हज के लिए मक्का चले जाना चाहिए। बैरम खाँ ने सम्राट के आदेश को स्वीकार किया। वह अपने पद को छोड़कर पंजाब की ओर चला गया। इस समय अकबर ने पीर मुहम्मद को उसके पीछे भेजा। बेरम खाँ ने इसे अपना अपमान समझा और उसने विद्रोह कर दिया। जालन्धन के समीप उसे हरा दिया गया। सम्राट ने उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे क्षमा कर दिया। कुछ उपहार देकर उसे सम्मानपूर्वक मक्का जाने की आज्ञा दी। परनतु बैरम खाँ अभी पाटन के पास ही पहुँचा था। मुबारक खाँ एक अफगान ने उसे कत्ल कर दिया। इस प्रकार बैरम खाँ का अन्त हुआ। अकबर को यह समाचार सुनकर बहुत दुखः हुआ। उसने उसके परिवार को अपने पास बुला लिया। उसने बैरम खां की विधवा सलीमा बेगम से विवाह कर लिया। बैरम खाँ के बेटे अब्दूर्रहीम की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया और बड़ा होने पर उसे अपने पिता की ही तरह "खान–खाना" की उपाधि दी।

अकबर की विजयें

1. **दिल्ली और आगरा की विजय** : जब हुमायूँ की मृत्यु 1556 में हुई तो उस समय अकबर के अधिकार में पंजाब का थोड़ा सा भाग था। 1556 ई. में उसने अपने संरक्षक बैरम खाँ की सहायता से पानीपत की दूसरी लड़ाई में हेमू को पराजय दी इस प्रकार दिल्ली और आगरा पर अपना अधिकार जमा लिया।

2. **ग्वालियर, अजमेर ओर जौनपुर** : अगले चार वर्षों में 1556–60 ई. तक बैरम खाँ की सहायता से अकबर ने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर पर विजय पाई और उन्हें मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

3. **मालवा 1561–62 ई.** : मालवा अफगान सरदार बाजबहादुर राज्य करता था। अकबर ने एक सेना आदम खाँ और पीर मुहम्मद के अधीन करने को चढ़ाई कर दी। मालवा, नरेश की हार हुई और वह प्रदेश पीर मुहम्मद को दिया गया। परन्तु पीर मुहम्मद एक असफल शासक सि(हुआ और बाजबहादुर ने एक बार फिर मालवा पर अधिकार कर लिया। 1562 में अकबर ने एक अन्य सेना उसके विरू(भेजी। बाजबहादुर ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। उसे एक हजारी मनसबदार बना दिया गया तथा मालवा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

4. **गोडवाना की विजय 1564 ई0** : गोडवाना में उन दिनों रानी दुर्गावती अपने अल्प व्यस्क पुत्र वीर नारायण की संरक्षिका बनकर राज्य कर रही थी। वह एक वीर योग्य शासिका थी। 1564 ई. में अकबर ने आसफ खाँ को गोडवाना पर आक्रमण करने भेजा। रानी दुर्गावती ने शत्रुओं का मुकाबला किया, परन्तु जब उसे विजय की कोई सम्भावना नजर न आई। उसने अपने आपको अपमान से बचाने के लिए आत्महत्या कर ली। उसका वीर पुत्र लड़ता हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार गोडवाना पर मुगलों का अधिकार हो गया।

5. **मेवाड़ से संघर्ष 1568–97 ई0** : अकबर की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बहुत से राजपूतों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। और कुछ ने तो मुगल सम्राट से विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए। परन्तु मेवाड़ के शासक राणा उदय सिंह ने ऐसा करने से बिल्कुल इन्कार कर दिया। अकबर से यह सब सहन नहीं हुआ। उसने स्वयं मेवाड़ पर आक्रमण किया ओर उसकी राजधानी चितौड़ को घेर लिया। राणा उदयसिंह ने रक्षा कार्य अपने दो सेना नायकों जयमल और फत्य को सौपकर स्वयं अरावली की पहाड़ियों में चला गया। पूरे चार महीने तक जयमल और फत्ता

ने मुगलों को किले के समीप न आने दिया। चितौड़ के किले को गोला बारूद से भी उड़ाने के प्रयत्न किए गये। परन्तु ये सभी योजनाएँ असफल सिद्ध हुई। राजपूतों ने हर मुगल आक्रमण का मुँह तोड़ ज़वाब दिया। परन्तु जब एक दिन जयमल किले की मरम्मत करवा रहा था कि अकबर ने दिखलिया उसे गोली का निशाना बना दिया गया। उसके मरते ही मुगल राजपूतों पर टूट पड़े ओर राजपूतों की हार हुई। इस प्रकार चितौड़ पर मुगलों का अधिकार हो गया।

उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र महाराणा प्रताप (1572–97) ने स्वतन्त्रता संग्राम जारी रखा। राज्य सिंहासन पर बैठते ही उसने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक वह मुगलों को मेवाड़ से निकाल नहीं लेगा आराम से नहीं बैठेगा। परन्तु यह कार्य आसान नहीं था। इस वक्त राजपुताना के बहुत से राजपूत सरदार पहले ही अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। फिर भी राणा प्रताप ने हिम्मत नहीं हारी। 1576 में अकबर ने मानसिंह और आसफ खां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना महाराणा प्रताप के विरूद्ध भेजी। मुगलों और राजपूतों के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में मुगलों की विजय हुई राणा अपनी जान बचाकर भाग गया। इस हार के पश्चात भी राणा प्रताप 1576 से 96 तक मुगलों के आक्रमणों का सामना करता रहा। अन्त में अजमेर, चितौड़ आदि को छोड़कर मेवाड़ के सब प्रदेश मुगलों से जीत लिए। 1597 में अपनी मृत्यु से पहले उसने अपने पुत्र अमर सिंह से वचन लिया कि वह मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं करेगा। इस प्रकार राणा प्रताप ने मरते दम तक मुगलों का सामना किया और देशभक्ति की एक अमिट मिशाल बन कर रह गया। डा. वी.ए. स्मिथ उसकी प्रशंसा में लिखते हैं "हो सकता है कि वह पराजित होने वाले विजेताओं से भी अधिक महान हो।

गुजरात की विजय 1572–73

1572 में अकबर ने पश्चिम भारत के प्रसिद प्रदेश गुजरात पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना भेज दी। वहां के शासक मुज्जफर शाह ने जल्दी ही अधीनता स्वीकार कर ली ओर अकबर वापस लौट आया। लेकिन उसके लौटते ही गुजरात में फिर विद्रोह हो गया। 1572 में अकबर ने गुजरात के विद्रोहियों को सारलाल की लड़ाई में हराया और 1573 के आरम्भ में उसने सूरत पर विजय प्राप्त कर ली। इस प्रकार सारे गुजरात पर अधिकार हो गया।

बिहार और बंगाल

1574–76 ई. बंगाल और बिहार शासक सुलेमान करबनी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु 1572 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र दाउद खाँ ने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इसलिए 1574 में वह स्वयं ही उसकी और बढ़ा। दाऊद खाँ की पराजय हुई और उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली अकबर ने ये प्रेदश अपने योग्य सेनापति मुनीमखाँ के सुपुर्द कर दिया। परन्तु 1575 ई. में जब उसकी मृत्यु हो गई तो दाऊद खाँ ने दोबारा विद्रोह कर दिया। और अपने खोए हुए प्रदेश पर अधिकार कर लिया इसलिए अकबर ने एक अन्य सेना 1576 में उसके विरूद्ध भेजी। दाऊद खाँ की पराजय हुई और उसका वध कर दिया गया। बिहार और बंगाल मुगल साम्राज्य में लिये गये।

काबुल को मुगल साम्राज्य में मिलाना (1585) ई.

काबुल में अकबर का सौतेला भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम राज्य करता था। 1581 में उसेन अकबर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया लेकिन उसकी करारी हार हुई। उसे क्षमा मांग लेने पर काबुल का राज्य उसी के पास रहने दिया गया। 1585 में मिर्जा हकीम की मृत्यु हो गई। अकबर इस अवसर का लाभ उठा कर काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया और मानसिंह को वहाँ का गर्वनर नियुक्त कर दिया।

कश्मीर विजय 1586 ई.

1586 ई. में अकबर ने राजा भगवानदास तथा कासीम खाँ को कश्मीर विजय के लिए भेजा उन्होंने कश्मीर के शासक युसुफ खाँ तथा उसके बेटे याकूब को पराजित किया। कश्मीर को मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

सिन्ध की विजय

1591 में मुलतान के गर्वनर अर्ब्दुरहीम खानखाना को सिन्ध विजय करने के लिए भेजा गया। सिन्ध के शासक जानी ने सहवान के स्थान पर शत्रुओं का डटकर मुकाबला किया ओर उनको बहुत हानि पहुँचाई। टोडर मल का बेटा धारू भी इस युद्ध में मारा गया। अन्त में जानी बेग की हार हुई। उसने मुगलों के सामने आत्म सर्म्पण कर दिया और अपनी पुत्री का विवाह खानखाना के पुत्र से कर दिया। अकबर ने उसे मनसबदार बना दिया तथा सिंध को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

उत्तर पश्चिमी कबीलों का दमन

1586–87 ई. में काबुल पर अधिकार कर लेने के पश्चात अकबर को उजबेक और सुफजई आदि कबीलों को अपने वश में करने की तरफ ध्यान देना पड़ा। ये कबीले सदा उपद्रव मचाए रखते थे। इन कबीलों को दबाले का कार्य जेन खाँ को सौंपा गया। जिसे अपेन उद्देश्य में थोड़ी–बहुत सफलता प्राप्त हुई पर जेन खाँ इन्हें पूरी तरह कुचल न सका। इसलिए उसकी सहायता के लिए राजा बीरबल व हकीम अब्दुल फतह को भेजा गया। परन्तु ये सभी नायक मिलकर भी कोई कार्य न कर सके। युसुफजई पठानों ने मुगल सेना के करीब आठ हजार सैनिकों को पत्थरों और तीरों से मार डाला। बीरबल भी मारा गया तथा जेन खाँ को भी भागना पड़ा अन्त में राजा टोडरमल और शहजादा मुराद ने इन कबिलाईयों पर काबू पाया। हजारों की संख्या में इन कबीलाईयों का वध किया गया। और कुछ को पकड़ कर अन्य देशों में दासों की तरह बेच दिया गया। इस प्रकार ये कबीले शान्त हुए।

काबुल 1595 ई.

1595 ई. में अकबर ने काबुल को अपने अधिकार में ले लिया। उस समय कन्धार ईरान के शाह के अधीन था। वहाँ के गर्वनर मुज्जफर हुसैन मिर्जा के शाह के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। उसने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया और अपने आप कन्धार मुगलों को सौंप दिया। मुज्जफर हुसैन को पाँच हजार की मनसबदारी प्रदान की गई।

दक्षिण भारत की विजय

मुगल सम्राटों में से अकबर ही सबसे पहला सम्राट था जिसने दक्षिण विजय की ओर ध्यान दिया। उस समय दक्षिण भारत में चार प्रसिद्ध राज्य थे–खानदेश, अहमद नगर, बीजापुर ओर गोलकुण्डा।

दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान करने से पहले वहां के सुल्तानों को सन्देश भेजा गया कि वे अकबर की अधीनता स्वीकार कर लें। खानदेश के शासक अलीखाँ ने जल्दी ही अकबर की अधीनता स्वीकार की ली। अब अकबर ने दक्षिण के अन्य राज्यों की और ध्यान दिया। तथा राजकुमार मुराद और अर्ब्दूरहीम खानखाना को दक्षिण विजय के लिए भेजा। खानदेश का शासक अलीखाँ भी शाही सेनाओं के साथ हो लिया। 1595 ई. में शाही सेनाओं ने अहमदनगर को घेर लिया। अहमदनगर पर उन दिनों बीजापुर के सुल्तान आदिल शाह की विधवा बेगल चान्द बीबी के हाथ में थी। उसने बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया और किले को जीतने के मुगलों के सब प्रयत्न असफल बना दिय। लड़ाई लम्बी खिंचने के कारण दोनों पक्षों में 1596 में सन्धि हो गई। जिसके अनुसार मुगलों को बरार का प्रेदश मिला। बरार का प्रदेश देने के बाद बहुत से सरदार चान्द बीबी के विरूद्ध हो गए। उन्होंने मुगलों को बरार से निकालने की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। 1597 में सुपा के स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ जिसमें मुगलों को बहुत हानि उठानी पड़ी। खानदेश का शासक अलीखाँ भी इस युद्ध में मारा गया। लेकिन मुगल सेनाओं ने बरार को अपने हाथ से न निकलने दिया।

साम्राजय विस्तार

इस प्रकार 1602 ई. तक अकबर ने समस्त उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत के कई प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इस विशाल साम्राज्य के 15 प्रान्त थे – आगरा, अवध, इलाहाबाद, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली काबुल, लाहौर मुल्तान, मेवाड़, अहमद नगर, बरार और खानदेश।

अकबर की मृत्यु

15 सितम्बर 1605 ई. को अकबर की मृत्यु हो गई उसे आगरा से पाँच मील दूरी पर स्थित सिकन्दरा के सुन्दर मकबरे में दफनाया गया।

जहांगीर का काल (1605–1627)

अकबर की मृत्यु के बाद 1605 ई. में जहांगीर बादशाह बना। जहांगीर का काल उसके उत्तराधिकारियों के काल तुलना में सामान्यतः शान्तिपूर्वक था। यद्यपि उसने बड़ी संख्या में युद्ध नहीं किए तो भी उसने मुगल साम्राज्य के विसतार से निम्न ढंग से सहयोग दिया।

1. **बंगाल विजय** : जहाँगीर के काल में बंगाल के कई भागों में अफगान सिर उठा रहे थे। उन्होंने जैसोर, कामरूप, कछाड के हिन्दु शासकों का सहयोग प्राप्त था। 1608 में जहांगीर ने ईसमाईल खाँ को बंगाल भेजा। उसने जेसो के राजा को अपनी और मिला लिया और उसके सहयोग से अफगान सरदारों को पराजित करता गया। अफगानों ने आत्म सर्मपण कर दिया। ढाका को बंगाल की नई राजधानी बनाया गया।

2. **मेवाड़** : जहांगीर को मेवाड़ के मामले में अकबर से अधिक सफलता मिली। वह मेवाड़ से चले आ रहे संघर्ष को समाप्त करने में सफल रहा। उसने मेवाड़ से निपटने के लिए आसफ खाँ तथा महावत खाँ जैसे योगय सेनापतियों को भेजा। उन्हे पूर्ण सफलता न मिलने पर 1615 ई. में उसने शहजादा खुर्रम को मेवाड़ के विरूद्ध भेजा। खुर्रम ने अपना सैनिक प्रभुत्व जमाने के लिए मेवाड़ में लूटमार शुरू कर दी तथा सैनिक चौकियाँ जमा ली। अन्त में मेवाड़ के शासक राणा अमर सिंह ने 1615 में मुगलों से सन्धि कर ली।

3. **कांगड़ा विजय** : जहांगीर ने कांगड़ा के किले को जीतने का निर्णय लिया। जिसे जीतने में अकबर असफल रहा था। 1620 में जहांगीर ने शहजादा खुर्रम को कांगड़ा जीतने के लिए भेजा। 14 महीनों के लम्बे संघर्ष के बाद वह सफल हुआ। कांगडा को मुगल साम्राज्य का अग बना लिया।

4. **कन्धार का हाथों से निकल जाना** : 1621 ई. में ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार पर अधिकार कर लिया। जहांगीर ने शहजादा खुर्रम को कन्धार जीतने के लिए भेजना चाहा। लेकिन खुर्रम ने जाने से इन्कार कर दिया। इस तरह खुर्रम के विद्रोह के कारण कान्धार मुगलों के हाथों से निकल गया।

5. **अहमद नगर की विजय** : जहांगीर ने अहमदनगर के विरू(समय–समय पर अभियान भेजे। उसके पुत्र शहजादा खुर्रम को 1617 और 1621 ई. में मलिक अम्बर को परास्त करने में सफलता मिली। खुर्रम के विद्रोह के समय अहमदनगर के सेनापति मलिक अम्बर ने धीरे–धीरे अहमद नगर राज्य के अनेक प्रदेश मुगलों से छीन लिए। लेकिन अहमदनगर के दुर्ग पर जहाँगीर के सैनिकों का ही आधिपत्य रहा।

6. **बीजापुर द्वारा अधीनता स्वीकार** : 1618 में जब अहमदनगर के सेनापति मलिक अम्बर और मिजापुर के सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह में अन बन हो गई तो बीजापुर ने तुरन्त मुगलों की अधीनता स्वीकार करके अपने 5000 सैनिकों को सम्राट की सेवा में स्थाई रूप से भेज दिया।

शाहजहाँ का काल 1629–58

शाहजहाँ का असली नाम खुर्रम था। उसका जन्म 5 जनवरी 1592 को लाहौर में हुआ था। जहांगीर के पुत्रें में वह सबसे अधिक योग्य था। जहांगीर अपने पिता के शान काल में वह दक्षिण का सुबेदार रह चुका था। अतः उसे प्रशासनिक अनुभव भी प्राप्त था। उसका विवाह नूरजहाँ के भाई आसफखां की पुत्री अर्जमन्द बानू बेगम जो इतिहास में मुमताज के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शाहजहाँ के अधीन मुगल साम्राज्य का विस्तार

1. **अमहद नगर पर विजय** : शाहजहाँ सम्राट बनने से पहले अहमदनगर के सेनापति मलिक अम्बर को कई बार पराजित कर चुका था। लेकिन जहांगीर अहमदनगर को स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य का अंग नहीं बनाये रख सका। 1634 में शाहजहाँ ने अहमदनगर का आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में अमहदनगर बीजापुर और गोलकुण्डा की संयुक्त सेनाओं की हार हुई। अहमद नगर को मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया गया।

2. **बीजापुर की पराजय व मुगलों की अधीनता स्वीकार करना** : अहमदनगर मुगल संघर्ष के समय बीजापुर ने अहमद नगर को सैनिक सहायता दी थी। अतः शाहजहाँ ने बीजापुर को पाठ पढ़ाने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। एक लम्बे संघर्ष के बाद बीजापुर के शासक ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली।

3. **गोलकुण्डा द्वारा मुगलों की अधीनता स्वीकार करना** : अहमदनगर ओर बीजापुर की पराजय के बाद गोलकुण्डा के शासक का साहस टूट गया। अब शाहजहाँ ने भी गोलकुण्डा पर दबाव डालना शुरू कर दिया। वहाँ के शासक कुतुबशाह ने शाहजहाँ की अधीनता बिना लड़े ही स्वीकार की ली।

औरंगजेब का काल 1658 से 1707 ई.

औरंगजेब को अपने पिता शाहजहाँ से एक विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ। जिसे उसने अपनी विजयों द्वारा और भी अधिक विस्तृत कर दिया।

उत्तरी भारत के अभियान

औरंगजेब ने 1667 ई. से 1675 ई. के दौरान उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेशों के बसे युसुफजई अफरीदी तथा खटक नामक उपद्रवी कबीलों की शक्ति का दमन करने के लिए कई अभियान भेजे अन्त में वह इन कबीलों की शक्ति को दबाने में सफल रहा।

अध्याय-3

मुगलों की राजपूत नीति
(Mughals Relations with the Rajputs)

मुगलों ने राजपूतो के प्रति एक विशेष प्रकार की नीति अपनाई। भारत में राजपूतों की ताकत को देखते हुए सर्वप्रथम अकबर ने इस ओर ध्यान दिया। अकबर ने राजपूतों के प्रति सद्भावना, मेल मिलाप व मित्रता की नीति अपनाई। उसने इस नीति को कई कारणों से प्रेरित होकर अपनाया जिसमें प्रमुख ये हैं :–

1. **स्थायी व्यवस्था की स्थापना के लिए** : अकबर अपने समय का एक महान राजनीतिज्ञ और कुटनीतिज्ञ था। सिंहासन पर बैठने के कुछ समय उपरान्त ही वह समझ गया था। कि भारत वर्ष में हिन्दुओं के सैनिक वर्ग राजपूतों को शत्रु बनाकर स्थाई शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना कठिन है। वह अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहता था लेकिन एक समझदार शासक की भाँति अनावश्यक युद्धों से बचना चाहता था। इसलिए उसने राजपूतों के प्रति शान्ति की नीति अपनाई।

2. **मुगल सैनिकों का अभाव** : भारत में मुगल सैनिकों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं थी। अकबर अफगानों पर भरोसा नहीं कर सकता था। मुगलों की संख्या कम होने के कारण सामान्यतः उनके व्यवहार से घमण्ड, निष्ठुरता तथा क्रूरता झलकती थी। समय–समय पर वे अपनी विद्रोही भावनाओं का प्रदर्शन कर चुके थे। शाह अबुल माली से लेकर शाह मंसूर तक विद्रोहियों की एक लम्बी सूची बन जाती है। अकबर ने अपने सौतेले भाई मिर्जा हकीम ने भी अकबर के विरूद्ध षडयंत्र रचा था।

3. **राजपूतों के अनेग गुण** : अकबर को राजपूतों के अनेक गुणों की जानकारी थी। वह जानता था कि राजपूत वीर होने के साथ–साथ स्वामीभक्त हैं। वे समय पड़ने पर अपने स्वामी के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं। उनके इन सैनिक गुणों का प्रयोग साम्राज्य विस्तार और विश्वसनीय प्रशासक सहायक के रूप में किया जा सकता था।

4. **मुगल वंश की नींव सुदृढ़ करने के लिए** : अकबर लोगों में फैले इस भ्रान्ति को दूर करना चाहता था कि मुगल विदेशी शासक थे। वह राष्ट्रीय सदभावना से प्रेरित होकर मुगल वंश की नींव को सुदृढ़ करना चाहता था। चूंकि अकबर युग से पूर्व ही राजपूत हिन्दू जनता को राजनैतिक तथा सैनिक नेतृत्व प्रदान करते आ रहे थे इसलिए अकबर ने उन्हीं का हृदय जीतने के लिए उनकी तरफ मित्रता का हाथ बढ़ाया।

5. **विशेष वातावरण और व्यक्तियों का प्रभाव** : अकबर ने राजपूतों के प्रति उदार नीति इसलिए भी अपनाई क्योंकि उसका जन्म राजपूतों के राज्य में हुआ। वह देख चुका था कि उसके पिता हुमायूँ को विपत्ती के समय राजपूतों ने ही सहयोग दिया जबकि उसके चाचाओं ने उसका साथ नहीं दिया, दूसरे अकबर का गुरू अब्दूल लतीफ व संरक्षक बैरम खाँ दोनों उदार थे। उनके प्रभाव के कारण भी अकबर के हृदय में धार्मिक कट्टरता नहीं पनपी।

अकबर की राजपूत नीति की विशेषताएँ

1. **राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध** : अकबर ने राजपूतों को अपने समीप लाने के लिये उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। उसने 1562 ई. में आमेर के राजा बिहारीमल की पुत्री मणीबाई से विवाह किया। बाद में उसी से उत्पन्न अपने

पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। राजा बिहारी मल का अनुसरण करते हुए बीकानेर, मेवाड़, जैसलमेर, आदि के राजाओं ने भी अकबर से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। अकबर ने अपनी राजपूत पत्नियों से सम्मानीय व्यवहार किया। उसने इन सभी को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दी। इन विवाह सम्बन्धों से अकबर को निष्ठावान राजपूतों की सेवाएँ मिल सकी।

2. **राजपूतों को उच्च पद देना** : अकबर ने परम्परावादी मुस्लिम शासकों की नीतियों को त्याग कर राजपूतों को शाही सेवा में अनेक पद और मनसब दिए। उसने आमेर के राजा बिहारी मल को अपने दरबार में बहुत ही सम्मानीय पद दिया। उसका पुत्र भगवान दास 5000 के मनसब पद पहंचा। उसके पुत्र राजा मान सिंह को उसने 7000 का मनसब दिया जो सम्भवतः या दो मुसलमानों मिर्जा अज़ीज कोका व मिर्जा शाहरूख को ही नसीब था। इतना सर्वोच्च मनसब अत्यधिक विश्वसनीय व्यक्ति को ही दिया जा सकता था।

3. **धार्मिक स्वतंत्रता** : अकबर ने अपने सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। वे राजदरबार और महलों में रहकर भी अपने सभी त्यौहारों और रीति रिवाजों को पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ मना सकते थे।

4. **जजीया तथा तीर्थ यात्रा कर हटाना** : राजपूत हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। अकबर ने अपनी सहनशीलता की नीति के कारण 1564 में हिन्दूओं से लिया जाने वाला जजीया जैसा निंदनीय कर हटा लिया। अगले ही वर्ष उसने तीर्थ यात्र कर भी समाप्त कर दिया।

5. **कुछ शासकों से व्यक्तिगत सम्बन्ध** : अकबर ने अनेक राजपूत राजाओं के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित किए। 1593 ई. में जब बीकानेर के राजा राय सिंह के दामाद की पालकी से गिरने के कारण मृत्यू को गई तो अकबर स्वयं उसकी शव यात्रा में शामिल हुआ। उसने राय सिंह की लड़की को सती होने से भी रोका।

6. **अधीन न होने वाले राजपूतों के प्रति आक्रामक नीति अपनाई** : यह सत्य है कि जिन राजपूत शासकों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली उसने उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त किया। लेकिन जिन राजपूत राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की उनके प्रति उसने आक्रामक नीति का प्रयोग किया। गोडवान, मेवाड़, रणथम्भोर और कालींजर आदि के राजाओं के विरूद्ध उसने सेनाएँ भेजी और मेवाड़ को छोड़ कर सबको अपने अधीन किया। परन्तु उसने यहाँ अपनी निर्धारित नीति को नहीं छोड़ा। उसने वहां बसे हिन्दुओं और राजपूतों से धार्मिक दृष्टि से कोई भी अत्याचार नहीं किया।

अकबर की राजपूत नीति के परिणाम

1. **राजपूतों द्वारा मुगल साम्राज्य की सेवा** : अकबर की मित्रवत और उदार राजनीति के फलस्वरूप मेवाड़ के अतिरिक्त सभी राजपूत राज्य के राजाओं ने अनेक सैनिक व प्रशासनिक पदों पर कार्य करके मुगल साम्राज्य की सेवा की। राजपूतों के अमुल्य प्रशासनिक सहयोग के कारण ही अकबर लोगों को एक कुशल प्रशासन प्रदान कर सका।

2. **साम्राज्य विस्तार** : राजपूतों के सैनिक सहयोग और सेवा के कारण अकबर ने उत्तरी भारत की अधिकांश रियासतों के साथ–साथ काबुल, कन्धार और दक्षिण के कुछ रियासतों को अपने साम्राज्य का अंग बनाने में सफलता प्राप्त की।

3. **देश में शान्ति और समृद्धि** : अकबर एवं राजपूतों में मित्रता के फलस्वरूप देश अनावश्यक युद्धों तथा अशान्ति से बचा रहा। शन्ति और व्यवस्था के वातावरण में वाणिज्य तथा व्यापार फला फूला जिसके कारण लोगों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ।

4. **कला तथा साहित्य की उन्नति** : राजपूतों के प्रति अपनाई गई नीति के कारण कला साहित्य एवं भाषा के क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का समन्यवय हुआ। राजपूत और मुगल कलाकारों ने मिलकर अकबर के काल में स्थापत्य कला और चित्रकला के क्षेत्र में राष्ट्रीय शैली को जन्म दिया।

5. **मुगल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ होना** : अकबर की दूरदर्शिता और राजपूतों के प्रति उसकी मित्रवत नीति कारण मुगल साम्राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ और गहरी हो गई की आने वाले 100 वर्षों तक मुगल साम्राज्य टिका रहा। आने वाले मुगल सम्राट जब तक अकबर की नीति का अनुसरण करते रहे मुगल साम्राज्य टिका रहा और उन्नति के मार्ग पर बढ़ता रहा।

जहाँगीर की राजपूत नीति

स्वयं एक राजपूत राजकुमारी का पुत्र होने के नाते तथा अपने पिता की उदार और मैत्रीपूर्ण नीति को आधार मानते हुए जहांगीर ने भी राजपूतों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया उसने स्वयं देख लिया था कि राजपूतों ने कितनी स्वामी भक्ति के साथ उसके पिता का हर कठिनाई में साथ दिया था। इसी कारण उसने भी अपने पिता की ही राजपूत नीति को अपनाया। सर्वप्रथम उसने भी अपने पिता की ही तरह राजपूत राजकुमारियों से विवाह किया। 1585 में उसेन भगवान दास की पुत्री मानबाई से विवाह किया। जिससे राजकुमार खुसरो का जन्म हुआ। अगल 1856 ई. में जोधपुर के राजा उदय सिंह की पुत्री से विवाह किया इसी विवाह से राजकुमार खर्रम पैदा हुआ। जो बाद में शाहजहाँ के नाम से मुगल सम्राट बना। इसके अतिरिक्त जहांगीर ने राजपूतों को उच्च पद दिया उनके साथ समानता का व्यवहार किया उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की तथा अकबर द्वारा हटाया गया जजीया तथा तीर्थ यात्रा आदि करों को दोबारा नहीं लगाया। यही नहीं जिस मेवाड़ को अकबर भी काबू में नहीं कर सकता था। जहांगीर ने अपने प्रयासों से मेवाड़ के राणा अमर सिंह से मुगलों की अधीनता स्वीकार करवा ली। राजपूतों से मैत्रीपूर्ण नीति के कारण जहांगीर के लिए अत्यंत लाभकारी परिणाम निकला। चाहे जहांगीर के राज्य काल में अनेक विद्रोह हुए परनतु फिर भी राजपूतों से मित्रता के कारण वह अपने सिंहासन पर बना रहा।

जहांगीर के बाद शाहजहां ने भी इसी मैत्रीपूर्ण नीति को जारी रखा तथा उसके काल में भी शान्ति बनी रही।

औरंगजेब की राजपूत नीति

औरंगजेब ने अपने पूर्वजों की नीति का परित्याग करके राजपूतों के प्रति युद्ध की नीति को अपनाया। इस नीति को अपनाने का सबसे बड़ा कारण उसका कट्टर सुन्नी मुसलमान होना था। यद्यपि अपने शासन काल के प्रारम्भिक बीस वर्षों अर्थात् 1658 से 78 तक उसने अपनी राजपूत विरोधी भावनाओं को प्रकट नहीं होने दिया। उसने राजपूतों विशेषकर राजा जसवन्त सिंह और राजा जयसिंह के साथ अच्छा व्यवहार किया और उन्हें उच्च पद पर आसीन रखा। जैसे औरंगजेब की स्थिति दृढ़ होती गई उसकी धर्मान्ध नीति आगे बढ़ने लगी। सर्वप्रथम उसने जयपुर के राजा जयसिंह को जिसने उत्तराधिकारी युद्ध में उसकी सहायता की थी। और जो अब भी दक्षिण में मराठों को सम्भाले हुए थे को 1661 में विष देकर मरवा डाला। अब उसने जसवन्त सिंह की ओर ध्यान दिया। उसने उसे उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त की ओर भेज दिया जहां उसकी मृत्यु निश्चित थी।

जसवन्त सिंह की मृत्यु और मारवाड़ पर पहला आक्रमण

10 दिसम्बर 1678 में जसवन्त सिंह की जमरूद के स्थान पर मृत्यु हो गई औरंगजेब को इससे बहुत प्रसन्नता हुई। उसने इस सुअवसर का लाभ उठा कर मारवाड़ को अपने अधीन लेने का प्रयास किया। 7 जनवरी 1691 को सम्राट स्वयं अजमेर पहुंचा और 7 फरवरी 1619 को उसने खानजहाँ बहादुर के नेतृत्व में मारवाड़ पर अधिकार करने के लिए सेना भेज दी। थोड़े से विरोध के बाद सारे मेवाड़ प्रदेश को मुगल फौजदारों के नियंत्रण में रख दिया गया और लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिए जसवन्त सिंह के एक सम्बन्धी इन्द्रसिंह को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया गया। उससे इसके बदले 36 लाख रूपये लिये गये। इसी समय औरंगजेब ने हिन्दुओं और राजपूतों से निर्भय होकर जजीया वसूल करना आरम्भ किया।

कुछ समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि औरंगजेब अपनी मानवाड़ सम्बन्धी नीति में बिल्कुल कामयाब हो गया परन्तु जब उसने फरवरी 1679 ई. में राजा जसवन्त सिंह की दोनों पत्नियों और एक पुत्र अजित सिंह को अभी दूध पीता बच्चा ही था को पकड़ने का प्रयास किया इस विषय में कुछ इतिहासकारों की राय है कि औरंगजेब जसवन्त सिंह की दोनों विधवाओं को शाही हरम में लेना चाहता था और अजित सिंह को मुसलमान बनाना चाहता था। सम्राट के इस व्यवहार से स्वाभिमानी राजपूतों को बहुत क्रोध आया तथा सारा मारवाड़ भड़क उठा। ऐसे अवसर पर स्वर्गवासी महाराज जसवन्त सिंह के एक मन्त्री उसकरण के पुत्र दूर्गादास राठौर ने अपनी स्वामीभक्ति और अदम्य साहस का परिचय दिया। इस शूरवीर ने अजित सिंह और

उसकी माता के पहरेदार की हत्या करके मुगलों के चंगुल से मुक्त कराकर राजस्थान पहुंचने में सफलता प्राप्त की।

मारवाड़ पर दूसरा आक्रमण

औरंगजेब इस अपमान को सहन नहीं कर सका। मारवाड़ को पुनः विजय करने तथा राठौर राजपूतों को दण्ड देने के लिए औरंगजेब ने सितम्बर 1679 में राजकुमार अकबर के नेतृत्व में विशाल सेना भेजी। अभियान की देख रेख के लिए उसने स्वयं भी अजमेर में डेरे डाल लिये। पुल्कट के निकट घमासान युद्ध हुआ जिसमें राजपूतों की पराजय हुई इस विजय के बाद मुगलों ने जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने मारवाड़ के प्रदेश उजाड़ कर रख दिया। अत्यधिक संख्या में निर्दोष लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। मारवाड़ के समस्त प्रदेश पर मुगलों का अधिकार हो गया। परन्तु उन्हें यह जान कर निराशा हुई कि दुर्गादास तथा अजित सिंह भाग निकले थे। सम्राट ने मारवाड़ को जिलों में बांट दिया तथा प्रत्येक जिले में एक फौजदार नियुक्त कर दिया। मारवाड़ के राजपूत आस–पास के जंगलों में छुप कर शत्रु से गोरिल्ला युद्ध करते रहे।

मेवाड़ का युद्ध में शामिल होना : मारवाड़ के राजकुमार अजित सिंह की मां रानी हाड़ी मेवाड़ की राजकुमारी थी। मारवाड़ की दुर्दशा देख मेवाड़ का राणा रंजीत सिंह चुप नहीं बैठ सका और उसने मारवाड़ की मदद के लिए 5000 सैनिक जोधपुर भेजे। राणा राज सिंह औरंगजेब की धर्मान्ध नीतियों से पहले ही नाराज था। वह यह भी नहीं चाहता था कि राजपूतों के आन्तरिक और उत्तराधिकार सम्बन्धी मामलों में मुगल हस्तक्षेप करें वह अजित सिंह के दावे को उचित समझता था। औरंगजेब ने मेवाड़ द्वारा मारवाड़ के समर्थन की घोषणा के साथ ही 1679 में मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। मुगलों ने मेवाड़ में भयंकर लूटपाट की और अनेक मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। राजपूतों ने किले को खाली करके गुरिल्ला युद्ध का आश्रय लिया। औरंगजेब मेवाड़ विजय के कार्य को पूर्ण समझकर वहां का दायितव राजकुमार अकबर को सौंप दिया और स्वयं वापस आ गया। लेकिन राजपूतों ने पुनः मुगलों से अनेक चौकियां छीन ली। औरंगजेब ने अपने पुत्र, अकबर को मेवाड़ से मारवाड़ भेज दिया और मेवाड़ की विजय का कार्य शहजादा आजम को दिया गया।

मेवाड़ में शहजादा अकबर का विद्रोह : मारवाड पहुंच कर शहजादा अकबर ने विजय कार्य आरम्भ किया लेकिन राजपूतों ने गुरिल्ला युद्ध को अपनाया इसलिए शहजादा उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका। राजपूतों के विरूद्ध युद्ध को व्यर्थ समझते हुए शहजादा निराश हो गया। इधर दूर्गादास ने अपनी कूटनीति से उसे राजपूतों के पक्ष में कर लिया। राजपूत शहजादे को इस शर्त पर मदद देने को तैयार हो गये कि वह अपने आप को भारत का बादशाह घोषित कर देंगे। 1681 को शहजादा अकबर ने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया। अकबर के विद्रोह से औरंगजेब बहुत दुखी हुआ लेकिन उसने साहस नहीं छोड़ा तथा अपने पुत्र का सामना करने के लिए सेना सहित अजमेर के बाहर आ डटा। औरंगजेब ने बड़ी चतुराई से राजपूत सरदारों और अकबर में संदेह पैदा करने के लिए एक पत्र में लिखा "शाबास बेटे तुमने राजपूतों को खूब मूर्ख बनाया" और उसे राजपूतों के खेमें के पास डलवा दिया। पत्र पढ़कर राजपूतों के हृदय में अकबर की ईमानदारी के प्रति संदेह हो गया। अकबर को जान बचाकर मालवा की और भागना पड़ा राजपूतों ने मालवा तथा गुजरात में खूब लूट पाट की। अब दुर्गादास को पता चल गया कि यह औरंगजेब की चाल थी। वह राजकुमार की रक्षा के लिए उसे मराठा सरदार शम्भाजी की शरण में ले गया।

मेवाड़ की सन्धि : औरंगजेब ने स्वयं को विभिन्न शत्रुओं से घिरा पाकर और मारवाड़ के पक्ष को निर्बल करने के लिए मेवाड़ के साथ सन्धि कर लेना ही लाभकारी समझा, उसने राणा जगत सिंह को मेवाड़ का उत्तराधिकार मान लिया। उसने जगर सिंह से यह वचन लिया कि वह भविष्य में मारवाड़ की मदद नहीं करेगा औरंगजेब ने उसे 5000 का मनसब प्रदान किया। महाराणा ने जजीया के बदले मुगलों को मण्डलपुर और बेगनोट के परगने दे दिये।

मारवाड़ के संघर्ष जारी रहना : दुर्गादास जो दक्षिण भारत चला गया था 1687 में वापस मारवाड़ आया। उसने 1687 से 1698 तक बहुत सा इलाका मुगलों से स्वतंत्र कराने में सफलता प्राप्त की। शीघ्र ही मुगलों और दुर्गादास में सन्धि हो गई और उसने मुगलों की सेवा में 3000 का मनसबदार बना कर पाटन भेज दिया। 1701 ई. में दुर्गादास वापस मारवाड़ लौट गया क्योंकि अजित सिंह अब व्यस्क हो गया था और उसने स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया था इन दोनों ने मिलकर स्वतंत्रता अभियान को जारी रखा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाह ने अजित सिंह को मारवाड़ का उत्तराधिकारी मान लिया और मुगल मारवाड़–संघर्ष समाप्त हो गया।

नीति के परिणाम

औरंगजेब की राजपूत सम्बन्ध नीति प्रायः असफल सिद्ध हुई और उसके कई विनाशकारी परिणाम निकले।

1. राजपूत लोग जो कभी मुगल साम्राज्य का दायां हाथ थे अब वे मुगल साम्राज्य के घोर शत्रु बन गये और उन्होंने मुगल साम्राज्य का पतन लाने में हर सम्भव कार्य किया।
2. औरंगजेब की इस नीति का परिणाम यह भी निकला कि उसे दक्षिण में लड़े जाने वाले युद्ध राजपूतों के सहयोग के बिना अकेले ही लड़ने पडे।
3. राजपूतों से लगातार युद्ध लड़ने के कारण औरंगजेब को धन और जन की भारी हानि उठानी पड़ी और बदले में उसे कुछ भी हासिल न हुआ।
4. इन नीति से मुगलों के शाही सम्मान को बड़ा धक्का पहुंचा इतने युद्धों के पश्चात भी उन्हें राजपूतो के विरूद्ध कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।
5. अकबर के सारे कार्य पर जो उसने राष्ट्रीय भावना के विकास के लिये किया था औरंगजेब ने पानी फेर दिया वह समन्वय जो दोनों जातियों में था अब समाप्त होना शुरू हो गया था।
6. अन्त में हम यह कह सकते हैं कि औरंगजेब की यह अनुचित नीति मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

मुगलों की दक्षिण नीति

अकबर और दक्षिण : मुगल सम्राटों में अकबर ही सबसे पहला सम्राट था जिसने दक्षिण विजय की ओर ध्यान दिया। बाबर की अकाल मृत्यु हो जाने और हुमायूँ जीवन भर इधर–उधर लुढ़कते रहने के कारण पहले दोनों मुगल दक्षिण विजय के बार में सोच भी नहीं सके। अकबर क्योंकि अब सारे उत्तर भारत को विजय कर चुका था। इसलिए उसने दक्षिण विजय की ओर ध्यान दिया।

नीति के उद्देश्य : दक्षिण विजय करने के अकबर के कुछ विशेष उद्देश्य थे (1) अकबर एक साम्राज्यवादी शासक था वह दक्षिण के खानदेश, अहमद नगर, बीजापुर और गोलकुण्डा आदि राज्यों को विजय करके अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था। (2) एक कूटनीतिज्ञ के नाते दक्षिण को विजय करने का उसका दूसरा उद्देश्य यह था कि दक्षिण विजय करके वहा से पुर्तगालियों को बाहर निकाला जाए क्योंकि उसे पता था कि ये लोग दक्षिण के लोगों को बहुत आर्थिक हानि पहुंचा रहे है, डॉ आर. पी त्रिपाठी के अनुसार **"अकबर की दक्षिण नीति का उदेश्य केवल निजी विषय की अभिलाषा अथवा लालसा नहीं थी अपितु उसकी नीति एक महान सम्राट के उच्च आदर्श की अभिव्यक्ति थी।"**

खानदेश द्वारा अधीनता स्वीकार करना : दक्षिण के राज्यों को अपने अधीन करने के लिए मुगल सम्राट ने पहले शान्ति की नीति का सहारा लिया उसने उन सारे राज्यों के शासकों को राजदूत के माध्यम से सन्देश भेजा की वे मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ले। खानदेश के शासक अली खॉ ने तुरन्त मुगलो की अधीनता स्वीकार कर ली क्योकि वह आपस की लडाईयों से तग आ चुका था। उसने वार्षिक नजराना भेजने का वचन दिया। यह मुगलो के लिए एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी। खानदेश से मित्रता हो जाने के फलस्वरूप मुगलो को न केवल गुजरात व मालवा की रक्षा करने में सहायता मिली अपितु उनक लिए खानदेश से होकर दक्षिण की ओर बढना भी सरल हो गया।

अहमद नगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने अकबर की अधीनता मानने से इन्कार कर दिया। बीजापुर तथा गोलकुण्डा के शासकों ने मुगल सम्राट को कुछ उपहार भेज कर नम्रतापूर्वक टाल–मटोल की, परन्तु अहमद नगर के शासक बुरहान निजाम शाह ने मुगलों के राजदूत के साथ दुर्व्यवहार किया और अपमान किया। इसलिए अकबर ने सबसे पहले अहमद नगर की ओर ध्यान दिया।

अहमद नगर की विजय 1595–1600 ई. : अकबर ने राजकुमार मुराद और अब्दुर्रहीम खाने खाना को अहमद नगर विजय के लिये भेजा। खानदेश का शासक अली खाँ भी शाही सेनाओं के साथ हो लिया। 1595 ई. में शाही सेनाओं ने अहमद नगर

को घेर लिया। अहमद नगर की बागडोर उन दिनों बीजापुर के स्वर्गीय सुल्तान आदिल शाह की विधवा बेगम चान्द बीबी जो एक वीर स्त्री थी, के हाथ में थी। वह अहमद नगर के अल्पव्यस्क शासक की बुआ लगती थी। इसलिए अहमदनगर की सारी बागडोर उसी के हाथ में थी। उसने मुगलों का बड़ी वीरता से सामना किया। और दुर्ग को जीतने के सभी प्रयत्न असफल करा दिये। मुगल सेनापतियों में भी आपसी फूट थी, इसलिए उनहें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अब दोनों पक्ष लड़ाई को और लम्बा नहीं खींचना चाहते थे। इसलिए दोनों पक्षों में 1596 में एक सन्धि हो गई। इसके अनुसार मुगलों को बरार प्रदेश मिला और उन्होंने अल्पव्यसक निजामशाही शासक बहादुर निजाम शाह को अहमदनगर का शासक मान लिया।

कुछ समय पश्चात मुगलों तथा अहमदनगर के बीच फिर युद्ध छिड़ गया। इसका कारण यह था कि अहमद नगर के सरदारों ने जो मुगलों के साथ समझौता करने के पक्ष में नहीं थे। चान्द बीबी का वध करवा दिया तथा बरार पर अधिकार करने का प्रयास किया। मुराद तथा खानखाना ने 20000 सैनिकों के साथ अहमद नगर की और कूच किया। खानदेश के शासक अली खाँ ने एक बार फिर मुगलों का साथ दिया। दूसरी और अहमद नगर के सरदारों ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुल्तानों कि सहायता से 60000 घुड़सवारों की सेना तैयार की। 5 फरवरी 1596 को अण्टी नामक स्थान पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुगलों को भारी नुकसान हुआ। खानदेश का शासक अली खाँ इस युद्ध में मारा गया। मुराद तथा खानखाना के आपसी मतभेदों के कारण मुगल अहमद नगर को विजय करने में असफल रहे।

अकबर को जब इस बात का पता चला तो उसने मुराद और खानखाना को वापस बुला लिया और उनके स्थान पर अबुल फजल को अहमद नगर विजय का काम सौंपा। सम्राट ने स्वयं भी उसके पीछे दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। मुगलों ने 1599 में दौलताबाद पर अधिकार कर लिया और अगस्त 1600 में अहमदनगर के शासक बहादुर निजाम शाह को बन्दी बनाकर ग्वालियार के किले में भेज दिया इसके पश्चात भी अहमद नगर के सरदारों ने मुगलों के विरूद्ध संघर्ष जारी रखा।

खानदेश की विजय 1600–1601 : खानदेश के राजा अलीखाँ की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मीरन बहादुर ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। अकबर को एक बार फिर खानदेश की ओर ध्यान देना पड़ा। अकबर ने जल्दी ही खानदेश की राजधानी बुरहानपुर पर कब्जा कर लिया और उसके पश्चात आगे बढ़ कर प्रसिद्ध दुर्ग अमीरगढ़ को घेर लिया। मीरन बहादुर तो जल्दी ही शाही सेनाओं से डरकर अकबर के अधीन हो गया। परन्तु उसके सरदारों ने किला, फिर भी मुगलों को नहीं सौंपा। जब दुर्ग का जीतना कठिन प्रतीत हुआ तब मुगलों ने घूस से काम लिया और दुर्ग के दरवाजे खुलवा लिए। और इस प्रकार दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। मीरन बहादुर को गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में भेज दिया गया और खानदेश को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

जहांगीर की दक्षिण नीति

अकबर की भांति जहांगीर ने भी अपनी दक्षिण नीति को जारी रखा। उसकी इच्छा थी कि अहमद नगर पर नियंत्रण और कड़ा किया जाए और यदि हो सके तो बीजापुर और गोलकुण्डा पर भी अधिकार किया जाए।

अहमद नगर और मलिक अम्बर

अकबर ने अहमद नगर पर 1600 ई. में अधिकार कर लिया था। परन्तु राजकुमार सलीम के विद्रोह के कारण वह अहमद नगर को अपने साम्राजय में पूर्णतया विलीन न कर सका था। ऐसी अवस्था का लाभ उठाकर अहमद नगर के एक योग्य सरदार मलिक अम्बर ने धीरे–धीरे मुगलों से अपना राज्य वापस लेना प्रारम्भ कर दिया। मलिक अम्बर एक वीर और कुशल सेनानायक ही नहीं था वरन् एक योग्य प्रशासक भी था। बहुत से मुगल इतिहासकारों ने भी उसकी प्रशंसा की है। एक इतिहासकार ने मलिक अम्बर के सम्बन्ध में लिखा है कि "वह मुस्लिम भारत में योग्यतम सेनाध्यक्षों और राजनीतिज्ञों में एक था। युद्ध सेना के नेतृत्व, ठोस निर्णय और प्रशासन की दृष्टी में वह बेजोड़ था", मलिक अम्बर वासतव में अबीसिनिया का निवासी था। परन्तु अपनी योग्यता और स्वामी भक्ति के कारण वह अहमदनगर के निजाम शाही राज्य में उन्नति करता हुआ प्रधानमंत्री के पद पर जा पहुंचा। उसने उपद्रवी तथा समाज विरोधी तत्वों को दबा कर राज्य में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित की। राजा टोडरमल की भांति उसने अनेक राजस्व सम्बन्धी सुधार भी किए और किसानों की दशा को सुधारा। ऐसे कार्यों के कारण वह काफी लोकप्रिय हो गया। उसने सैनिक व्यवस्था में भी सुधार किए। और मराठा सैनिकों को भर्ती करके उन्हें गुरिल्ले युद्ध पद्धति पर

तैयार किया फिर धीरे–धीरे 1608 ई. तक अहमद नगर के बहुत से भागों में से मुगल सैनिकों को निकाल कर स्वतंत्र करा लिया।

अहमद नगर पर मुगलों का प्रारम्भिक अभियान : सबसे पहले जहांगीर ने 1608 ई. में 12000 सैनिकों के साथ खानखाना और शहजादा परवेज को अहमद नगर जीतने के लिए भेजा। वे दो वर्ष तक अपने प्रयत्नों में लगे रहे परन्तु कोई विशेष सफलता न मिली। इसके 1640 में अहमदनगर विजय का कार्य खानजहां लोदी को सौंपा गया जिसने 1611 ई. में गुजरात की ओर से अहमद नगर पर आक्रमण किया परन्तु हानि के साथ उसे भी वापस आना पड़ा। इसके पश्चात् एक बार फिर 1611 में ही खानजहां लोदी के नेतृत्व में ही एक अन्य सेना भेजी गई। मलिक अम्बर ने छापा मार युद्ध पद्धति को अपनाया और उसकी सेना को मराठा सैनिकों ने मुगलों के नाक में दम कर दिया। विवश होकर मुगलों को गुजरात की ओर भागना पड़ा।

खुर्रम का पहला दक्षिण अभियान 1616–1617 : नवम्बर 1616 में जहांगीर ने अहमदनगर की विजय के लिए राजकुमार खुर्रम के नेतृत्व में विशाल सेना भेजी और स्वयं राजकुमार की सहायता के लिए माण्डू में डेरा डाल दिया। राजकुमार खुर्रम ने इस अभियान का संचालन बड़े योग्य और उत्साह से किया। मलिक अम्बर ने जब यह देखा की मुगल अहमद नगर विजय पर तुले हैं तो उसने सन्धि वार्ता में ही अपनी भलाई समझी। इस सन्धि के अनुसार मलिक अम्बर ने बाला घाट का प्रदेश तथा अहमद नगर का दुर्ग मुगलों को सौंप दिया। और उन्हें बहुत सी धन राशि देना भी स्वीकार किया। यह सन्धि खुर्रम की बहुत बड़ी सफलता थी। जहांगीर ने प्रसन्न होकर उसे शाहजहां की उपाधि दे दी और 30000 हजार जाटा व 20000 हजार सवार का मनसब प्रदान किया।

खुर्रम का दूसरा अभियान 1620–21 : 1617 की यह सन्धि चिर स्थाई सिद्ध न हुई क्योंकि 1620 ई. में मलिक अम्बर ने बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों से सन्धि करके फिर से अपने खोये हुए भागों को वापस लेना प्रारम्भ कर दिया और अहमदनगर के दुर्ग को घेर लिया। मुगल सैनिकों को पहले बुरहान पुर और फिर माण्डू में शरण लेनी पड़ी। खुर्रम एक बार फिर अहमदनगर की ओर प्रस्थान करना पड़ा। खुर्रम ने शत्रुओं को पराजित कर दिया और मलिक अम्बर को 1621 ई. में फिर सन्धि करने के लिए विवश कर दिया इस सन्धि के अनुसार मलिक अम्बर को 1617 ई. के पश्चात् जीते गये सभी प्रदेश मुगलों को लौटाने पड़े।

लेकिन जब उसे समाचार मिला की नूरजहां उसके विरूद्ध षड्यंत्र कर रही है तो उत्तरी भारत लौट आया। इसके बाद मलिक अम्बर ने अहमदनगर के प्रदेशों को पुनः विजय कर लिया। 1626 ई. में मलिक अम्बर की मृत्यु हो गई लेकिन जब तक वह जिन्दा रहा मुगलों को दक्षिण भारत में पैर नहीं फैलाने दिया। 1627 में जहांगीर का देहान्त हो गया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जहांगीर की दक्षिण नीति असफल रही।

शाहजहाँ की दक्षिण नीति

शाहजहाँ एक साम्राज्यवादी शासक था परन्तु अकबर और जहांगीर का जहां दक्षिण विलय अभियान राजनैतिक था वहीं पर शाहजहाँ का राजनैतिक के साथ–साथ धार्मिक विचारों से भी प्रेरित था। वह दक्षिण की शिया रियासतों को स्वतंत्र रूप से फलता–फूलता नहीं देख सकता था।

शाहजहाँ के लिए दक्षिण विजय का कार्य अपेक्षाकृत कुछ सुगम या पहला, अहमदनगर के योग्य वजीर मलिक अम्बर की मृत्यु के कारण निजामशाही, राज्य दुर्बल हो गया था। दूसरा शाहजहाँ ने स्वयं जहांगीर के शासन काल में दक्षिण के दो अभियानों का नेतृत्व किया था जिस कारण उसे दक्कन की अवस्थाओं की अच्छी जानकारी थी।

अहमदनगर की विजय 1633 ई. : जब शाहजहाँ का ध्यान अहमदनगर विजय की ओर गया उस समय निजामशाह द्वितीय अहमदनगर का शासक था और मलिक अम्बर का अयोग्य पुत्र फतेह खाँ उसका प्रधानमन्त्री था। फतेह खाँ अपने स्वामी के प्रति वफादार नहीं था। मुगल सरदार आसफ खाँ ने इस स्थिति का लाभ उठाकर फतेह खाँ के साथ गुप्त रूप से सांठ–गांठ कर ली और अपने स्वामी का वध करवा देने के लिए राजी कर लिया। अतः फतेह खाँ ने 1631 ई. में निजामशाह को विष देकर मरवा दिया और दस वर्षीय नाबालिग हुसैन शाह को गद्दी पर बैठा कर स्वयं राजा का कर्ताधर्ता बन बैठा। फतेह खाँ ने मुगलों को कुछ प्रदेश दे दिए जो पहले मराठा सरदार शाह जी भौंसले के पास थे तथा उनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिए।

इस सारे कार्य से शाहजी भौंसले फतेह खां के विरूद्ध भड़क उठा। उसने बीजापुर के शासक से सहायता लेकर दौलताबाद के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। फतेह खां की सहायता के लिए शाहजहां ने महावतखाँ के नेतृत्व में सेना भेजी। यद्यपि मुगलों ने शाहजी और बीजापुर की सेना को पराजित कर दिया परन्तु इस समय फतेह खाँ मुगलों को धोखा देकर बीजापुरियों की तरफ मिल गया। इसलिए मुगल गर्वनर महावत खाँ को दौलताबाद का दुर्ग घेर लेना पड़ा। कुछ समय तक घेरा चलता रहा परन्तु अन्त में फतेह खां ने मुगलों से साढ़े दस लाख रूपये घूस लेकर दौलताबाद के दुर्ग की सारी युद्ध सामग्री तथा अल्पव्यस्क सुल्तान हुसैन शाह को उनके हवाले कर दिया। हुसैन शाह को जीवन भर के लिए ग्वालियर के दुर्ग में नजरबन्द कर दिया गया और 1633 ई. में अहमद नगर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। इसके कुछ समय पश्चात् मराठा सरदार शाह जी भौंसले ने निजाम शाही वंश के एक अन्य युवक को अहमद नगर के बचे हुए कुछ भागों का जिनमें बालाधार का प्रदेश भी सम्मिलित था शासक बना दिया। परन्तु 1636 ई. में शाही सेनाओं ने शाहजी भौंसले को भी पराजित कर दिया और अहमद नगर को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार 1633 ई. का अधूरा काम 1636 ई. में पूरा किया गया। अब अहमदनगर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में सदा के लिए समाप्त हो गया।

गोलकुण्डा से युद्ध : गोलकुण्डा में कुतुबशाही वंश के सुल्तान अब्दूल्ला शाह ने मुगलों के विरूद्ध अहमदनगर की सहायता की थी। दूसरे वह शिया मत को मानने वाला था। यही नहीं उसने कई बार मुगलों के विरूद्ध मराठों की सहायता की थी। इन सभी कारणों के चलते शाहजहां ने अहमदनगर की तरह गोलकुण्डा को भी अपने अधीन करने का निश्चय किया। 1635 में जब शाहजहां इस कार्य को पूरा करने के लिए दक्षिण गया तो गोलकुण्डा ने तुरन्त उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थी।

1. उसने मुगल सम्राट की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।
2. उसने सम्राट को छः लाख वार्षिक कर के रूप में देने का वचन दिया।
3. उसने स्वीकार किया कि शाहजहाँ ईरान के नाम का नहीं अपितु शाहजहाँ के नाम का खुतबा पढ़ेगा और सिक्कों पर भी मुगल सम्राट का नाम अंकित करेगा।
4. उसने मराठों को सहायता न देने का भी वचन दिया।

बीजापुर के साथ युद्ध, 1636 ई. : इस समय बीजापुर का शासक मुहम्मद आदिल शाह था उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के बजाय युद्ध करने का निर्णय लिया। इस शाही सेना ने तीन ओर से बीजापुर पर चढ़ाई की। यद्यपि बीजापुरियों ने बड़ी वीरता से मुकाबला किया और मराठा सैनिकों ने मुगलों को काफी परेशान किया। लेकिन युद्ध से तंग आकर सुल्तान आदिलशाह ने मुगलों से सन्धि वार्ता कर ली। इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें थी।

1. बीजापुर के सुल्तान ने मुगल सम्राट की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।
2. उसने मुगलों को 20 लाख रू. वार्षिक धन राशि देना स्वीकार किया।
3. मुगल सम्राट ने मुहम्मद अदिलशाह को न केवल बीजापुर का शासक मान लिया अपितु उसे अहमद नगर राज्य के पचास परगने भी प्रदान किए जिन से 80 लाख वार्षिक आय होती थी।
4. उसने शाहजी भोंसले को किसी भी प्रकार की सहायता न देने का वचन दिया। यह सन्धि लगभग 20 वर्षों तक कार्यरत रही।

बीजापुर की विजय की ओर मुगलों ने अपना ध्यान फिर1656 ई. में दिया जब औरंगजेब दक्षिण का दोबारा गवर्नर नियुक्त किया गया। बीजापुर के मामले में उसे दखल देने का अवसर भी शीर्घ ही मिल गया था जब 4 नवम्बर 1656 को बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका 18 वर्षीय पुत्र अली आदिलशाह द्वित्तीय गद्दी पर बैठा और देश में आपसी कलह और झगड़े आरम्भ हो गये। औरंगजेब ने इस अराजकता का पुरा लाभ उठाया। उसने अपने पिता से यह कहकर कि अली आदिलशाह पुराने सुल्तान का वास्तविक पुत्र नहीं है बीजापुर पर आक्रमण की स्वीकृति ले ली और आक्रमण कर दिया और बीदरन और कल्याणी के प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया औरंगजेब समस्त गोलकुण्डा राज्य पर अधिकार करना चाहता था लेकिन शाहजहाँ के आदेश पर औरंगजेब को गोलकुण्डा से सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि

के अनुसार सुल्तान ने मुगल सम्राट की अधीनता को स्वीकार कर लिया। उसने पन्द्रह लाख की धन राशि और अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार मुहम्मद से कर दिया।

औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब ने अपने पूर्वजों की भांति दक्षिण के राज्यों को विजय करके अपने साम्राज्य में मिलाने की नीति को अपनाया। जहा अकबर और जहांगीर की दक्षिण सम्बन्धी नीति राजनैतिक कारणों से प्रेरित थी वहीं औरंगजेब की नीति शाहजहाँ की भांति राजनैतिक के साथ–साथ धार्मिक कारणों से भी प्रभावित थी।

नीति के उद्देश्य

औरंगजेब अपनी दक्षिण सम्बन्धी नीति को निर्धारित करने में कई कारणों से प्रेरित हुआ –

1. औरंगजेब बड़ा महत्त्वकांक्षी और साम्राज्यवादी सम्राट था वह सारे भारत पर अपना अधिकार करना चाहता था।
2. औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। इसलिए वह दक्षिण की शिया रियासतों के स्वतंत्र अस्तित्व को सहन नहीं करता था।
3. दक्षिण की इन रियासतों ने मराठों को चौथ आदि कई प्रकार के कर देने प्रारम्भ कर दिये थे। इसलिए भी ये राज्य उसकी आँख में खटकने लगे।
4. बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों ने पहले ;1656–57द्ध में मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के बाद अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था जब औरंगजेब को उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध में भाग लेने जाना पड़ा था। साथ ही इन दोनों राज्यों में वार्षिक कर भी देना बन्द कर दिया था। इसलिए भी औरंगजेब इन दोनों से क्रुद्ध था।
5. ये राज्य बड़े समृद्धिशाली और धनी थे, औरंगजेब इन राज्यों से धन प्राप्त करके मुगल साम्राज्य के आर्थिक साधनों को बढ़ाना चाहता था।
6. औरंगजेब का विद्रोही पुत्र, राजकुमार अकबर जोधपुर से दक्षिण की ओर भाग गया था और उसने मराठा शासक शम्भजी के यहाँ शरण ले ली थी। औरंगजेब को भय था कि कहीं वह साम्राज्य के शत्रु के साथ मिलकर कोई संकट उत्पन्न न कर दे। अतः वह दक्षिण में अभियान भेज कर इस सम्भावना को दूर करना चाहता था। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए औरंगजेब ने पच्चीस वर्ष से अधिक समय तक दक्षिण में युद्ध किए।

जयसिंह का बाजीपुर पर आक्रमण

1665 ई. में जय सिंह के नेतृत्व में एक विशाल सेना मराठों के विरूद्ध भेजी गई उसे यह भी आदेश दिया गया कि वह बीजापुर को भी जीतने का प्रयास करे। शिवाजी से पुरन्धर की सन्धि करने के पश्चात जयसिंह ने 1665 में बीजापुर पर आक्रमण किया। इस समय बीजापुर का सुल्तान आदिलशाह द्वितीय था जो एक बड़ा योग्य शासक तथा वीर सेना पति था। उसने अपनी कूट नीति से गोलकुण्डा के शासक से सैनिक सहायता प्राप्त की तथा मुगलों का खूब डटकर मुकाबला किया। कुछ समय आपस में लड़ाई होती रही। परन्तु रसद की कमी के कारण शाही सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। इस प्रकार बीजापुर को विजय करने का औरंगजेब का प्रयत्न असफल रहा।

दिलेर खाँ का आक्रमण 1679–80 ई.

बीजापुर में असफल रहने के कारण जयसिंह के स्थान पर बीजापुर को विजय करने का कार्य अपने एक अन्य सेनापति दिलेर खाँ को सौंपा। दिलेर खाँ ने बीजापुर का बहुत सा प्रदेश नष्ट भ्रष्ट कर दिया। परन्तु वह इतने बड़े विनाश के पश्चात भी बीजापुर को जीतने में असफल रहा। उसकी अपनी सेना में विद्रोह उठ खड़ा हुआ। दिलेर खाँ की और सैनिक विद्रोह के कारण ओरंगजेब ने फरवरी 1680 में उसे वापस बुला लिया।

बीजापुर पर अधिकार 1686

1680 से 1683 तक बीजापुर राज्य ने सुख की सांस ली क्योंकि इन दिनो औरंगजेब राजपूतों के साथ युद्ध में व्यस्त था।

राजपूतों से निपटने के बाद औरंगजेब स्वयं 1683 ई0 में अहमदनगर पहुँचा ताकि वह बीजापुर की विजय के कार्य का स्वयं निरिक्षण कर सके। पहले राजकुमार आजम और राजकुमार मुअज्जम ने 1683 में बीजापुर पर आक्रमण किया परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में कोई विशेष सफलता नहीं मिली इसलिये औरंगजेब ने सेना की कमान स्वयं सम्भाली और 1 अप्रैल 1685 ई. को बीजापुर को घेर लिया। इस समय बीजापुर का योग्य शासक आदिलशाह मर चुका था। और उसका 17 वर्षीय पुत्र सिकन्दरशाह बीजापुर की बागडौर सम्भाले था। वह अपने पिता की भाँति योग्य तो नहीं था फिर भी वह गोलकुण्डा के शासक कुतुब शाह और मराठा शासक शम्भाजी से सहायता लेने में सफल हुआं बीजापुर का घेरा काफी समय तक चलता रहा जिसे देखकर शाही सेनाएं हतोतसाहित हो गई। क्योंकि अनाज की कमी के कारण उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़ रहे थे। कई सैनिकों ने राजकुमार आजम को वापस चलने का परामर्श दिया परन्तु इस बार राजकुमार ने बीजापुर विजय करने की ठाान ली थी और दूसरे उसे औरंगजेब से और सहायता भी आ पहुँची इसलिए मुगलों ने बीजापुर का घेरा जारी रखा। औरंगजेब ने स्वयं बीजापुर आकर व्यक्तिगत रूप से युद्ध का निरीक्षण किया। इस प्रकार एक वर्ष तक बीजापुर का घेरा चलता रहा। परन्तु अनाज और गोला बारूद खत्म हो जाने के कारण बीजापुरियों ने और लड़ना व्यर्थ समझा और हथियार डाल दिए। बीजापुर को 1686 में मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। सिकन्दर शाह को पहले शाही दरबार के अमीरों में शामिल किया गया और उसकी एक लाख रू. वार्षिक पेन्शन नियुक्त की गई, परन्तु बाद में उसे दौलताबाद के किले में नजरबन्द कर दिया गया जहां 1700 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

गोलकुण्डा की विजय

बीजापुर को विजय करने के पश्चात औरंगजेब ने गोलकुण्डा को मुगल साम्राजय में सम्मिलित करने का निश्चय किया। इस समय गोलकुण्डा का सुल्तान अब्दुल हसन था। वह बड़ा ही आलसी और विलासी था। अबुल हसन ने अपना सारा राज्य प्रबन्ध था। दो भाईयों मदना और अकनना के हाथों सौंप रखा था जिसे औरंगजेब जैसा कट्टर सम्राट कभी सहन नहीं कर सकता था। इस सबके अतिरिक्त औरंगजेब गोलकुण्डा को विजय करके इस रज्य की अपार धन दौलत प्राप्त करना चाहता था।

राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में गोलकुण्डा का पहला आक्रमण

जुलाई 1685 ई. में हैदराबाद पर अधिकार करने के उद्देश्य से शाही सेनाएं राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में गोलकुण्डा पर चढ़ आई। गोलकुण्डा की सेनाओं ने बड़ी वीरता से शत्रु का सामना किया और उसे मालरवेद से आगे न बढ़ने दिया गया और वहां कोई चार महीने पश्चात अक्तूबर 1685 ई. में गोलकुण्डा का सेनापति मीर मुहम्मद इब्राहिम शत्रु सेना से जा मिला और परिणाम स्वरूप हैदराबाद पर मुगलों का अधिकार हो गया। और विवश होकर गोलकुण्डा के शासक को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसने हर्जाने के रूप में एक करोड़ बीस लाख रूपय मुगलों को देना पड़ा। मालखेद और सेरम आदि के प्रदेश जिन पर मुगल अधिकार कर चुके थे। उन्हें सौंपने पड़े। और अपने दो हिन्दू मन्त्रियों मदन्ना और अकन्ना को पद से हटाने का वचन दिया। गोलकुण्डा के सुल्तान ने ये सब बातें मान ली इसलिए मुगल उसके प्रदेश को खाली कर गये।

गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार

औरंगजेब ने राजकुमार मुअज्जम द्वारा गोलकुण्डा के सुलतान से किए गए समझौतों की स्वीकृति न दी कयोंकि वह गोलकुण्डा के शिया राज्य के स्वतन्त्र अस्तित्व को सहन नहीं कर सकता था। और उसे मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। बीजापुर पर अधिकार कर लेने के पश्चात उसने अपना ध्यान गोलकुण्डा की ओर दिया। 7 फरवरी 1687 को गोलकुण्डा के किले को घेर लिया गया। लगातार बारिश तथा खाद्य सामग्री की कमी होने के कारण मुगलों को कोई सफलता नहीं मिली। गोलकुण्डा के दुर्ग को जब आक्रमणों और बारूद से उड़ाने के सब प्रयत्न असफल रहे तब औरंगजेब ने धोखे और घूस से काम लिया और अबुल हसन से एक पठान नौकर अब्दुल्ला पानी को एक भारी रिश्वत देकर अपनी तरफ किया जिसने 2 अक्तूबर 1687 को किले का पूर्वी द्वार मुगलों के लिए खोल दिया। मुगल सैनिकों ने तुरनत ही दुर्ग में प्रवेश कर लिया और शत्रुओं पर टूट पड़े। गोलकुण्डा के एक सरदार अर्ब्दुरजाक दुर्ग के द्वार की और जाकर असाधारण साहस और वीरता से स्वामिभक्ति को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और पुकार उठा, "यदि अबुल हसन के पास इस प्रकार का एक और सरदार होता तो गोलकुण्डा के दुर्ग पर हमारा अधिकार कभी नहीं हो सकता था।" मुगलों ने किले पर अधिकार कर लिया। अबुल हसन को

करके दौलताबाद के दुर्ग में भेज दिया गया। उसके निर्वाह के लिए 50000 रू. वार्षिक पेंशन नियत की गई गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में सम्मलित कर लिया गया।

मराठों से युद्ध 1680–1707

औरंगजेब ने अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में शिवाजी के विरूद्ध कई अभियान भेजे लेकिन वह उसकी शक्ति को कुचल नहीं सका था। बीजापुर तथा मुगलों के विरोध के चलते महाराष्ट्र में स्वतन्त्र मराठा राज्य स्थापित करने में सफल हो गया था। 1680 ई. में शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शम्भजी गद्दी पर बैठा। वह शिवाजी की तरह चतुर व कूटनीतिज्ञ नहीं था। इसलिए उसने मुगलों की कठिनाई का कोई लाभ नहीं उठाया। मुगल सम्राट ने 1681–1684 ई. के बीच उसके विरूद्ध सैनिक कार्रवाई करने के प्रयत्न किये जो असफल रहे बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर विजय करने के पश्चात औरंगजेब ने अपना पूरा ध्यान एवं ताकत मराठों के विरूद्ध कार्रवाई में लगा दिया।

शम्भाजी ने अपनी रक्षा के लिए सगमैश्वर में शरण ली। मुगल सेना ने मुर्करब खाँ के नेतृत्व में सगमेश्वर पर अचानक आक्रमण कर दिया। शम्भाजी तथा उसके मित्र कार्य कलश को बन्दी बनाकर बहादुर गढ़ में औरंगजब के शिविर में भेज दिया गया। वहाँ 21 मार्च 1689 ई. को उन्हें यातनाएँ देकर मार दिया गया। कुछ समय के पश्चात् मुगलों ने मराठा राज्य की राजधानी रायगढ़ पर आक्रमण कर दिया। 21 अक्तूबर 1689 को मुगलों ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया और शम्भाजी तथा उसके सात वर्षीय पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया। शम्भाजी का छोटा भाई राजा राम दुर्ग से निकल कर जिन्जी की ओर भाग गया। इस प्रकार एक बार ऐसा लगा कि औरंगजेब का दक्षिण विजय का कार्य पूर्ण हो गया।

परन्तु वास्तव में मराठा शक्ति अभी समाप्त नहीं हुई थी। मराठों ने राजाराम के नेतृत्व में मुगलों के विरूद्ध संघर्ष जारी रखा। राजाराम ने जिन्जी में अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर लिया। उसके आदेश पर मराठों ने मुगलों के प्रदेशों तथा शिविर पर उचित अवसर पाकर बार–बार आक्रमण किया तथा उन्हें परेशान किया। औरंगजेब ने 1691 मे जुल्फीकार खाँ के नेतृत्व में जिन्जी को विजय करने के लिए अभियान भेजा। मराठों ने मुगलों का कड़ा विरोध किया। सात वर्षों के घोर प्रयत्नों के पश्चात 1698 ई. में मुगल इस दुर्ग को विजय करने में सफल हुए। परन्तु राजाराम बेल्लोर की और भाग गया। 1700 ई. में अपनी मृत्यु तक राजाराम मुगलों का विरोध करता रहा।

राजाराम के पश्चात 1700 ई0 से लेकर 1707 तक उसकी विधवा रानी ताराबाई ने बड़ी बहादुरी से मराठों का नेतृत्व किया और मुगलों के विरूद्ध संघर्ष जारी रखा। यद्यपि मुगलों ने सतारा, पाली पन्धाला, खेलका, सिंहगढ़, रायगढ़, तेरना आदि मराठों के दुर्ग विजय कर लिया। तथापित वे मराठों की शक्ति का दमन करने में असफल रहे मराठों ने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली द्वारा मुगलों को बहुत परेशान किया। विभिन्न प्रदेशों में मराठा सैनिक मुगलों पर अचानक टूट पड़ते तथा उन्हें परेशान करते। ऐसी अवस्था में औरंगजेब की कठिनाईयाँ बहुत बढ़ गई क्योंकि उसे निश्चित मुखिया तथा केन्द्रिय सेना से युद्ध नहीं करना था अपितु राष्ट्रीय विरोध का सामना करना था। डा. जे. एन. चौधरी के अनुसार "इस प्रकार सम्राट के मराठों को कुचलने के दीर्घ काल से चले आ रहे लगातार प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए तथा मराठा राष्ट्रवाद का एक विजयी शक्ति के रूप में उत्थान हुआ।"

दक्षिण के लगातार युद्धों से वृद्ध सम्राट का स्वास्थ्य बिगड़ गया। वह आराम करने के लिए अहमदनगर चला गया। वहां कुछ समय पश्चात 3 मार्च 1707 ई. को उसकी मृत्यु हो गई। उसे दौलताबाद के निकट खुल्दाबाद में दफनाया गया। इस विषय में डा. बी.ए. स्मिथ ने ठीक ही कहा है "दक्षिण औरंगजेब के मान और शरीर दोनों के लिए कब्र सिद्ध हुआ।"

दक्षिण नीति के परिणाम

विभिन्न इतिहासकारों ने औरंगजेब की दक्षिण नीति की कड़ी आलोचना की है। सम्राट ने अपने शासन काल के अन्तिम 25 वर्ष इस युद्ध में लगा दिए। परन्तु इन युद्धों से साम्राज्य को कोई लाभ नहीं हुआ। इसके विपरीत इन युों से साम्राज्य के लिए अनेक हानिकारक परिणाम निकले। प्रो. जादूनाथ सरकार के अनुसार, "ऐसा प्रतीत होता था कि औरंगजेब ने सब कुछ प्राप्त कर लिया था परन्तु वास्तव में वह सब कुछ खो बैठा था। इससे उसके अन्त का आरम्भ हुआ। उसके जीवन का सबसे दुखान्त

एवं निराशाजनक काल प्रारम्भ हुआ।" इन युद्धों के निम्नलिखित परिणाम निकले :–

1. **बीजापुर और गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिलाना एक बड़ी भारी राजनीतिक भूल** : बीजापुर और गोलकुण्डा दोनों राज्य मराठों और मुगल साम्राज्य के मध्य एक दीवार का काम दे रहे थे। परन्तु जब औरंगजेब ने उनके अस्तित्व को मिटा दिया तब मुगलों की मराठों से सीधी टक्कर हो गई। मराठों के बार–बार आक्रमण तथा लूटमार से बचने के उद्देश्य से औरंगजेब को अपने जीवन का शेष भाग दक्षिण में ही व्यतीत करना पड़ा।

2. **साम्राज्य की प्रबन्ध व्यवस्था का अस्त–व्यस्त होना** : औरंगजेब 25 वर्ष तक दक्षिण में रहा उसका परिणाम यह निकला की साम्राज्य की सारी प्रबन्ध व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई। प्रान्तीय गर्वनरों और फौजदारों को अब किसी का डर नहीं रहा क्योंकि उनके कार्यों का निरीक्षण करने वाला अब कोई नहीं था। ये सभी अधिकारी विलासप्रिय हो गये और साम्राज्य में अराजकता फैल गई। इस प्रकार केन्द्र के निर्बल होने से चारों और विद्रोह का बोलबाला हो गया। और उत्तर में राजपूतों, सिखों और जाटों ने बहुत जोर पकड़ लिया और वे बाद में मुगल साम्राज्य को छिन्न–भिन्न करने का एक बड़ा कारण बने।

3. **आर्थिक दशा का बिगड़ जाना** : दक्षिण अभियानों में धन पानी की तरह बहाया गया। इसलिये राज कोष बिल्कुल खाली हो गया। देश में अशान्ति तथा अव्यवस्था के कारण विभिन्न प्रान्तों से भी कोई आय नहीं आ रही थी। आर्थिक स्थिति इतनी सोचनीय हो चुकी थी। बहुत से सैनिक और अधिकारियों को काफी समय से वेतन नहीं मिला था। राज्य का यह आर्थिक संकट मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण बना।

4. **मुगल साम्राज्य का अत्याधिक विस्तार हो जाना** : औरंगजेब के उत्तराधिकारों में अपने पूर्वजों से पहले ही एक काफी विशाल साम्राज्य मिला था जो उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी और पूर्व में चिरगांव से लेकर पश्चिम में काबुल तक फैला हुआ था। उन दिनों आने जाने के साधन बहुत कठिन थे। इसलि इतने बड़े साम्राज्य को सम्भालना एक कठिन कार्य था परन्तु औरंगजेब ने पहले से ही विशाल साम्राज्य को और अधिक विशाल बनाकर एक भारी भूल की क्योंकि एक व्यक्ति इतने बड़े साम्राज्य को सम्भाल नहीं सकता था।

5. **मुगल सेना में शिथिलता आ जाना** : दक्षिण के लगातार युद्धों से मुगल सैनिक ऊब गये। उनका उत्साह मन्द हो गया। और वे अपने घरों को वापस जाने को आतुर हो उठे। इसके अतिरिक्त बहुत से मुगल सैनिक युद्धों में काम आये और उनसे भी अधिक भूख का शिकार बने। न खत्म होन वाले युद्धों ने मुगल सेना को काफी शिथिल बना दिया।

6. **कृषि और व्यापार को हानि** : दक्षिण के लगातार युद्धों से देश की कृषि तथा व्यापार पर भी विनाशकारी असर पड़ा। 1,77,000 की विशाल मुगल सेना के अभियानों तथा मराठों की लूटमार के परिणामस्वरूप दक्षिण के बहुत से प्रदेश विरान हो गये और वहाँ के खेतों में हरी भरी फसलों का नामोनिशान तक नहीं रहा। मुगलों तथा मराठों ने किसानों का शोषण किया और उन बेचारों को भूख व अकाल का सामना करना पड़ा। यूरोपियन यागी मनूची (Manuc) लिखते हैं "औरंगजेब के दक्षिण को छोड़ने के समय इन प्रान्तों के खेतों में वृक्षों तथा फसलों का नामोनिशान तक भी नहीं थे। इनके स्थान पर वे मनुष्यों तथा पशुओं को हड्डी से भरे पड़े थे।" देश में फैली अशान्ति के कारण व्यापार भी सर्वथा नष्ट भ्रष्ट हो गया। कोई भी व्यापारी ऐसी अवस्था में व्यापारिक वस्तुओं के साथ यात्रा करने का साहस नहीं कर सकता था।

7. **नई शक्तियों का उत्थान** : औरंगजेब ने लगातार दक्षिण में रहने का एक परिणाम यह भी निकला की राजपूतों, जाटों, सिक्खों को मुगलों के विरूद्ध खड़ा होने का अवसर मिल गया। जिन्होंने मुगल साम्राज्य को हानि पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके अतिरिक्त औरंगजेब के कड़े विरोध और धर्मान्धता की नीति के कारण मराठों के संगठित होने तथा शक्ति पकड़ने में काफी सहायता मिल गई।

8. **मुगल साम्राज्य के पतन का एक कारण बनना** : औरंगजेब की यह दक्षिण विषयक नीति उसके लिए ही नहीं वरन्

मुगल साम्राज्य के लिए भी घातक सिद्ध हुई। इसके कारण मुगल साम्राज्य की जड़ें हिल गई। वह अब लड़खड़ान लगा और अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिनने लगा।

मुगलों के ईरान से सम्बन्ध

1. **बाबर और ईरान** : जब बाबर को उजबेगों ने फरगना और समरकन्द से खदेड़ दिया तो ईरान के शाह ने बाबर को सहायता प्रदान की थी। इससे मुगलों और सफावी शासकों क बीच दीर्घकाल तक चलने वाली मित्रता की नींव पड़ी। बाबर ने काबुल का शासक बनने के बाद जब कन्धार को अपने अधिकार में ले लिया तो भी ईरान के शाह ने कोई आपत्ति नहीं की।

2. **हुमायूँ और ईरान** : शेरशाह सूरी ने जब हुमायूँ को अपदस्त कर दिया था तो ईरान के शाह तहमास्य के यहाँ शरण ली और कई वर्षों तक वह ईरान में रहा कुछ इतिहासकारों की राय है कि हुमायूँ ने ईरान की मदद के बदले शिया सम्प्रदाय का अनुयायी बनना स्वीकार कर लिया था। ईरान ने हुमायँ को सभी प्रकार की सहायता देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह अपने भाई कामरान से कन्धार छीनकर भी सौंप दोगा। हुमायूँ ने अपना वादा पूरा नही किया। लेकिन उसने शिया बैरमखाँ को वहां का सूबेदार नियुक्त करके सफाविदों के असन्तोष को कम करने की चेष्ठा की जब तक हुमायूँ जीवित रहा, मुगलों और ईरानियों के सम्बन्ध मैत्रिपूर्ण बने रहे।। 1558 ई. मे ईरान ने बलपूर्वक कन्धार पर अधिकार कर लिया और 1595 ई. तक कन्धार ईरानी शासक के प्रतिनिधियों के अधीन रहा।

3. **अकबर और ईरान** : ईरान द्वारा कन्धार पर अधिकार करने के बाद भी मुगल सम्राट अकबर ने ईरान से सम्बन्ध बिगाड़ने का प्रयास नहीं किया। 1577 ई. अजबेग सरदार अब्दुला खाँ ने अकबर के पास अपना राजदूत भेजकर ईरान को परस्पर बांटने का सुझाव रखा। उजबेग सरदार चाहता था कि मुगल और उजबेग दोनो सुन्नी शक्तियाँ मिलकर शिया ईरान को पूर्णतया बरबाद कर दें। लेकिन उदार और सहनशील अकबर उजबेगों की इस नीति से प्रभावित नहीं हुआ। अकबर उजबेगों पर अंकुश लगा रखने के लिए और मुगल साम्राज्य की रक्षा के लिए शक्तिशाली ईरान के महत्त्व को भली भांति जानता था। 1595 ई. में कन्धार का ईरानी सूबेदार मुजफ्फर हुसैन मिर्जा मे ईरान का सम्राट शाह अब्बास नाराज हो गया। उसने उजबेगों से कन्धार पर हुए आक्रमण को देखकर अपने स्वार्थ की दृष्टि से कन्धार का दुर्ग अकबर को सौंप दिया और स्वयं को मुगलों की सेवा में आ गया। इस तरह बिना संघर्ष हुए कन्धार अकबर के अधीन हो गया। अकबर ने मिर्जा मुजफ्फर को 5000 का मनसब प्रदान किया।

4. **जहांगीर और ईरान** : ईरान के शाह अब्बास प्रथम (1588 से 1622 ई.) ने मुगल सम्राट जहांगीर के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने की महत्ता को स्वीकार करके कन्धार पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। मुगलों और सफाविदों में राजपूतों और कीमती उपहारों का आदान–प्रदान निरन्तर बना रहा। उदाहरण के लिया 1611 में ईरान के शाह अली नामक व्यक्ति को राजदूत बनाकर भेजा। वह राजदूत कीमती उपहारों के साथ एक पत्र भी लाया जिसमें शाह ने जहांगीर के पिता अकबर की मृत्यु पर हार्दिक संवेदना अभिव्यक्त की थी। और उसे सम्राट बनने पर बधाई दी थी। शाह अब्बास ने भारत के दक्षिणी राज्यों के साथ व्यापारिक ओर राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये। जहांगीर के काल में ईरान और भारत सांस्कृतिक दृष्टि ये एक दूसरे के बहुत नजदीक आये। सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में नूरजहां और उसके पिता ने जो ईरान से आया था महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1620 मे कन्धार पर अपनी ललचाई दृष्टि डालते हुए शाह ने जहांगीर से अनुरोध किया कि वह कन्धार ईरान को वापस सौंप दे। इन्कार करने पर ईरान के शाह ने अपनी महत्त्वकांक्षा को शान्त करने के लिए मित्रता को बली चढ़ा दिया और 1621 में कन्धार पर आक्रमण कर दिया। जहांगीर ईरानियों से मित्रता के विश्वास से मारा गया और कन्धार पर ईरान का कब्जा हो गया।

5. **शाहजहाँ और ईरान** : शाहजहाँ के काल में भी शाह अब्बास ने अपने राजदूत द्वारा जहांगीर की मृत्यु पर शोकपत्र और सिंहासन पर बैठने के उपलक्ष्य में बधाई पत्र भेजे। यह राजदूत अभी वापस पहुँचा ही नहीं था कि शाह अब्बास की 1629 ई. में मृत्यु हो गई। और शाहसफी उसका उत्तराधिकारी बना। शाहजहाँ ने भी बधाई पत्र भेज । 1636–37

ई. में कन्धार के ईरानी सूबेदार अली मर्दान खाँ और शहसफी में अनुबन्ध हो गया। अली मर्दान ने अपनी रक्षा की दृष्टि से मुल्तान और काबुल के मूल सूबेदारों को अपनी मदद के लिए और शाहजहाँ को आकर कन्धार पर अधिकार कर लेने को कहा। शाहजहाँ इसी अवसर की प्रतीक्षा में था। उसने तुरन्त कन्धार पर 1638 में अधिकार कर लिया। 1642 में ईरान के शाह सफी का देहान्त हो गया और उसका उत्तराधिकार 11 वर्ष का शिशु शाह अब्बास द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। ईरान के अमीरों की आपसी शत्रुता के कारण ईरान कन्धार की ओर 1647 ई. तक ध्यान नहीं दे सका। 1647 ई. में जब शाहजहाँ का बल्ख अभियान असफल हो गया जिसमें मुगलों को दो करोड़ रूपया और पांच हजार सैनिक खोन पड़े तो ईरान के शाह अब्बास द्वितीय को प्रोत्साहन मिला और उसने कन्धार पर आक्रमण कर दिया। 1649 में फिर ईरानियों का अधिकार हो गया। शाहजहाँ ने कन्धार को प्राप्त करने के लिए 1649, 1652, 1653 में तीन सैनिक अभियान भेजे। परन्तु विफल रहा।

6. **औरंगजेब और ईरान** : औरंगजेब ने ईरान के मामले में अपनी शिया विरोधी धर्मिक संकीर्ण नीति को बाधक नहीं बनने दिया और उसने प्रयास किए कि ईरान से मुगलों के राजनैतिक सम्बन्ध पुनः स्थापित किए जाएं। लेकिन शाह अब्बास शाहजहाँ के तीन सैनिक अभियानों को विफल बनाने के पश्चात दम्भी हो गया था। ईरान के शाह ने औरंगजेब द्वारा भेजे गये राजदूत का 1666 ई. में न केवल अपमान किया बल्कि औरंगजेब के विरूद्ध अपमानजनक और आपत्तिजनक बातें भी लिखी। तथा उसने भारत पर आक्रमण करने की धमकी भी दी। औरंगजेब ने ईरानियों के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए इसके बाद कोई प्रयास नहीं किया।

मुगलों के मध्य एशिया के साथ सम्बन्ध

मुगलों का मध्य एशिया के साथ सम्बन्ध बाबर के काल से ही रहा है। बाबर ने सबसे पहले बदख्शा का प्रदेश जीता था। और 1520 ई. में हुमायूँ को सूबेदार नियुक्त किया था। 1529 ई. में जब पानीपत की लड़ाई में भाग लेने के लिए भारत आया था तो सुलेमान मिर्जा को बाबर ने वहाँ का सूबेदार बनाया। इस तरह बदख्शा के मामले में बाबर ने स्वयं को अधिक शक्तिशाली साबित कर दिया।

हुमायूँ ने काबुल और कन्धार अपने भाई कामरान को दिये थे। इसलिए बदख्शा पर उसका अधिकार नियन्त्रण नहीं रह सका और सुलेमान मिर्जा बदख्शा पर स्वतन्त्र शासक की तरह शासन करता रहा हुमायूँ ने भी बदख्शा को जीतने के असफल प्रयास किए।

अकबर के शासन काल में बदख्शां के मुगलों द्वारा नियुक्त सूबेदार सुलेमान मिर्जा का जब उसके महत्त्वकांक्षी पौत्र मिर्जा शाहरूख ने पदच्यूत कर दिया तो वह राजनीतिक शरण लेने के लिए अकबर के पास आया। कुछ समय बाद वह अपना खोया राज्य प्राप्त करने में सफल रहा लेकिन शीघ्र ही उसे पुनः सिंहासन से उतार दिया गया। अब वह उजबेग सरदार अब्दुला खाँ से सहायता पाने के लिए गया। उजबेगों ने उसकी मदद की आड़ में स्वयं बदख्शाँ हड़प लिया। अकबर स्वयं में बदख्शाँ को प्राप्त करना चाहता था लेकिन इसका उसे उचित अवसर नहीं मिला।

शाहजहाँ की मध्य एशिया विषयक नीति

1638 में शाहजहाँ ने कन्धार पर अधिकार कर लिया। इस सफलता से उसका होंसला बहुत बढ़ गया। और उसने आधुनिक अफगानिस्तान के उत्तर तथा हिन्दु कुश और दजुता नदी के मध्य भाग में स्थित बल्ख और बदख्शाँ प्रान्तों को अपने अधिकार में लेने का निश्चय किया। इन प्रदेशों को अपने अधिकार में लेने का शाहजहाँ का मुख्य उद्देश्य विजय की लालसा थी क्योंकि जैसा की सर जादूनाथ सरकार का कहना है "शाहजहाँ के राज्यकाल भी समृद्धी तथा दरबारियों की चापलूसी ने उसका दिमाग इतना फेर दिया की वह व्यर्थ के स्वप्न देखने लगा।" शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी ने लिखा है कि "शाहजहाँ बल्ख और बदख्शाँ राज्य को इस लिए विजय करना चाहता था क्योंकि वे बाबर को उत्तराधिकार में मिले थे और वे मुगल वंश के प्रवर्तक तैमूर की राजधानी समरकन्ध के रास्ते में पड़ते थे।"

शाहजहाँ को मध्य एशिया के मामलों में दखल देने का अवसर 1646 ई. में प्राप्त हो गया। जब बुखारा के शासक नजर मुहम्मद

खाँ जिसके अधीन बलख और बदख्शा प्रान्त थे, और उसके पुत्र अब्दुल अजीज ने गृह यु(आरम्भ हो गया। ऐसी अवस्था मे नजर मुहम्मद को बलख में शरण लेनी पड़ी और अपने पुत्र के विरूद्ध शाहजहाँ से सहायता मांगी। शाहजहाँ ने शीघ्र ही एक विशाल सेना राजकुमार मुराद और अली मर्दान खां के नेतृत्व में भेज दी। इस सेना में 50,000 घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिक थे। शाहजहाँ का यह विचार था कि पहले तो नजर मुहम्मद की सहायता की जाये और उसे बुखारा तथा समरकन्द छीनकर दिया जाये और बाद में सभी प्रदेश उससे स्वयं छीन लिये जायें। नजर मुहम्मद भी इस आशय को भली भांति समझता था इसलिए जब उसे इस बात की सूचना मिली की मुगल सेनाएं इस ओर आ रही हैं तो उसने जल्दी ही अपने पुत्र से सुलह कर ली और स्वंय बलख तथा बदख्शाँ के प्रदेश ले लिये। बसरा तथा समरकन्द प्रदेश अपने पुत्र अब्दुल अजीज को दे दिये। फिर उसने मुगल सेनाओं को बलख की ओर बढ़ने से रोकने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल रहा। इस प्रकार 2 जुलाई 1646 को बलख और बदख्शाँ पर मुगलों का अधिकार हो गया।

कुछ समय बलख में रहने के पश्चात राजकुमार मुराद वहां की कठोर जलवायु से तंग आ गया और उसने अपने पिता से भारत लौट आने की अनुमति मांगी शाहजहाँ के मना करने पर भी वह बिना अनुमति लिए भारत लौट आया। शाहजहाँ ने मुराद की इस उदण्डता का बुरा माना और उसे उच्च पद और मनसब से वंचित कर दिया। उसके स्थान पर शाहजहाँ को जल्दी ही सादूल्ला खाँ के बलख भेजना पड़ा जो वहां थोड़ा बहुत प्रबन्ध करके वापस लौट आया।

अभी तक बलख और बदख्शा में मुगलों की स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। शाहजहाँ इन विदों को व्यर्थ नहीं खोना चाहता था। वह तो बुखारा और समरकन्द लेने के पक्ष में भी था। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उसने अगस्त वर्ष 1647 ई. में एक अन्य सेना राजकुमार औरंगजेब और राजकुमार शुजा के अधीन बलख भेजी और स्वयं सारा प्रबन्ध व्यवस्थित करने के लिए काबुल पहुँचा। बलख जाते समय मार्ग में बहुत से बकीलों और उजबेगों ने शाही सेना का कड़ा विरोध किया। वह इन सबकों पराजित करती हुई बलख पहुँचने में सफल हुई। बलख को एक राजपूत सेना नायक साधुसिंह हांडा के अधीन करके औरंगजेब उजबेगों को पराजित करने के उद्देश्य से आगे बढ़ा परन्तु उसे बहुत हानि उठानी पड़ी। क्योंकि एक तो वह पहले कभी भी इस प्रदेश से परिचित नहीं था और दूसरे उजबेग कभी भी सामने आकर नहीं लड़ते थे। वे छुप कर वार करते थे। उनका पीछा करते हुए वह बहुत दूर निकल गया। तब उसे इस बात की सूचना मिली की बुखारा का शासक अब्दुल अजीज बुखारा को वापस लेने के लिए उस पर आक्रमण करने वाला है। इसलिए जल्दी ही औरंगजेब को बलख वापस आना पड़ा। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ जिसमें जीत मुगलों की हुई परन्तु इसमें उनकी इतनी हानि हुई कि, उनमें उजबेगों से लड़ने की न ताकत रही और न साधन रहे कि देश से इतनी दूर ज्यादा ठहर सके। आस–पास का सारा भाग उजाड तथा खाने पीने की सारी समाग्री लगभग समाप्त हो चुकी थी। असके साथ न औरंगजेब न हीं उसके सेना नायक ऐसे दूरस्थ और नीरस प्रदेश में ठहरने के इच्छुक थे। उधर शरद ऋतु नजदीक थी इसलिए औरंगजेब किसी प्रकार की सन्धि करके वापस आना चाहता था। शाहजहाँ यह प्रदेश नजर मुहम्मद को ही सौंपना चाहता था। परन्तु अपनी मान मर्यादा बचाने के लिए वह उससे यह शर्त मनवाना चाहता था कि उसे अपना अधिराज मान ले। 23 सितम्बर 1541 को नजर मुहम्मद ने अपने दो पोतों को औरंगजेब के पास भेज दिया जिसने जल्दी की बलख और बदख्शाँ के प्रदेश उन्हें सौंप दिये तथा भारत की ओर प्रस्थान किया।

शाहजहाँ की मध्य एशिया नीति के परिणाम

मध्य एशिया को विजय करने की लालसा शाहजहाँ तथा मुगल साम्राज्य के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई :–

1. इसमें मुगलों का लगभग चार करोड़ रूपया खर्च हो गया और बदल में 1 गज भूमि भी नहीं मिली।
2. लगभग 500 सैनिक तो युद्ध में मारे गये इससे दस गुणा 5000 के लगभग या तो खड्डों में गिरकर या बर्फ में दब कर मर गये।
3. इससे मुगलों के प्रभाव को बहुत हानि पहुँची ईरान के शाह को जब मुगलों की कमजोरी का पता चला तो उसने भी कन्धार मुगलों से छीन लेने का निश्चय किया और बाद में उसे सफलता भी मिली।

मराठों का उदय

महाराष्ट्र में रहने वाले और मराठी बोलने वालों को मराठा कहा जाता है। महाराष्ट्र प्रदेश एक त्रिभुजाकार पठार तथा चारो

ओर पहाड़ी से घिरा हुआ है। यह प्रदेश पहाड़ों वनों तथा अनेक स्थानों पर उबड़–खाबड़ होने के क़ारण दुर्गम है। मराठों का उदय और उत्थान मुगल काल की एक महत्वपूर्ण घटना है। 17वीं शताब्दी में शिवाजी ने मराठा लोगों को संगठित किया और बीजापुर तथा मुगल साम्राज्य के विरूद्ध चिरकाल तक युद्ध करके एक स्वतन्त्र मराठा राज्य की स्थाना की।

मराठों के उदय के कारण

1. **प्राकृतिक एक भौगोलिक कारण** : महाराष्ट्र की प्राकृतिक परिस्थितियों ने मराठों के चरित्र पर गहरा प्रभाव डाला। महाराष्ट्र के पहाड़ी प्रदेशों में वर्षा की कमी और बंजर भूमि ने मराठों में साहस और आत्म विश्वास के गुण उत्पन्न किए और वे आलस्य तथा विषय सुख के दोषों से बचे रहे। वे पहाड़ी प्रदेश के निवासी होने के कारण बहुत परिश्रमी बन गये। वेअपने प्रदेश में छापामार पद्धति का आसानी से सफलता पूर्वक प्रयोग कर सके। पहाड़ों की श्रृंखलाओं में उन्हें प्राकृतिक तथा मजबूत किले प्रदान किए। प्राकृतिक परिस्थितियों न उन्हें अपने शत्रुओं से युद्ध जीतने में बड़ी सहायता प्रदान की।

2. **भक्ति धारा का प्रभाव** : मुगलों के आने से पूर्व ही महाराष्ट्र में अनेक महान सुधारकों ने जाति भेदभाव की निंदा की तथा मराठों को एकता के सूत्र में बांधा। एकनाथ, तुकाराम, रामदास और वामन पण्डित जैसे मराठा धर्म सुधारकों ने क्रमानुसार कई वर्षों तक ईश्वर भक्ति मानव समानता, कार्य एवं परिश्रम की महत्ता और सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने मराठा जाति में आत्मविश्वास तथा एकता के बीज बोए। शिवाजी के गुरू रामदास एक महान धर्म सुधारक थे। उसने अपनी रचना दास बोध के माध्यम से यह कार्य किया तथा मराठों को बहुत प्रभावित किया।

3. **युद्ध कला और प्रशासन का प्रशिक्षण** : अहमद नगर के सेनापति मलिक अम्बर ने मराठों को बड़ी संख्या में अपनी सेना में भर्ती किया। अहमदनगर में मराठों ने सैनिक और प्रशासनिक पदों पर रह कर प्रशासन और सेना का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया। शिवाजी के पिता शाहजी भौंसले ने अहमद नगर के कुछ इलाकों पर अपना प्रभाव स्थापित किया। उसने कर्नाटक की अशान्ति का लाभ उठाकर अर्ध स्वायत राज्य की स्थापना करने की कोशिश की। निजाम शाही शासन के अन्तिम वर्ष में वह शासक निर्माता बन गया। लेकिन दूसरे दरबारियों की ईर्ष्या के कारण उन्हे बीजापुर में नौकरी करनी पड़ी। इसी तरह अनेकों मराठों ने बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों में भी सेवा करके प्रशासन तथा शासन के विषय में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

4. **साहित्य और भाषा का योगदान** : मराठों को जहां तुकाराम ने भजनों में एकता प्रदान की वहीं एकनाथ ने मात्र भाषा से प्रेम करना सिखाया। मराठों की एक भाषा एक धर्म ने सामान्य जीवन में एकता और सहयोग भरा। जिसमें उन्हें अपनी शक्ति के उत्थान में सहायता मिली। इतिहासकार जादूनाथ सरकार ठीक ही लिखता है "सत्रहवी शताब्दी में महाराष्ट्र में शिवाजी द्वारा राजनीतिक एकता प्रदान किए जाने से पूर्व ही भाषा, धर्म एवं जीवन की एक विलक्षणत एकता स्थापित हो चुकी थी।"

5. **शिवाजी का व्यक्तित्व** : कुछ इतिहासकारों के अनुसार मराठों के उत्थान का कारण शिवाजी जैसा योग्य कूटनीतिज्ञ कुशन सैनिक तथा महान नेता था। शिवाजी के उज्ज्वल चरित्र को महान व्यक्तित्व का निर्माण उसकी माता जीजीबाई के कारण हुआ। उसकी शिक्षाओं और परामर्श के कारण शिवाजी मराठों को संगठित कर सका।

6. **दक्षिण के शिया राज्यों से मुगलों का संघर्ष** : दक्षिण के शिया सुल्तानों और मुगल सम्राटों के मध्य दीर्घकालीन युद्ध से मराठों ने अपनी शक्ति को आसानी से विकसित कर लिया। दक्षिण के शिया सुल्तान तथा मुगल दोनों ही मराठों का समर्थन प्राप्त करना चाहते थे। मराठों ने इन दोनों की फूट का फायदा समय–समय पर अपनी शक्ति मजबूत करने के लिए उठाया।

7. **गुरू रामदास का प्रभाव** : गुरू रामदास ने शिवाजी के हृदय में हिन्दु धर्म के प्रति कूट–कूट कर प्रेम भरा। उन्होंने शिवाजी को निर्देश दिया कि मराठों को इक्कट्ठा करें एवं उनमें एकता की भावना भरें। इतिहासकार सरदेसाई का कहना है कि "रामदास की सहायता के बिना शिवाजी की सफलता होनी सम्भव न थी सत्य प्रतीत होता है।"

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन

शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल 1627 को पूना के उत्तर में शिवर्नर के किले में हुआ। उसकी माता जीजीबाई एक सुशिक्षित, दयालु तथा धार्मिक विचारों वाली महिला थी। उसके पिता शाहजी ने अहमदनगर राज्य की सेना में रहते हुए मुगलों को चुनौती दी। शिवाजी के जीवन में तीन व्यक्तियों ने गहरा प्रभाव डाला। इनमें शिवाजी की माँ जीजाबाई शिवाजी के संरक्षक दादाजी कोंडदेव तथा शिवाजी के गुरू रामदास थे। शिवाजी ने दादा कोंडदेव से सैनिक संगठन तथा राज्य प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त की थी। कोंडदेव ने शिवाजी को घुड़सवारी, तलवारबाजी, तीर–अंदाजी आदि सिखाई। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध धार्मिक नेता रामदास ने शिवाजी को राष्ट्र निर्माण के लिए प्रेरित किया।

शिवाजी की विजय

तोराना, पूना, पुरन्धर तथा कोंडाना की विजय 1646–49

शिवाजी 1646 ई. में जब वह केवल 19 वर्ष के थे, विजय कार्य प्ररम्भ कर दिया। सबसे पहले उसने तोराना के किले पर विजय प्राप्त की। इस किले से आठ किलोमीटर दूर उसने राजगठ नामक दुर्ग का निर्माण करवाया। इसी समय दादा कोंडदेव की मृत्यु हो जाने के पश्चात उसने पूना को अपने अधिकार में लिया और एक बड़ी सेना का निर्माण किया। 1648 में उसने पुरन्धर और कोंडाना जीत लिया।

जावली तथा रायगढ़ की विजय

1656 ई. में शिवाजी ने जावली पर विजय प्राप्त की। यह विजय शिवाजी के लिए महत्त्वपूर्ण विजय थी। अब उनके लिए अपने राज्य को दक्षिण पश्चिम में फैलाना आसान हो गया। दूसरे यहाँ से प्राप्त सैनिक उसके सच्चे साथी व देश भक्त निकले तीसरे शिवाजी को मोर वंश द्वारा एकत्र धन एवं खजाना प्राप्त हुआ। जिससे शिवाजी ने अपनी वित्तीय तथा सैनिक समस्याओ को हल कर लिया। इसके बाद उन्होंने रायगढ़ के दुर्ग को विजय किया जो बाद में उसकी राजधानी बनी। इसी वर्ष उसने अपने मामा को हराकर सुपा के प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

बीजापुर से संघर्ष

शिवाजी की गतिविधियों से दुखी होकर बीजापुर के शासक आदिल शाह ने शिवाजी के पिता शाहजी भौंसले को कैद कर लिया। सबसे पहले शिवाजी ने अपने पिता को कैद से मुक्त करवाया और बीजापुर के शासक को वचन दिया कि वह बीजापुर के प्रदेश पर आक्रमण नहीं करेगा।

बीजापुर के साथ पुनः संघर्ष व अफजल खाँ का वध

बीजापुर के शासक ने कुछ समय बाद मराठों को अपने क्षेत्र से निकालनें के लिए और शिवाजी को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए अफजल खाँ के अधीन एक विशाल सेना भेजी। परन्तु अफजल खाँ जो स्वयं शिवाजी को छल से मारना चाहता था स्वयं उसे बाधनरण से मारा गया। सफीखाँ तथा डफ जैसे इतिहासकार शिवाजी पर अफजल खाँ की छल पूर्वक हत्या का आरोप लगाते हैं जो कि ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि शिवाजी अगर ऐसा नहीं करता तो अफजल खाँ ने उसे अवश्य मार देना था। अफजल खाँ के मरते ही मराठा सैनिक जो पास के जंगलों में छुपे हुए थे बीजापुर की सेना पर टूट पड़े। एक घमासान युद्ध हुआ। जिसमें शिवाजी की शानदार जीत हुई और बहुत सा लूट का सामान उसके हाथ लगा जिसमें 10 लाख रू. नकद के अतिरिक्त 4000 घोड़े, 65 हाथी, 1200 ऊँट तथा काफी मात्रा में गोला बारूद थी। इसके बाद आदिलशाह ने शिवाजी को स्वतन्त्र शासक मान लिया।

शिवाजी और मुगल

अफजल खाँ की मृत्यु के बाद शिवाजी के बड़े जोश के साथ मुगलों पर छापे मारने आरम्भ कर दिये औरगजेब को जब इस घटना का समाचार मिला तो उसने मराठा सरदार को कुचलने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

शाईस्ता खाँ और शिवाजी

1660 में औरंगजेब ने अपने मामा शाईस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया और उसे यह आदेश दिया कि वह

मराठों की शक्ति को कुचल डाले। शाईस्त खाँ ने 1660 में अहमदनगर से पूना की ओर कूच किया। दो तीन वर्षों में उसने पूना, चाकन, कल्याणी और मराठों के कई अन्य प्रदेश जीत लिए। शिवाजी ने इतनी देर में कोलबा और रत्नगिरी के प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया।

वर्षा होने के कारण शाईस्ता खाँ को कुछ समय पूना में ठहरना पड़ा और दुर्भाग्यवश वह उसी घर में ठहरा, जहाँ शिवाजी ने अपना बचपन बिताया था। शिवाजी को इस समय शत्रु पर वार करने की एक चाल सूझी। उसने 15 अप्रैल 1663 की रात को 400 सैनिकों सहित, जिन्होंने बारातियों का भेष बदला हुआ था पूना में प्रवेश किया। और आधी रात को शाईस्ता खाँ और उसके साथियों पर अचानक धावा बोल दिया। रात्री के समय इस युद्ध में शाईस्ता खाँ का बेटा उसकी 6 पत्नियाँ और चालीस सेवक मारे गये। शाईस्ता खाँ की अपनी जान तो बच गयी लेकिन उसके एक हाथ का अंगूठा कर गया। इस घटना से मुगल सेना में भगदड़ मच गई तथा मुगल दरबार में सनसनी फैल गई।

सूरत की लूट

शिवाजी ने पूना की विजय के बाद 4000 सैनिकों के साथ मुगलों के अधीन सूरत शहर पर जोरदार हमला कर दिया। और 16 से 20 जनवरी 1664 तक इस शहर को खूब लूटा। इस लूट में शिवाजी के हाथ करीब एक करोड़ रू. का माल लगा।

जयसिंह का महाराष्ट्र पर आक्रमण ओर पूरन्धर की सन्धि 1665 ई.

शिवाजी को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए औरंगजेब ने 1665 ई. में जयसिंह के अधीन एक सेना भेजी। जनवरी 1665 में मुगल सेनाओं ने नर्मदा नदी को पार किया और पूना पहुँच गई। यहाँ पर जयसिंह ने शिवाजी के विरूद्ध कार्य करने की योजना बनाई और पुरन्धर की ओर चढ़ाई कर दी। दो महीने तक पुरन्धर की घेरा बन्दी जारी रही। मराठा सरदार मुरारबाजी ने शत्रुओं का डट कर मुकाबला किया। परन्तु उसे मौत के घाट उतार दिया गया। जब शिवाजी को अपनी असफलता नजर आने लगी तो उसने सन्धि कर ली। यह सन्धि इतिहास में पुरन्धर की सन्धि के नाम से जानी जाती है। इस सन्धि की शर्तें ये थी :–

1. शिवाजी अपने अधीन 35 किलों में 23 किले मुगलों को सौंप देगा और 12 किले अपने पास रखेगा। इन 23 किलों की प्रतिवर्ष लगान के रूप में आय 4 लाख हुई थी।
2. शिवाजी ने मुगल दरबार में उपस्थित होने की छूट मांगी। उसके स्थान पर उसके पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में 5000 का मनसब दिया गया।
3. उसने बीजापुर के विरूद्ध मुगलों की ओर से लड़ना स्वीकार कर लिया।
4. उसने वचन दिया कि यदि मुगल सरकार उसे कोंकण व कुछ अन्य प्रदेश दिलवा देगी तो वह उसके बदले में 40 लाख हुन 13 वार्षिक किस्तों में मुगल सरकार को अदा करेगा।

पुरन्धर की सन्धि को इतिहासकर जयसिंह की बड़ी विजय मानते हैं। क्योंकि जयसिंह ने इस सन्धि के द्वारा मुगलों के लिए 23 किले तथा बहुत बडी रकम प्राप्त की बल्कि वह शिवाजी से यह बात मनवाने में भी सफल हुआ कि शिवाजी मुगल सम्राट को मिलने व्यक्तिगत रूप से मुगल दरबार में जायेंगे।

शिवाजी मुगल दरबार में बन्दी और उनका बच निकलना

12 मई 1666 ई. को शिवजी अपने वचन के अनुसार आगरा के मुगल दरबार में अपने पुत्र शम्भाजी तथा 350 सैनिकों के साथ उपस्थित हुआ। शिवाजी को औरंगजेब से उचित सम्मान न मिलने के कारण दरबार में क्रोधित हो उठा और मुगल सम्राट ने उन्हे बन्दी बना लिया परन्तु शिवाजी बड़े चालाकी से एक टोकरे में बैठ कर वहाँ से बच निकलने में सफल रहा।

सूरत पर पुनः आक्रमण और राज्य रोहण

दक्षिण पहुँचकर शिवाजी ने पुराने किलों को पुनः जीत लिया। इस बार औरंगजेब ने शहजादा मुअज्जम व जसवन्त सिंह को भेजा। शिवाजी ने उन्हें पराजित किया ओर मुगलों से सन्धि कर ली। इस सन्धि के फलस्वरूप औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि प्रदान की। शिवाजी को बरार की जागीर भी दे दी गई परन्तु शिवाजी ने सन्धि का पालन नहीं किया और सूरत पर पुनः आक्रमण कर दिया। सूरत की दूसरी लूट में भी मराठों को बहुत सा सोना मिला। मराठों का दक्षिण में इतना आतंक बढ़

गया कि वे मुगल प्रदेशों से चौथ और सरदेश मुखी नामक कर भी वसूलने लगे। शिवाजी ने केवल लूटमार करके ही स्वयं को सन्तुष्ट नहीं किया क्योंकि उसके सामने और महान उद्देश्य थे। उन्होंने 15 जून 1674 ई. को शाहजी की मृत्यु के पश्चात छत्रपति महाराज की उपाधि धारण की।

राज्यारोहण के बाद विजय तथा मृत्यु

शिवाजी अपने राज्यारोहण के केवल 6 वर्ष तक ही जीवित रहे इस अवधी में उन्होंने 1675 में खानदेश पर आक्रमण किया और 1677 ई. में कर्नाटक पर चढ़ाई करके उसका अधिकांश भाग जीत लिया। शिवाजी ने अपनी मृत्यु से पहले बीजापुर के सुल्तान का मुगलों के विरूद्ध सैनिक सहयोग दिया। शिवाजी 50 वर्ष की आयु में अकस्मात एक बिमारी के कारण 13 अप्रैल 1680 ई. को स्वर्ग सिधार गये।

शिवाजी का शासन प्रबन्ध

शिवाजी न केवल एक साहसी और सफल सैनिक विजेता था अपितु एक महान तथा प्रजा हितेषी शासक भी था। उसने अपने प्रशासन को बहुत ही सुव्यवस्थित ढंग से चलाया। शिवाजी की शासन व्यवस्थ का वर्णन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है।

राजा

केन्द्रीय शासन को चलाने वाला सर्वोच्च अधिकारी राजा था। निःसन्देह वह सर्वेसर्वा था लेकिन वह दैनिक प्रशासन अपने मन्त्रिमण्डल का अष्ट प्रधान की सहायता से करता था। शिवाजी को हम दयालू निरंकुश शासक कह सकते हैं उसने आठ मन्त्री रखे थे। इन मन्त्रियों को आजकल जैसे मन्त्री नहीं समझा जाना चाहिए। क्योंकि वे केवल शिवाजी के प्रति उत्तरदायी थे। उनका पदों पर बने रहना शिवाजी की मर्जी पर ही निर्भर करता था।

मन्त्रीगण या अष्ट प्रधान

1 **पेशवा** : शिवाजी के मन्त्रीमण्डल में आठ मन्त्री थे जिन्हें अष्ट प्रधान कहा जाता था। इन सब में प्रमुख पेशवा या जो राज्य का प्रधानमन्त्री होता था। पेशवा राज्य के प्रशासन और अर्थव्यवस्था को देखता था। राजा की अनुपस्थिति में तमाम राजकीय पत्रों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर तथा हस्ताक्षर होते थे।

2. **सेनापति** : यह मन्त्रीमण्डल से दूसरा महत्त्वपूर्ण मन्त्री था। इस पद पर किसी प्रमुख मराठा सरदार को नियुक्त किया जाता था। इसका काम सेना की भर्ती करना, संगठन और अनुशासन रखना था। युद्ध क्षेत्र में सेना को तैनात करना भी इसी का काम था।

3. **अमात्य** : यह राज्य का वित्त मन्त्री था। इसका काम सारे राज्य के आय व्यय की जांच का ब्यौरा तैयार करना तथा उन पर हस्ताक्षर करना था।

4. **सुमन्त या विदेश मन्त्री** : यह विदेशी मामलों से सम्बन्धित सारा काम करता था। यह राजदूत तथा गुप्तचरों से सम्बन्ध बनाये रखता था।

5. **वाकेनवीस** : यह घरेलु या परिवार से सम्बन्धित बातों तथा गुप्तचर विभाग तथा राजा के दैनिक कार्यों को लिखता था। राजा से मिलने वालो की सुची तैयार रखता था। राजा व राज परिवार के खाने की चीजों का प्रबन्ध करता था।

6. **सचिव** : इसका प्रमुख काम सरकारी पत्र व्यवहार की व्यवस्था करना था।

7. **पाण्डितराव** : इसका मुख्य कार्य धार्मिक मामलों की देखभाल करना तथा दान विभाग का प्रबन्ध करना था। प्रजा के आचरण को सुधारने का उत्तरदायितव भी इसी पर था। यह धर्म सम्बन्धी झगड़ों का भी निपटाता था।

8. **न्यायाधीश** : यह फौजदारी तथा दिवानी दोनों प्रकार के मुकद्दमों को सुनता था। वह व्यय के साथ-साथ कानून की भी व्याख्या करता था।

स्थानीय प्रशासन

प्रान्त का प्रबन्ध

शिवाजी ने अपने राज्य को चार प्रान्तों में बांटा हुआ था। इनमें से तीन प्रान्त – उत्तरी प्रान्त और दक्षिण पूर्व प्रान्त अच्छी प्रकार से संगठित थे। इन प्रान्तों का प्रबन्ध सुबेदारों के अधीन था जो राजा की इच्छा से कार्य करते थे। चौथे प्रान्त में वे प्रदेश शामिल थे जिनकों शिवाजी ने अपने अन्तिम वर्षों में विजय किया था। इस प्रान्त का प्रशासन सेना के अधीन था।

परगने का प्रबन्ध

प्रत्येक प्रान्त को कई परगनों में बांटा गया था। परगने का प्रबन्ध कलैक्टर के हाथ में होता था। इसके कार्यों के बारे में विशेष रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु वह निश्चित है कि इसके पास एक सैनिक टुकड़ी होती थी।

गाँव का प्रबन्ध

शासन प्रबन्ध की सबसे छोटी इकाई गाँव थी, जिसका प्रबन्ध गाँव के मुखिया अथवा पटेल द्वारा किया जाता था। गाँव के प्रबन्ध में पंचायतें महत्त्वपूर्ण भाग लेती थी।

वित्त व्यवस्था

शिवाजी ने राज्य की वित्त व्यवस्था की और विशेष ध्यान दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी की कर व्यवस्था मलिक अम्बर की व्यवस्था पर आधारित थी। 1679 ई. में अन्नाजी दतों ने जमीन का नये सिरे से सर्वेक्षण पूरा किया और उसके आधार पर लगान तय करने का कार्य पूरा कर लिया था। न तो शिवाजी ने जमींदारी या सरदेशमुखी प्रथा को बन्द किया था। और न ही अपने अधिकारियों को जागीरें देना बन्द किया। राज्य की आय के चार साधन थे। भूमि कर, चुंगी कर चौथ तथा सरदेशमुखी 1679 सर्वेक्षण के बाद भूमि कर को नये सिरे से तय किया गया। प्रारम्भ में राज्य उपज का 33% भाग लेता था। लेकिन कुछ समय बाद भूमि कर को बढा कर 40% कर दिया गया।

यह निश्चित रूप से बहुत ज्यादा था। फ्रायर ने शिवाजी की भूमि कर प्रणाली की कड़ी आलोचना की है। उसके कथनानुसार, "शिवाजी के समय में किसानों पर बहुत अत्याचार किये जाते थे। और उनकी व्यवस्था बहुत बुरी थी। वह यह भी लिखता है कि शिवाजी से बीजापुर का शासन अधिक नरम था। लेकिन बहुत से इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं है। उनके विचार में शिवाजी किसानों का बहुत ध्यान रखता था। प्राकृतिक विपत्तियों के समय शिवाजी किसानों को बीज खरीदने के लिए आर्थिक सहायता देता था तथा उनका कर माफ कर देता था।

भूमि कर के अतिरिक्त चुंगी, चौथ तथा सरदेशमुखी भी आय के साधन थे। चौथ कर पड़ोस के राज्य के क्षेत्रें से वसूल किया जाता था कि भविष्य में मराठे उन पर आक्रमण नहीं करेंगे। चूंकि यह भूमि पर लगाए गए कर का चौथा हिस्सा था इसलिए इसे चौथ कहा जाता था। सरदेशमुखी मराठा सरकार की आय का एक अन्य प्रमुख साधन था। महाराष्ट्र के सभी देशमुख अथवा जमींदार शिवाजी को सरदेशमुख अथवा स्वामी मानते हुए अपनी आय का दसवां भाग देते थे। चूंकी सरदेशमुख होने के नाते यह कर शिवाजी लेता था। इसलिए इसे सरदेशमुखी कहा जाने लगा। चूंगी कर से भी मराठा सरकार को काफी आय हो जाती थी।

सेना संगठन

शिवाजी की सेना सगठन अधिक उत्तम था। उन्होंने एक विशाल स्थाई सेना की स्थापना की। सेना में पैदल सैनिकों के अतिरिक्त घुड़सवार हाथी तथा ऊँट सवार भी थे। सेना की भर्ती में शिवाजी स्वयं रूचि लेते थे। उन्होंने दुर्ग व्यवस्थ की ओर विशेष ध्यान दिया। शिवाजी ने कोलाबा के स्थान पर एक छोटी सी नौ सेना का भी निर्माण किया। शिवाजी के तोपखानों में 200 तोपें थी। सेना में कड़ा अनुशासन था। अभियानों के दौरान स्त्रियों तथा नर्तकियों के साथ जाने की मनाही थी। आक्रमणों के समय लूटी गई सम्पत्ति का प्रत्येक सैनिक को ब्योरा देना पड़ता था और बड़ी सावधानी से रखा जाता था। शिवाजी अपने सैनिकों को नकद वेतन देते थे। कुछ सरदार को भूमि अनुदान में भी दी जाती थी।

न्याय प्रणाली

शिवाजी ने सरल तथा प्राचीन न्याय प्रणाली को अपनाया गाँवों में अब भी पंचायतें ही न्याय करती थी। सर्वप्रथम फौजदारी मुबदमों का फैसला पटेल नामक अधिकारी करता था। पटेल के फैसलों के खिलाफ जाने वालों की अपीलों को न्यायाधीश सुनता था। न्याय के मामले में अन्तिम फैसला देने का अधिकार केन्द्रीय न्यायाधीश जो अष्ट प्रधान का सदस्य होता था के पास था। शिवाजी के काल में यद्यपि न्याय के लिए कोई लिखित नियम या कानून नहीं थे। तथा हिन्दू धर्म ग्रन्थों के आधार पर न्याय किया जाता था तो भी न्याय का आधार निष्पक्षता तथा सत्य था।

सिक्खों का उदय और मुगलों के साथ सम्बन्ध

गुरू नानक

सिख मत के प्रवर्तक गुरू नानक थे। उनका जन्म 1469 में पश्चिमी पंजाबे के तलवण्डी नामक ग्राम में हुआ था। जिसे अब ननकाना साहब कहा जाता है उनकी माता का नाम तृप्ता तथा पिता का नाम कालू मेहता था। उनका विवाह सुलक्खनी नामक कन्या से हुआ। उनके दो पुत्र भी हुए। लेकिन सांसारिक बातों में उनकी कम रूचि थी। 1499 में सुल्तानपुर के निकट बई नदी के किनारे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद लगभग तीन वर्ष तक वे भ्रमण करते रहे। और उपदेश देते रहे। उनकी प्रथम यात्र लगभग 12 वर्ष में सफल हुई। उन्होंने इमानावाह, हरिद्वार, कुरूक्षेत्र, बनारस और असम की यात्रा की। दूसरी बार उन्होंने दमन और लंका की तीसरी बार कश्मीर और कैलाश की। कहा जाता है कि वे बगदाद, मक्का और मदीना भी गये। कहा जाता है कि बाबर ने गुरू नानक और उनके शिष्य मरदाना को बन्दी गृह में डाल दिया था। किन्तु, जब बाबर को पता लगा वे एक सन्त हैं उन्हे फौरन् रिहा कर दिया। 1538 में उनका देहान्त हो गया।

गुरू अंगद 1538–1552

गुरू नानक ने गुरू अंगद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। अंगद ने गुरूमुखी लिपि, को जन साधारण तक फैलाया। उन्होंने गुरू नानक का जीवन चरित्र लिखा और उनकी वाणी का एक पुस्तक के रूप में संग्रह किया। किवदन्ती है कि हुमायूँ भी गुरू अंगद से आर्शीवाद लेने आया था।

गुरू अमरदास 1552 से 1574

अंगद के उत्तराधिकारी अमरदास बने। सिख मत के अनुयायी होने से पहले वे वैष्णव थे। उनका गद्दी पर बैठने का अंगद और नानक के पुत्रों ने विरोध किया। इस नये गुरू ने गोईन्दवाल में एक बावली खुदवाई जो सिखों का प्रमुख तीर्थ बन गया। उन्होंने लंगर परिपाटी में सुधार किए और इसे जनप्रिय बनाया। उन्होंने सती प्रथा का विरोध किया। पर्दा प्रथा का विरोध किया तथा अपने अनुयायियों को मदिरा पीने से मना किया।

गुरूदास रामदास 1575–1581

अमरदास के बाद उसका जमाता रामदास उसका उत्तराधिकारी बना। वह अकबर का बड़ा मित्र था और अकबर ने उन्हें आधुनिक अमृतसर के स्थानपर बहुत थोड़े से दाम पर 500 बीघा भूमि भी दी थी। सम्राट ने एक वर्ष के लिए पंजाब का लगान भी माफ कर दिया था। रामदास ने एक नया नगर चकगुरू या रामदासपुर नाम से बसाया जो बाद में अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ उन्होंने दो नये तालाब अमृतसर व सन्तोष सर की खुदाई आरम्भ करवाई।

गुरू अर्जुन देव 1581–1606

गुरू अर्जुन देव लगभग 25 वर्ष तक सिख पंथ के गुरू रहें और उन्होंने सिख पंथ के लिए बहुत कार्य किये। उन्होंने अमृतसर की खुदाई का कार्य पूरा किया और तरनतारन तथा करतारपुर नामक नगर बसाये। गुरू अर्जुन देव ने सिखों को धार्मिक पुस्तक अदिग्रय को पूरा करवाया। यह कार्य उन्होंने 1604 में समाप्त किया इसमें सिखों के पांच गुरूओं 18 हिन्दु भक्तों तथा कबीर, फरीद, नामदेव तथा रैदास के उपदेशों का संग्रह किया था। गुरू अर्जुन देव ने मसन्द प्रथा चलाई जिसके अनुसार सिखों को अपनी आय का दसवां भाग गुरू को देना पड़ता था।

अकबर और गुरू के अच्छे सम्बन्ध थे। परन्तु जहाँगीर के सिंहासन पर बैठने के पश्चात स्थिति बदल गई, जिसके परिणामस्वरूप 1606 ई. में गुरु को सता कर मार डाला गया। इस दुर्घटना के कई कारण बताए जाते हैं। कहा जाता है। जहांगीर गुरू द्वारा उसके विद्रोही पुत्र शहजादा खुसरो को आशीर्वाद देने के कारण रूष्ट हो गया था। जहाँगीर ने गुरू को दो लाख रू. दण्ड देने को तथा ग्रंथ से मुसलमानों के विरूद्ध लिखे पद्यों को निकाल देने को कहा। गुरु ने ऐसा करने से इन्कार किया परिणाम स्वरूप उन्हें मरवा डाला गया।

गुरू हरगोविन्द 1606 से 1645 ई.

गुरू अर्जुन के बाद उनका पुत्र हर गोविन्द उनका उत्तराधिकारी बना। आरम्भ से ही वह मुगलों का कट्टर शत्रु था उसने अपने अनुयायियों को शस्त्र रखने और मुगलों के अत्याचार के विरूद्ध युद्ध करने को कहा। उसने स्वयं "सच्चा पादशाह" की पदवी धारण की। वे दो तलवारें रखते थे उसमें से एक की धार्मिक सत्ता तथा दूसरी राजसत्ता का चिन्ह थी। भेंट के रूप में उन्होंने धन न लेकर घोड़े लेने आरम्भ कर दिए। उन्होंने बड़ी संख्या में सैनिक स्वयंसेवी भर्ती किये।

जहाँगीर हर गोविन्द की सैनिक नीति को सहन नहीं कर पाया और उन्हें ग्वालियर के किले में बन्दी बना लिया गया। मियाँ मीर और वजीरखाँ के बीच में पड़ने के कारण कुछ वर्ष बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया। इसके बाद जहांगीर और गुरू जी के बीच सम्बन्ध मित्रतापूर्ण हो गये। लेकिन शाहजहाँ के शासन काल में सम्बन्ध फिर बिगड़ गये। शाहजहाँ असहनशील था उसने लाहौर में सिखों की बावली नष्ट करवा दी। इस बात को लेकर सिखों ने एक बड़ा विद्राह कर दिया। जिसमें दोनों पक्षों के हजारों आदमी मारे गये। अन्त में गुरू हर गोविन्द पहाड़ पर तपस्या करने चले गये और उनका शेष जीवन वहीं व्यतीत हुआ।

गुरू हरराय 1645–1661

गुरू हरगोविन्द का उत्तराधिकारी उनका पौत्र हरराय था। नये गुरू शान्तिमय तरीके से प्रचार करते थे इसलिये मुगल सम्राट से उनके सम्बन्ध ठीक रहे। शहजादे दारा ने गुरू से सैनिक सहायता और आशीर्वाद की याचना की। गुरू ने उसे दानों देकर कृतार्थ किया। जब दारा उत्तराधिकारी सम्बन्धी युद्ध से पराजित हो गया तो औरंगजेब उनका कट्टर शत्रु बन गया? उन्होंने गुरू को मुगल दरबार में बुलवाया किन्तु गुरू कोई बहाना लगाकर स्वयं नहीं गये और अपने ज्येष्ठ पुत्र को भेज दिया। औरंगजेब ने उन्हें ग्रंथ से इस्लाम के विरूद्ध कुछ शब्दों को हटाने को कहा। गुरू के पुत्र ने ग्रंथ साहब के कुछ शब्द बदल कर सम्राट को सन्तुष्ट कर दिया। गुरू ने इस बात को बहुत बुरा माना और उन्हें उत्तराधिकार से वंचित कर अपने छोटे पुत्र हरकिशन को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

गुरूहरकिशन 1661–1664

गुरू बनने के समय हरकिशन की आयु केवल पाँच वर्ष की थी। वह तीन वर्ष बाद मर गया। उसे सम्राट ने दिल्ली बुलवाया जहाँ उसे चेचक हो गई और उसका देहान्त हो गया।

गुरू तेग बहादुर 1664–1675

गुरू तेग बहादुर सिखों के नवें गुरू थे? मुगल सम्राट औरंगजेब से शत्रुता उन्हें विरासत में मिली थी। मिर्जा राजा रामसिंह के बीच में पड़ने के कारण ही कुछ समय तक औरंगजेब ने उनके विरूद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाया। औरंगजेब ने जो व्यवहार बाद में उनके साथ किया। उसके कई कारण बताए जाते हैं। इनमें से एक में यह कहा जाता है कि कश्मीरी ब्राह्मणों ने उन्हें धार्मिक अत्याचारों से बचाने की प्रार्थना कि और गुरू ने उनका पक्ष लिया था। गुरू ने कश्मीरी ब्राह्मणों से कहा कि वे दिल्ली जाकर औरंगजेब को कहें कि गुरू तेग बहादुर हिन्दुओं का रक्षक है और यदि वे मुसलमान हो गये तो अन्य हिन्दू भी उनका अनुसरण करेंगे। कश्मीरी ब्राह्मणों ने गुरू के आदेश का पालन किया। औरंगजेब ने गुरू को दिल्ली बुलवाया। गुरू ने दिल्ली आने में कुछ देर लगा दी और मार्ग में अपने अनुयायियों से मिले। जब गुरू आगरा पहुँचे तो उन्हें बन्दी बना कर दिल्ली लाया गया और बन्दी गृह में डाल दिया गया। औरंगजेब ने गुरू को इस्लाम कबूल करने को कहा इन्कार करने पर उनकी हत्या कर दी गई। दूसरा मत है कि गुरू ने सारे पंजाब को उजाड़ दिया था इसलिये उनकी हत्या की गई।

इन्दूभूषण वैनजी के मतानुसार "गुरू की हत्या राजनैतिक कारणों से नहीं अपितु धार्मिक कारणों से हुई। गुरू स्वभाव से शान्त

तथा एक सन्त का जीवन व्यतीत करते थे। उनके विषय में यह सोचना कि उन्होंने सारे पंजाब को उजाड़ दिया था, बड़ा अन्याय होगा।

गुरू गोबिन्द सिंह 1675 से 1708 ई.

गुरू गोबिन्द सिंह सिखों के दसवें और अन्तिम गुरू थे। गुरू बनने के पश्चात उन्होंने अनुभव किया कि उनके अनुयायियों में मतभेद है और उनमें मुगलों से द्वन्द करने का सार्मथ्य और साहस नहीं है। उन्होंने उनको युद्ध की शिक्षा देना प्रारम्भ किया तथा पठानों को भी अपनी सेना में भर्ती किया। उन्होंने आनन्दपुर को अपना केन्द्र बनाया। मुगलों ने गुरू का दमन करने के कई बार प्रयास किए किन्तु शहजादा मुअजम के सलाहकर गुरू का आदर करते थे और उनके बीच में पड़ने के कारण वे सब प्रयास विफल हुए।

गुरू गोबिन्द सिंह ने 1699 मे बैसाखी के दिन "खालसा" की नींव रखी। उन्होंने गुरू नानक के अनुयायियों के सन्त से सैनिक बना दिया। पर्वतीय प्रदेशों के सामन्त गुरू की इस बढ़ती हुई शक्ति से बड़े चिन्तित थे। इसलिए उन्होंने शत्रुओं का साथ दिया। परिणामस्वरूप 1701 में आनन्दपुर साहब का प्रथम युद्ध हुआ जिसमें पर्वतीय राजा पराजित हुए और गुरू विजयी हुए। इन लोगों ने गुरू के विरूद्ध औरंगजेब से सहायता मांगी। औरंगजेब ने पंजाब में स्थित मुगल पदाधिकारियों को गुरू के विरूद्ध कार्रवाई करने को कहा। सरहिन्द के सूबेदार वजीर खाँ ने गुरू के विरूद्ध अपनी सेना भेजी और 1703–04 में आनन्दपुर का दूसरा युद्ध हुआ। सिखों ने खूब डटकर मुकाबला किया लेकिन आनन्दपुर छोड़ना पड़ा। गुरू के दो पुत्रें को पकड़ लिया गया तथा उन्हें सरहिन्द ले जाकर जिन्दा दीवार में चुनवा दिया गया। चुमकोट में फिर युद्ध हुआ जिसमें गुरू के दो और पुत्र मारे गये। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई इसके बाद उसका पुत्र बहादुरशाह गद्दी पर बैठा। नये सम्राट से गुरू के अच्छे सम्बन्ध थे। 1708 में एक पठान ने छूरा घोप कर गुरू की हत्या कर दी।

अध्याय-4

मुगलों का शासन प्रबन्ध
(Mughals' Administration)

अकबर पहला मुगल सम्राट था जिसने कुशल एवं सुदृढ़ शासन प्रणाली की नींव रखी। उसकी शासन प्रणाली सल्तनत कालीन शासन प्रणाली से भिन्न थी। इसने कोई सन्देह नहीं कि अकबर ने शेरशाह सूरी द्वारा स्थापित किये गये शासन प्रबन्ध के कुछ सिद्धान्तों को अपनाया। परन्तु उसने शासन प्रबन्ध में सुधार भी किये। उसके द्वारा स्थापित किये गये शासन प्रबन्ध को जहांगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब ने मूल रूप से अपनाया।

केन्द्रीय प्रशासन – सम्राट साम्राज्य के प्रशासनिक विभागों का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसकी इच्छा ही कानून थी। संवैधानिक दृष्टि से उसके अधिकार असीमित थे। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से वह मन्त्रियों एवं अधिकारियों की सहायता एवं उचित परामर्श से प्रशासन चलाता था। सम्राट के लिए मन्त्रियों की सलाह मानना अनिवार्य नहीं था जैसा की इतिहासकार, वी.ए. स्मिथ लिखते हैं "सम्राट अपने मन्त्रियों के पीछे चलने के स्थान पर उन्हें पीछे चलाता था" परन्तु मुगल सम्राट तानाशाह होते हुए भी प्रजा की भलाई का सदा ध्यान रखते थे। अकबर तो इस बात का विशेष ध्यान रखता था। उसने केन्द्रीय प्रशासन के ढांचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। उसने विभिन्न विभागों को अलग–अलग अधिकार तथा कार्य क्षेत्र दिए। ताकि एक दूसरे से उनका सन्तुलन बना रहे। और उनके सर्वोच्च पदाधिकारी एक दूसरे पर नजर भी रख सकें।

मंत्रिमण्डल

1. **वकील या प्रधानमन्त्री** – मुगल सम्राट के अधीन सबसे बड़ा अधिकारी वकील होता था। वह सम्राट का सबसे अधिक विश्वसनीय साथी होता था। वह सम्राट को हर मामले में राय देता था तथा राज्य के सभी विभागों का निरीक्षण करता था। अकबर के काल में वकील की बहुत शक्ति होती थी। अकबर के काल में बैरम खाँ ने सबसे पहले वकील पद पर कार्य किया। लेकिन धीरे–धीरे वकील के अधिकारों को कम कर दिया गया। वजीर नाम अधिकारी को वित्तीय एवं दीवानी अधिकार दे दिये गये। तथा सैनिक विभाग मीर बख्शी के अधीन कर दिया गया। वकील के पद को समाप्त नहीं किया गया लेकिन उसके अधिकतर अधिकार समाप्त कर दिये गये और वह केवल नाममात्र और सजावट का पद रह गया। उसका मुख्य कार्य केवल सम्राट को परामर्श देना ही रह गया।

2. **वजीर ऊँचा दीवान** – इस अधिकारी के पास राजस्व विभाग होता था तथा वह राज्य की आय तथा व्यय का हिसाब किताब रखता था। वह भूमि सम्बन्धी सारे नियम बनाता था तथा अन्य करों की दरें निश्चित करता था। वह प्रान्तीय दिवानों की नियुक्ति के लिए सम्राट को परामर्श देता था। उनके कार्यों की जाँच करके सम्राट को सूचना देता था दीवान के हस्ताक्षर के बिना खजाने से पैसा नहीं निकलवाया जा सकता था।

3 **मीर बख्शी** – वजीर के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान मीर बख्शी का होता था। वह सैन्य विभाग की देखभाल करता था। वही सम्राट को प्रमुख सैनिक परामर्श देता था। वह सम्राट को मनसबदारों की नियुक्ति के बारे में परामर्श देता था। मनसबदारों का सारा रिकार्ड भी उसी के पास होता था। वह सैनिकों की भर्ती करता था, उनके हुलियों का रिकार्ड रखता था तथा घोड़ों को दागने का काम करवाता था।

4. **खाना–ए–सामा** – यह अधिकारी शाही हरम की व्यवस्था करता था। शाही कारखानों की व्यवस्थ सम्राट के अंगरक्षकों का प्रबन्ध, हरम के लिए भोजन सामग्री और अन्य वस्तुओं की आपूर्ति करना आदि इसके कार्यों में शामिल था। इस अधिकारी का पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता था इस पद पर सम्राट अपने बहुत ही विश्वसनीय व्यक्ति को नियुक्त करता था।

5. **काजी–उल–कज्जात या प्रधान काजी** – यह अधिकारी सम्राट के बाद न्याय विभाग का सबसे बडा अधिकारी होता था। वह इस्लामी नियमों के अनुसार फैसले करता था। अन्य काजीयों की नियुक्ति करने में सम्राट को परामर्श देना, छोटी अदालतों की अन्य अपीले सुनना और न्याय प्रशासन की देख–रेख करना उसके मुख्य कार्य थे।

6. **सद्र–उस्सुदूर–या मुख्य सदर** – यह अधिकारी धार्मिक विभाग का अध्यक्ष होता था वह धार्मिक मामलों में सम्राट को सलाह देता था। उसका कार्य साम्राज्य में रहने वाले महात्मा पीरों व फकीरों की सुची तेयार करना, विद्यालय व अन्य धार्मिक संस्थाओं को भूमि व अनुदान देना। तथा प्रान्तीय सरदारों के काम का निरीक्षण करना होता था।

7. **मुहतसिव वे नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने वाला अधिकारी** – इस अधिकारी का कार्य लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का होता था। वह जुआ खेलने वाले शराब पीने वालों तथा बुरा जीवन व्यतीत करने वालों पर कड़ी नजर रखता था। और उन्हें दण्ड भी देता था। औरंगजेब के राज्यकाल में इस अधिकारी का महत्त्व काफी बढ़ गया। उसे अब यह देखना होता था कि मुसलमान लोग मुहम्मद साहिब के बताये मार्ग पर चलने में किसी प्रकार की उपेक्षा तो नहीं कर रहे हैं।

8. **दारोगा–ए–डाक–चौकी** – यह अधिकारी डाक तथा गुप्तचर विभागों का मुखिया होता था। देश में डाक व्यवस्था को सुधारना, चौकियों पर घोड़े तथा अन्य आवश्यक सामग्री रखना, देश के विभिन्न भागों में गुप्तचर नियुक्त करना तथा उन द्वारा देश के प्रत्येक कौने में होने वाली घटना का ब्यौरा इकट्ठा करना तथा सम्राट को ऐसी खबरों से सुचित करते रहना उसके मुख्य कार्य थे।

9. **अन्य अधिकारी** – इन मन्त्रियों के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के कई अन्य पदाधिकारी भी थे। जैसे मीर आतिश इसके अधीन तोपखाना था। दरोगा–ए–टकसाल सिक्कों की ढलाई का कार्य देखता था। मीर–ए–बर जंगलों के विभाग का मुखिया था। मीर–ए–बहर समुंद्री बेड़े का अध्यक्ष था।

प्रान्तीय प्रशासन

मुगलों ने अपने साम्राज्य को कई प्रान्तों में बांट रखा था। प्रान्तों की संख्या अकबर के काल में 15 थी और जहांगीर तथा औरंगजेब के काल में, उनकी संख्या बढ़कर क्रमश 17 और 21 हो गई। प्रो जादूनाथ सरकार के मत में "मुगल साम्राज्य का प्रान्तीय शासन केन्द्रीय सरकार का पूरी तरह एक छोटा रूप था।" प्रान्तीय प्रशासन के प्रमुख अधिकारी इस प्रकार थे–

1. **सूबेदार** – हर प्रान्त का अध्यक्ष प्रान्त पति होता था जिसे अकबर के काल में "सिपह सालार" और उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में सूबेदार या नाजिम कहा जाता था। सूबेदार की नियुक्ति सम्राट अपनी मर्जी से या वकील अथवा वजीर की सहमति से करता था। वह प्रायः मनसब प्राप्त व्यक्ति होता था या नियुक्ति से पूर्व उसका मनसब बढ़ा दिया जाता था। उसके मुख्य कार्य प्रान्त में शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखना, केन्द्रीय या सम्राट से फरमानों का पालन करना, राजस्व की वसूली कराना तथा जरूरत पड़ने पर सम्बन्धित अधिकारी को सैनिक सहायता देना, प्रान्तीय स्तर पर नीचे के न्यायालयों की अपीलें सुनना, प्रान्तीय सेना पर नियन्त्रण रखना, आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र को सैनिक सहायता भेजना या सैनिक अभियान छेड़ना। आदि होता था। वह प्रान्तीय कर्मचारियों की पदोन्नति तथा पदच्युति करता था। वह सम्राट की आज्ञा के बिना किसी से युद्ध एवं सन्धि नहीं कर सकता था।

2. **प्रान्तीय दीवान** – सूबेदार के बाद प्रान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण पद दीवान का होता था। वास्तव में वह सूबेदार के अधीन नहीं होता था। वह सीधा केन्द्रीय दीवान के नियन्त्रण में ही कार्य करता था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय दीवान सम्राट के आदेशानुसार करता था। प्रान्तीय दीवान प्रान्त में कर सम्बन्धित कार्य करता था। प्रान्त में कर लगाना।

उसके उगाहने का प्रबन्ध करना और उगाहने वाले अधिकारियों की नियुक्ति करना उसके मुख्य कार्य होते थे। इसके अतिरिक्त उसका कर्त्तव्य था कि वह सभी आमिलों और तहसीलदारों के बारे में ठीक जानकारी रखें, उन्हें किसानों व व्यापारियों पर अत्याचार करने से रोके। वह प्रान्त में दीवानी मुकदमों का फैसला भी करता था।

3 **प्रान्तीय बख्शी** – प्रान्त का तीसरा महत्वपूर्ण अधिकारी बख्शी होता था। उसकी नियुक्ति केन्द्रीय बख्शी के परामर्श से सम्राट करता था। वह प्रान्त में वही कार्य करता था जो केन्द्र में केन्द्रीय बख्शी करता था। वह प्रान्त की सेना का अध्यक्ष होता था। वह ही युद्ध के समय मनसबदारों तथा जमींदारों की निर्धारित सैनिक संख्या के आधार पर सेना का निरीक्षण करता था।

4 **सदर तथा काजी** – केन्द्रीय सदर की सिफारिश पर सम्राट हर प्रान्त में एक सदर की नियुक्ति करता था। यह वजीफे तथा जागीर प्राप्त करने के योग्य लोगों के नाम अपनी सहमति के साथ केन्द्र को भेजता था। प्रान्तीय काजी न्याय सम्बन्धी अधिकारी था। वह दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमें सुनता था।

5 **वाकीया नवीश** – कई बार प्रान्तीय बख्शी को ही वाकीया नवीश का कार्य सौंप दिया जाता था। वह सम्राट को सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सूचना भेजता था। उसके अधीन बहुत से गुप्तचर व लेखक कार्य करते थे।

6 **कोतवाल** – प्रान्त के मुख्य नगरों में एक अधिकारी होता था जिसे कोतवाल कहते थे। वह केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता था। नगर में शान्ति स्थापित रखना नगर की सफाई का ठीक प्रबन्ध करना, असामाजिक तत्त्वों पर निगरानी रखना, तथा नगर में आये विदेशियों की देखभाल करना उसका मुख्य कार्य होता था।

सरकार अथवा जिले का प्रबन्ध

प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुगलों ने प्रान्त को आगे कई सरकारों अथवा जिलों में बाँटा हुआ था। सरकार के प्रबन्ध के लिए निम्नलिखित अधिकारी होते थे।

1. **फौजदार** – प्रत्येक सरकार या जिले का प्रमुख अधिकारी फौजदार होता था। उसे सम्राट नियुक्त करता था। उसका प्रमुख कार्य सरकार में शान्ति व्यवस्था रखना होता था। उसके कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसके अधीन एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी भी होती थी।

2. **आर्मल गुजार** – आर्मल गुजार सरकार के आर्थिक विभाग का मुखिया होता था। उसके मुख्य कार्य कृषकों के हितों का ध्यान रखना, भूमि की उपज को बढ़ाने का प्रयत्न करना तथा अपने अधीन कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करना तथा उनकी सहायता करना होता था।

परगने का प्रबन्ध

1. **शिकदार** – यह परगने का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होता था। उसके कर्त्तव्य प्राय वही होते थे जो फौजदार के सरकार में होते थे। अपने परगने में शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखना, अपने विभाग के अधिकारियों की लगान इकट्ठा करने में सहायता करना। परगने में शान्ति बनाए रखना होता था।

2. **आमिल** – परगने के अर्थ विभाग के अध्यक्ष को आमिल कहा जाता था। उसका कार्य भूमि कर इकट्ठा करना, किसानों की आवश्यकता के समय सहायता करना, तथा दिवानी मुकदमों का निर्णय करना होता था।

3 **फौतदार** – फौतदार परगने का खजांची होता था। उसे भी वही, कार्य करने पड़ते थे जो सरकार अथवा जिले में खजानदार को करने पड़ते थे। उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि किसानों से कितना लगान वसूल हो चुका है तथा कितना बाकी है।

4 **कानूनगो** – प्रत्येक परगने में जितने भी पटवारी होते थे उन सबका प्रमुख कानूनगो होता था। उसे परगने में होने वाली भिन्न–भिन्न फसलों, किसानों से वसूल होने वाली रकम तथा बाकी रहने वाली राशि का हिसाब किताब रखना पड़ता था।

ग्राम प्रबन्ध

ग्राम का प्रबन्ध मुकद्दम तथा पंचायत के हाथ में था। मुकद्दम गाँव का भूमिकर एकत्रित करता था और चौकीदार की सहायता से गाँव में शान्ति कायम रखता था। पंचायत, जिसमें गाँव के प्रभावशाली व्यक्ति होते थे, कई कार्य करती थी। गाँव में सफाई तथा शिक्षा का प्रबन्ध करना, छोटे–मोटे झगड़ों का निर्णय करना आदि उसके कुछ प्रमुख कार्य थे।

मुगलों का भूमिकर व्यवस्थ

भारत पर अधिकार करने के पश्चात बाबर तथा हुमायुँ ने सल्तनत काल से ही चली आ रही पद्धति को अपनाया। भूमि लगान व्यवस्था को दूरूस्त करने का सारा श्रेय अकबर को जाता है कुछ विद्वानों के मतानुसार अकबर ने भूकर व्यवस्था में कोई सुधार नहीं किया और उसने शेरशाह द्वारा चालू की गई व्यवस्था को केवल ठोस आधार दिया। इसमें कोई शक नहीं होना चाहिए कि अकबर ने शेरशाह कि भूमि कर व्यवस्था को अपनाया। परन्तु उसने उसमें समय–समय पर कई ठोस सुधार भी किए। उसने काल में भू–लगान की निम्नलिखित पद्धतियाँ प्रचलित थी।

जब्ती प्रणाली

1570 से 1580 ई. तक कोई दस वर्षों के प्रयोग के पश्चात् अकबर ने मुजफ्फर खाँ तथा टोडरमल की सहायता से एक प्रशंसनीय भूमि कर प्रणाली स्थापित की जिसे जब्ती प्रणाली अथवा टोडर मल का बन्दोबस्त कहा जाता है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. **भूमि की पैमाईश** : सबसे पहले सारी कृषि योग्य भूमि की पैमाईश की गई। इस कार्य के लिए 40 उगल का गज प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त शेरशाह के समय की रस्सी की जरीब के स्थान पर नई जरीब चालू की गई। यह बास की बनी होती थी तथा इसके सिरों पर लोहे की पत्तियाँ लगी होती थी।
2. **भूमि का वर्गीकरण** : अकबर ने सारी कृषि भूमि को उपज के आधार पर चार भागों में बँटवाया –
   - क) **पोलज** – यह सबसे उपजाऊ भूमि थी इस पर सारा साल कृषि होती थी।
   - ख) **परौती** – यह भूमि पोलज भूमि से कम उपजाऊ थी। इस भूमि पर फसलें लेने के बाद एक दो वर्ष के लिए खाली छोड़ दिया जाता था।
   - ग) **चाचर भूमि** – जिस भूमि को एक बार फसल लेने के बाद तीन या चार वर्षों तक खाली छोड़ दिया जाता था वह चाचर भूमि कहलाती थी।
   - घ) **बंजर** – जो भूमि प्राय खाली पड़ी रहती थी लेकिन कभी–कभी इस पर खेती कर ली जाती थी।
3. **भूमि कर निर्धारण करना** – इन तीनों मानों की कुल उपज निकाल ली जाती थी। और उसके आधार पर सरकार किसानों से उपज का 1/3 भाग कर के रूप में लेती थी।
4. **भूमि कर अनाज या मुद्रा में जमा करवाने की छूट** – शेरशाह की तरह अकबर के काल मे भी किसानों की छूट दी गई कि वे चाहे तो सरकारी खजाने में अनाज के रूप में या नकदी के रूप में जमा करा सकते थे, लेकिन सरकार प्राय नकद कर लेना पसंद करती थी।

भूमि कर एकत्रित करना

भूमिकर वर्ष में दो बार एकत्रित किया जाता था परगना में आमिल कर एकत्रित करने का कार्य करता था। कानूनगो व मुकद्दम आदि उसकी सहायता करते थे। बेईमानी को दूर करने के लिए भूमि तथा भूमि कर सम्बन्धी सब रिकार्ड रखे जाते। सरकार की ओर से पट्टा नामक पत्र कृषक को दिया जाता था। और कृषक कबुलियत नामक स्वीकृति पत्र पर हस्ताक्षर कर के सरकारी कर्मचारी को दे देता था।

बटाई पद्धति

इस प्रणाली में गल्ले अर्थात अमड़ा को किसानों और सरकार में निश्चित अनुपात में विभाज़ित कर दिया जाता था। अनाज निकालने के बाद ढेरियां बना ली जाती थी या काटने के बाद उसके गठ्ठर बांध दिये जाते थे। तथा उसका विभाजन कर दिया जाता था। कई बार तो ख़ड़े खेत को बांट दिया जाता था। यह प्रणाली काफी सीधी और सरल थी लेकिन इसके लिए ईमानदार सरकारी कर्मचारी का होना जरूरी था।

नसक पद्धति

अकबर के शासन काल में कर निर्धारण की यह एक अन्य पद्धति थी। इस प्रणाली के बारे में पूरी जानकारी नहीं मिलती। सम्भवतः इस पद्धति में किसानों द्वारा पिछले वर्षों में दिए गए भूमि कर के भुगतान के आधार पर कच्चे अनुमान से भू–राजस्व तय कर लिया जाता था। कभी–कभी नसक पद्धति को कनकुत पद्धति भी कहा जाता था।

दहसाला नामक नई भू–राजस्व प्रणाली

अकबर ने अपने शासन के लगभग 25 वर्षों बाद 1580 ई. में वास्तविक भूमि की उत्पादकता वास्तविक उत्पादन तथा स्थानी कीमतों आदि की सूचना के आधार पर दहजाला नामक दूसरी नई भूमि प्रणाली को जारी किया। इस पद्धति के अनुसार अलग–अलग फसलों के पिछले दस वर्षों के उत्पादन और इसी अवधि में उनकी कीमतों का औसत निकाला जाता था जो भी औसत उत्पादन आता था उसका 1/3 भाग भू–राजस्व के रूप में देना पड़ता था। किसानों को इस पद्धति में भी अनाज या नकदी में जमा कराने की छूट थी। इससे कर निर्धारण एवं हिसाब किताब बार–बार लगाने की समस्या काफी हद तक समाप्त हो गई।

जहांगीर के काल में शासन पर पकड़ ढीली पड़ने लगी इसका बुरा प्रभाव भूमि कर पर पड़ा। इतिहासकार मोरलेण्ड के अनुसार शासन ढीलाई के कारण शायद जब्ती प्रथा जहाँ चल रही थी वहाँ भी बन्द होने लगी। इस समय जागीरदारों का किसानों पर प्रभाव बढ गया तथा वे किसानों का अधिक शोषण करने लगे।

डॉ. बेनी प्रसाद सक्सेना के अनुसार शाहजहाँ के समय भी जब्ती प्रथा का त्याग किया गया और साम्राज्य की 70 प्रतिशत भूमि जागीरों में दे दी गई।

मनसबदारी व्यवस्था

मुगलों द्वारा विकसित मनसबदारी व्यवस्था ऐसी थी जिसका भारत से बाहर कोई उदाहरण नहीं मिलता। मनसबदारी प्रथा की उत्पत्ति सम्भवतः मगलो विजेता चंगेज खाँ के काल में हुई थी, जिसने अपनी सेवा को दशमलव आधार पर संगठित किया था। मंगोलों की इस सैन्य व्यवस्था ने कुछ सीमा तक दिल्ली सल्तनत की सैन्य व्यवस्था को भी प्रभावित किया। लेकिन बाबर तथा हुमायूँ के काल में ऐसी सैन्य व्यवस्था थी या नहीं इस बारे में इतिहासकार मौन हैं। इसलिए ऐसा कहा जात सकता है कि मनसबदारी व्यवस्था का प्रारम्भ अकबर के शासन काल में हुआ।

मनसब शब्द का अर्थ

मनसब फारसी भाषा का शब्द है। इस शब्द का अर्थ है पद, दर्जा या ओहदा। जिस व्यक्ति सम्राट मनसब देता था। उस व्यक्ति को मनसबदार कहा जाता था। अकबर ने अपने प्रत्येक सैनिक और असैनिक अधिकारी को कोई न कोई मनसब अवश्य दिया। इन पदों को उसने जात व सवार नामक दो भागों में विभाति किया। जात का अर्थ है व्यक्तिगत पद या ओहदा और सवार का अर्थ घुड़सवारों की उस निश्चित संख्या से है, जिसे किसी मनसबदार को अपने अधिकार में रखने का अधिकार होता है। इस तरह मनसब शब्द केवल सैनिक व्यवस्था का ही शब्द नहीं है अपितु इसका अर्थ है वह स्थान, जहाँ सैनिक और गैर सैनिक अधिकारी को नियुक्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में मनसब पद प्रतिष्ठा अथवा अधिकार प्राप्त करने की स्थिति थी। इससे व्यक्ति का पद, स्थान अथवा वेतन निर्धारित होता था।

मनसबदारी प्रथा की विशेषताएँ –

1. **मनसबदारों का श्रेणियों में विभाजन** – अकबर ने मनसबदारो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया (1) जिस मनसबदार का जात व सवार पद बराबर होता था, उसे प्रथम श्रेणी का मनसबदार कहा जाता था। (2) जिन मनसबदारों का सवार पद जात पद से आधा या आधे से अधिक होता था उन्हें द्वितीय श्रेणी का मनसबदार कहा जाता था। (3) जिस मनसबदार का सवार पद उसके जात पद से आधे से कम होता था उसे तृतीय श्रेणी का मनसबदार कहा जाता था। अकबर के काल में सबसे छौटा मनसब दस था तथा उच्चतम दस हजार का होता था। बाद में उच्चतम मनसब की सीमा बढ़ा कर 12 हजार कर दी गई थी।

2. **मनसबदारों की नियुक्ति** – मनसबदारों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था और उसकी मर्जी होने तक ही वे पद पर रह सकते थे। मनसबदारें की पदोन्नति भी सम्राट के हाथ में होती थी।

3. **मनसबदारों का वेतन** – मुगल काल में मनसबदारों को प्राय नकद वेतन दिया जाता था। परन्तु कभी–कभी वेतन के स्थान पर जागीर भी दे दी जाती थी। उन्हें अपनी व्यक्तिगत आय और वेतन से ही अपना, अपने अधीन सेना तथा घोड़ो का खर्च चलाना पड़ता था। इतना होने पर भी अकबर के काल में मनसबदार बहुत ठाट–बाट से जीवन गुजारते थे। प्रथम श्रेणी के पाँच हजारी मनसबदार को 30,000 रू. प्रतिमाह, द्वितीय श्रेणी के पाँच हजारी का 29,000 रू. और तृतीय श्रेणी के पाँच हजारी को 28,000 रू. प्रतिमाह वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सवार के लिए दो रू. प्रति मास के हिसाब से अतिरिक्त वेतन भी मिलता था।

4. **मनसबदारों के कार्य** – मनसबदार सैनिक अभियानों से लेकर सेनापति के रूप में युद्ध मे भेजे जा सकते थे। उन्हे विद्रोह रोकने, नये प्रदेश जीतने आदि के साथ–साथ अपने पद से सम्बन्धी तथा समय–समय पर सौंपे गये गैर सैनिक एवं प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ते थे।

5. **मनसबदारों पर पाबन्दी** – अकबर ने मनसबदारों को मनमानी करने से रोकने के लिए इस बात का विशेष ध्यान रख की वे केवल अनुभवी व कुशल सवारों को ही भर्ती करें। उनके अधीन प्रत्येक सवार का हुलिया नोट करने तथा घोडे दागने की प्रथा भी शुरू की। समय–समय पर बादशाह स्वयं उनकी सेना का निरीक्षण करता था या वह स्वय किसी समिति को उनकी सेना निरीक्षण हेतु नियुक्त भी कर सकता था। मनसबदारों को प्रत्येक घुडसवार के पीछ अरबी या ईराकी नसल के दो घोड़े रखने होते थे। मृत्यु हो जाने पर मनसबदार की सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। इन पाबन्दियों ने मुगल सैनिक शक्ति को बहुत सुदृढ़ किया।

6. **मिश्रित सवार** – अकबर ने इस बात की व्यवस्था की कि मनसबदारों के सवारों में मिश्रित अर्थात सभी जातिया मुगल, पठान, राजपूत आदि के सैनिक व घुड़सवार हो। प्रारम्भ में मुगल तथा राजपूत मनसबदारों को इस बात की छूट थी कि वे अपनी जाति के ही सवार रख सके, लेकिन धीरे–धीरे मिश्रित सवार की पद्धति को अपनाया। इसलिए अकबर की सेना में जाति व विशिष्टता की भावना को निर्बल किया गया ताकि राष्ट्रीय एकता को बल मिले।

मनसबदारी प्रथा के गुण –

1. **जागीरदारी प्रथा का अन्त** – मनसबदारी प्रथा नें जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दिया, मनसबदार को प्रति मास वेतन लेने के लिये सम्राट के पास आना पड़ता था इस तरह सम्राट मनसबदारों के साथ सीधा सम्बन्ध बनाए रख सकता था। इस तरह जागीरदारी प्रथा का प्रमुख दोष समाप्त हो गया।

2. **भ्रष्टाचार को दूर करना** – कुछ इतिहासकारों के अनुसार मनसबदारी प्रथा ने सैनिक अधिकारियो का नैतिक स्तर अच्छा किया क्योंकि मनसबदार की मृत्यु होने के बाद उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। इस तरह वे लोग अधिक धन जोड़ने के लालच में प्रायः बेइमानी नहीं करते थे।

3. **जाति प्रथा एवं भेदभाव की भावना कमजोर होना** – मनसबदारों की सेना में विभिन्न जाति एवं धर्मों के लोग होते थे। इससे जाति प्रथा एवं हिन्दू मुस्लिम भेदभाव की भावना कमजोर हुई। इस तरह इस प्रथा ने देश मे भावात्मक

एकता का वातावरण तैयार करने में सहायता की।

4. **शक्तिशाली सेना** – मनसबदारी प्रथा में हर घुड़सवार को दो घोड़े रखना अनिवार्य था। जब तक यह प्रथा चलती रही मुगलों की सैनिक शक्ति कमजोर नहीं हुई क्योंकि एक घोड़े के मर जाने या घायल हो जाने पर दूसरे घोड़े का तुरन्त उपयोग किया जाता था।

5. **चुनाव का आधार योग्यता** – मनसबदारी प्रथा जागीरदारी प्रथा की तरह पैतृक नहीं थी। अकबर के काल में योग्यता के आधार पर ही लोगों को मनसब दिये जाते थे। या पुराने मनसबदारों की पदोन्नति की जाती थी।

मनसबदारी प्रथा के दोष

मनसबदारी प्रथा में गुणों के साथ–साथ कई दोष भी थे, पहला क्योंकि मनसबदारों की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी इसलिए वे प्रायः फिजूलखर्ची किया करते थे। दूसरा मनसबदार प्रायः सरकार को धोखा देने का प्रयत्न करते थे। वे घुडसवारों की निश्चित संख्या से बहुत कम घुड़सवार रखते थे परन्तु सरकार से पूरा वेतन लेते थे। तीसरा मनसबदारों के सैनिक युद्ध में दूसरे मनसबदार के सैनिकों के साथ मिलकर कार्य नहीं कर सकते थे। मनसबदार भी अपनी ईर्ष्या के कारण एक दूसरे से सहयोग नहीं करते थे। इससे मुगल सेना कमजोर पड़ गई। चौथे मनसबदार के पास काफी धन व सेना होती थी इसलिए मनसबदार कई बार अपनी सेना सहित विद्रोह कर देते थे।

Chapter - I Objective Type Questions

1. बाबर मध्य एशिया के किन दो शूरवीर यो(ाओं का वंशज था।
   उ0. अमीर तैमर और चंगेज खाँ
2. बाबर के पिता का नाम क्या था?
   उ0. उमर शेर मिर्जा।
3. पानीपत का पहला यु(कब लड़ा और इसमें कौन पराजित हुआ।
4. कन्वाह कब और किस–किस के बीच लड़ा गया।
   उ0. 1527 ई. बाबर और राणा सांगा के बीच।
5. बाबर की सेना के दो तोपचियों के नाम बताओ।
   उ0. उस्ताद अली और मुस्तफा
6. बाबर ने कौन सी पुस्तक की रचना की तथा वह किस भाषा में लिखी गई।
   उ0. "तुजके बाबरी" तुर्की भाषा में लिखी गई।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. बाबर ने भारत पर पहला अभियान किया।
   (क) 1504 ई. (ख) 1519 ई. (ग) 1521 ई. (घ) 1525 ई.
   उ0. (ख) 1519 ई।
2. बाबर के भारत पर आक्रमण के समय दिल्ली का शासक था?
   (क(इब्राहिम लोदी (ख) दौलत खाँ (ग) बहलोल लोधी (घ) सिकन्दर लोधी
   उ0. (क) इब्राहिम लोधी।
3. राणा सांगा इनमें से किस राज्य का शासक था?
   (क) मारवाड़ (ख) मेवाड़ (ग) मालवा (घ) रणथम्भौर
   उ0. (ख) मेवाड़।

4. पानीपत का प्रथम युद्ध कब हुआ।

(क) 1516 ई. (ख) 1556 ई. (ग) 1576 ई. (घ) 1526 ई.

उ0. (घ) 1526 ई.

अ और ब का मिलान कीजिए

	अ		ब
1.	बाबत का जन्म स्थान	1.	कृपण देव राम
2.	मेवाड़ का शासक	2.	तुजके बाबरी
3.	विजयनगर का शासक	3.	उस्ताद अली
4.	पानीपत के युद्ध में बाबर से पराजित	4.	राणा सांगा
5.	बाबर की आत्म कथा	5.	अन्दी जान
6.	बाबर का प्रसिद्ध तोपची	6.	इब्राहिम लोधी
7.	बाबर का भारत में अन्तिम युद्ध	7.	कनवाहा का युद्ध
8.	राजपूतों के विरूद्ध बाबर का प्रसिद्ध युद्ध	8.	घाघरा का युद्ध

Chapter 2 Objective Type Questions

1. शेरशाह सूरी का जन्म कब और कहां हुआ?

उ0. शेरशाह सूरी का जन्म 1472 ई. में होशियारपुर के निकट वजवाड़ा नामक गाँव में हुआ।

2. शासक बनने से पहले शेरशाह ने अपने पिता के कौन सी जागीरों का प्रबन्ध किया।

उ0. उसने अपने पिता को सासाराम तथा ख्वाजापुर टांडा की जागीरों का कई वर्षों तक कुशलापूर्व प्रबन्ध किया।

3. शेरशाह ने हुमायूँ को किन दो यु(ों में पराजित किया?

उ0. शेरशाह ने हुमायूँ को चौसा के यु(तथा कन्नौज के यु(में पराजित किया।

4. शेरशाह ने मारवाड़ के किस शासक को तथा कब हराया?

उ0. शेरशाह ने मारवाड़ के शासक मालदेव राठौर को 1544 ई. में हराया।

5. शेरशाह सूरी के चार प्रमुख मन्त्रलयों के नाम बताईये?

उ0. शेरशाह सूरी के चार प्रमुख मन्त्रलय ये थे – दीवाने–ए–वजारत, दीवान–ए–अर्ज, दीवान–ए–इंशा तथा दीवाने–ए–रसालत।

6. शेरशाह सूरी के शासन काल में प्रत्येक सरकार के दो अधिकारी कौन से होते थे?

उ0. शेरशाह सूरी के शासनकाल में प्रत्येक सरकार के दो प्रमुख अधिकारी मुख्य शिकदार तथा मुख्य मुन्सिफ होते थे।

7. शेरशह के समय में परगना के दो मुख्य अधिकारी कौन से होते थे?

उ0. शेरशाह के समय में परगना के दो मुख्य अधिकार शिकदर तथा मुन्सिफ थे।

8. शेरशाह सूरी के समय में भू–राजस्व सम्बन्धि कौन–कौन सी प्रणालियां प्रचलित थी?

उ0. शेरशाह सूरी के समय में भू–राजस्व सम्बन्धि बटाई, कनकूत तथा जब्ति नामक तीन प्रणालियां प्रचलित थी।

9. शेरशाह के समय में भू–राजस्व कितना लिया जाता था?

उ0. शेरशाह के समय में भू–राजस्व उपज का 1/3 भाग लिया जाता था।

10. शेरशाह की स्थाई सेना की संख्या क्या थी?

उ0. शेरशाह की स्थाई सेना में 1,50,000 घुडसवार, 25,000 पैदल सैनिक तथा 5,000 हाथी थे।

11. शेरशाह ने सैनिक प्रबन्ध में बेईमानी को रोकने के लिए दो कौन सी प्रथाएँ प्रचलित थी।

उ0. शेरशाह ने सैनिक प्रबन्ध में बेईमानी को रोकने के लिए घोड़ों को दागने तथा प्रत्येक सैनिक का पूरा हुलिया लिखने की प्रथाएं प्रचलित थी।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शेरशाह सूरी के बचपर का नाम क्या था?
   (क) शेर खाँ (ख) हसन (ग) फरीद (घ) कोई सा नहीं
   उ0. (ग) फरीद
2. शेरशाह सूरी का जन्म कब हुआ?
   (क) 1472 (ख) 1573 (ग) 1572 (घ) 1574
   उ0. (क) 1472
3. शेरशाह सूरी के पिता का नाम क्या था?
   (क) जमार खाँ (ख) जलाल खाँ (ग) इब्राहिम खाँ (घ) हसन खाँ
   उ0. (घ) हसन खाँ
4. सूरज गढ़ के यु(में शेर खाँ ने किसे पराजित किया?
   (क) हुमायूँ को (ख) जमाल खाँ को (ग) जलाल खाँ को (घ) मुहम्मद शाह को।
   उ0. (क) हुमायूँ को
5. शेरखाँ ने हुमायूँ को पराजित किया?
   (क) मालवा के युद्ध में (ख) चौसा के युद्ध में (ग) सूरज गढ़ के युद्ध में (घ) गुजरात में
   उ0. (ख) चौसा के युद्ध में।
6. कन्नौज का युद्ध लडा गया?
   (क) 1539 (ख) 1545 (ग) 1540 (घ) 1546
   उ0. (ग) 1540
7. शेरशाह की मृत्यु हुई?
   (क) गरवर जाति के साथों (ख) कालींजर के युद्ध में (ग) रायसीन के युद्ध में (घ) मालवा के युद्ध में
   उ0. (घ) सहसराम में।
8. शेरशाह का मकबरा कहाँ हैं?
   (क) कालिंजर में (ख) चौसा में (ग) रायसीन में (घ) सहसराम में
   उ0. (घ) सहसराम में।

Chapter 3

1. अकबर का जन्म कहाँ हुआ?

उ0. अमरकोट में।

2. अकबर का पूरा नाम?

उ0. जलालउद्दीन मुहम्मद अकबर।

3. अकबर का सिंहासनरोहण किस स्थान हुआ?

उ0. कलानोर।

4. बैरम खाँ का वध किसने किया?

उ0. मुबारक खाँ ने

5. गोण्वाना विजय के लिये अकबर को किस नारी से युद्ध करना पड़ा?

उ0. रानी दूर्गावती से।

6. किस राजपूत राजा ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की?

उ0. महाराणा प्रताप ने।

7. अकबर और राणा प्रताप में युद्ध कहां पर हुआ?

उ0. हल्दी घाटी में।

8. अकबर ने सबसे पहले किस राजपूत की लड़की से विवाह किया?

उ0. बिहारी मल।

9. अकबर ने जजिया कब हटाया?

उ0. 1564 ई. में।

10. दीने इलाही का संस्थापक कौन था?

उ0. अकबर।

11. अकबर के समय का सर्वश्रेष्ठ गायक कौन था?

उ0. तानसेन।

12. अकबर नामा का लेखक कौन था?

उ0. अबुल फजल।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. अकबर के समय दिल्ली का शासक था?

   (क) हेमू (ख) सिकन्दर सूरी (ग) बैरम खाँ (घ) मिर्जा हाकिम

उ0. (क) हेमू।

2. पानीपत का दूसरा युद्ध कब हुआ?

   (क) 1526 (ख) 1556 (ग) 1570 (घ) 1575

   उ0. (ख) 1556

3. अकबर ने ईबादत खाने का निर्माण करवाया?

   (क) 1575 (ख) 1582 (ग) 1579 (घ) 1564

   उ0. (ग) 1579

4. अकबर ने हिन्दुओं पर लगाया हुआ तीर्थ यात्रा कर कब हटाया?

   (क) 1582 (ख) 1579 (ग) 1575 (घ) 1563

   उ0. (घ) 1563

5. अकबर ने हिन्दुओं पर से जजिया कब हटाया?

   (क) 1579 (ख) 1563 (ग) 1564 (घ) 1575

   उ0. (ग) 1564

6. हल्दी घाटी का युद्ध लड़ा गया?

   (क) 1572 (ख) 1575 (ग) 1576 (घ) 1580

   उ0. (ग) 1576

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	अकबर का जन्म स्थान	1.	कलानौर
2.	पानीपत के दूसरे यु(में मुगलों से पराजित	2.	तीर्थ यात्र कर
3.	अकबर का संरक्षक	3.	अबुल फजल
4.	अकबर की ताजपोशी का स्थान	4.	अमरकोट
5.	अकबर से वैवाहिक संबंध स्थापित करने वाला प्रथम राजपूत राज्य	5.	इबादत खाना
6.	अकबर का आधिपत्य न मानने वाला राजपूत शासक	6.	राजा मान सिंह
7.	अकबर के दरबार का उदार विचारों वाला वि(ान	7.	हेमू
8.	1563 में अकबर द्वारा हिन्दुओं पर से हटाया गया कर	8.	बैरम खाँ
9.	1564 में अकबर द्वारा हिन्दुओं पर से हटाया गया कर	9.	आमेर
10.	अकबर के विभिन्न धार्मिक नेताओं से वाद विवाद	10.	दीन–ए–ईलाही।
11.	अकबर के दरबार में राजपूत सरदार जो 7000 का मनसबदार था।	11.	राणा प्रताप
12.	1582 में अकबर द्वारा स्थापित किया गया धर्म	12.	जजिया

उत्तर : 1 (4), 2 (7), 3(8), 4 (1), 5 (9), 6 (11), 7(3), 8 (2), 9(12), 10 (5), 11 (6), 12 (10)।

Chapter - 4

1. शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र कौन था?
   उ0. दारा।
2. शाहजहाँ के पुत्रों में उत्तराधिकारी संघर्ष में किसकी विजय हुई?
   उ0. औरंगजेब की।
3. औरंगजेब की माता का क्या नाम था?
   उ0. मुमताज महल।
4. झरोखा दर्शन की प्रथा को किस मुगल सम्राट ने बन्द किया?
   उ0. औरंगजेब
5. दुबारा जजिया किस मुगल सम्राट ने लगाया?
   उ0. औरंगजेब।
6. जाटों ने अपना स्वतंत्र राज्य कहाँ स्थापित किया?
   उ0. भरतपुर में।
7. गुरू तेग बहादुर की शहीदी किस मुगल सम्राट के समय में हुई?
   उ0. औरंगजेब।
8. मारवाड़ के राजकुमार अजित सिंह को मुगलों से किसने मुक्त करवाया?
   उ0. दुर्गादास ने।
9. औरंगजेब के समय लिखे गये प्रसिद्ध कानूनी ग्रथ का नाम बताओ?
   उ0. फतवा–ए–आलमगीरी।

10. औरंगजेब ने दक्षिण के दो किन मुस्लिम राज्यों को विजय किया?

उ0. बीजापुर और गोलकण्डा।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. औरंगजेब के दरबार में ईरानियों के किस त्योहार को मनाने की मनाही कर दी?

(क) ईद–उल–फितर (ख) ईद–उल–अजहा (ग) नौरोज (घ) मुहर्रम।

उ0. (ग) नौरोज।

2. औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजीया लगाने का फरमान जारी किया।

(क) 1664 (ख) 1684 (ग) 1679 (घ) 1669

उ0. (ग) 1679

3. औरंगजेब की धार्मिक सहनशीलता की नीति के कारण नारनौज में विद्रेह कर दिया?

(क) जाटों ने (ख) मराठों ने (ग) राजपूतों ने (घ) सतनामियों ने

उ0. (घ) सतनामियों ने

4. औरंगजेब के आदेश पर सिखों के नौवें गुरू तेग बहादुर को शहीद कर दिया गया?

(क) 1665 (ख) 1686 (ग) 1675 (घ) 1699

उ0. (ग) 1675

1. औरंगजेब के शासन काल में प्रान्तों की कुल संख्या थी।

(क) 12 (ख) 16 (ग) 18 (घ) 21

उ0. (घ) 21

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	औरंगजेब द्वारा पिछले मुगल सम्राटों के समय प्रचलित हिन्दू प्रथा की समाप्ति	1.	अजीत सिंह
2.	औरंगजेब द्वारा 1679 में हिन्दुओं पर पुनः लगाया गया कर	2.	औरंगजेब
3.	औरंगजेब द्वारा ईरानी त्योहार को मनाने की मनाही	3.	झरोखा दर्शन
4.	औरंगजेब के समय भरतपुर के आसपास जाटों का नेता	4.	21
5.	मारवाड़ की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाला राजपूत सरदार	5.	अजीत सिंह
6.	1707 में जोधपुर के सिंहासन पर स्वतंत्र राजपूत शासक	6.	गोकुला
7.	राजदरबार में संगीत पर प्रतिबंध लगाने वाला मुगल सम्राट	7.	नौरोज
8	राजपूतों के साथ मिलकर औरंगजेब से विद्रोह करने वाला राजकुमार	8.	जजीया
9.	औरंगजेब के साम्राज्य में प्रान्तों की कुल संख्या	9.	दुर्गादास

उत्तर : 1 (3), 2 (8), 3(7), 4-(6), 5 (1), 6 (9), 7(2), 8 (5), 9(5)

भाग-2

अध्याय-5

मुगलों के समय आर्थिक जीवन
(Economic Life in Mughals Period)

मुगल काल के आर्थिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता शासक वर्ग एवं जनसाधारण के जीवन में पाई जाने वाली घोर विषमता थी। प्रायः इन दोनों वर्गों के रहन–सहन, खान–पान, आवास जीवन की सुख सुविधाओं, वेशभूषा आदि में स्पष्ट आर्थिक विषमता प्रकट होती थी। जहाँ शासक वर्ग सम्राट व जमींदार बहुत ही शानौशोकत का जीवन व्यतीत करते थे। वहीं जनसाधारण किसानों, दस्तकारों तथा श्रमिकों का जीवन गरीबी से भरा हुआ था। दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि लोग बिना सरकारी हस्तक्षेप के कोई भी व्यवसाय चुन सकते थे। तीसरा उस समय अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी। चौथा उस समय के गाँव प्रायः आत्मनिर्भर थे। पाँचवां मुद्रा विनियम के साथ–साथ वस्तु विनियम भी बहुत लोकप्रिय था, गुलबदन बेगल के हुमायूँ नामा में लिखा है कि हिन्दुस्तान में वस्तुओं की कीमत बहुत कम थी, अकबर के जन्म स्थान आमरकोट में एक रू. में चार बकरियाँ खरीदी जा सकती थी। मुगल कालीन आर्थिक दशा एवं जीवन के बारे में विभिन्न एतिहासिक स्त्रोतों के साथ–साथ अनेक युरोपीय यात्रियों के विवरण भी हमें विस्तृत जानकारी देते हैं। इन्हीं के आधार पर मुगल कालीन आर्थिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

कृषि

मुगल काल में भारत एक कृषि प्रधान देश था तथा देश की अधिकांश जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि था। किसानों ने मुगलों द्वारा स्थापित शान्ति का पूरा लाभ उठाया, वे अधिक उत्पादन करने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति और समय लगा देते थे। खेती के लिए अधिक भूमि उपलब्ध होने के कारण जोत सीमा भी अधिक थी। भिन्न–भिन्न स्थानों में भिन्न–भिन्न चीजें पैदा होती थी। बंगाल और बिहार के बहुत से हिस्सों में ईख उगाई जाती थी। जिससे चीनी बनती थी। उत्तर प्रदेश के कई भागों में नील की खेती की जाती थी। पेललार्ट ने लिखा है कि यमुना की द्रोणी और मध्य भारत में कई स्थानों पर नील की खेती होती थीं भारत के कई भागों में रेशम व कपास की खेती की जाती थी। मुगल काल में तम्बाकु की खेती हिन्दुस्तान में शुरू की गई और वह बढ़ती ही गई, इनके अतिरिक्त गेहुँ, चावल, जो, चना, मटर, तिल, ज्वर, बाजरा, कपास इत्यादि की खेती विभिन्न भागों में की जाती थी। अन्य फलों में अंगुर, खजूर, अनार, केले, सन्तरे, अंजीर आदि उगाये जाते थे।

अकबर ने यद्यपि सिचाई को महत्त्वपूर्ण समझकर इस और विशेष ध्यान दिया। उसके प्रान्तीय सूबेदारों को आदेश दिया कि वे कुएँ और तालाबों का निर्माण करवाए। शाहजहाँ ने फिरोज तुगलक द्वारा निर्मित नहरों की मरम्मत करवाई। मुगल काल में किसानों को उसकी कृषि योग्य भूमि से तब तक वंचित नहीं किया जाता था, जब तक लगान देता रहता था। जहाँगीर ने तुजके–जहाँगीरी में लिखा है, कि उसने आदेश दिया था कि सरकारी कर्मचारी बलपूर्वक किसानों की भूमि लेकर अपने नाम न ज़ुताए।

उद्योग

विदेशी व्यापारियों के विवरणों से पता चलता है, प्रधान जल व स्थल मार्गों के पास अनेक नगर बसे हुए थे। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार में कम से कम एक प्रधान नगर होता था। मुगलों के शासन काल में नगरों की संख्या और समृद्धि में काफी उन्नति हुई।

इस कारण उद्योग व्यवसाय को कई प्रकार की सहायता मिली। इन शहरों में छोटे बडे पैमाने पर अनेक उद्योग धन्धे विकसित हुए जो इस प्रकार हैं –

कपड़ा उद्योग

भारत में उस समय कपड़ा बनाने का व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध था। भारत में उस समय सूती रेशमी व उनी कपड़े बनाए जाते थे। सूती उद्योग अनेक प्रान्तों एवं स्थानों में प्रगति पर था। इस उद्योग के लिए, बिहार, बंगाल, आगरा, जौनपुर, पटना, मालवा इत्यादि प्रसिद्ध थे। फ्राँसिस्कों और पेलसार्ट ने लिखा है कि बंगाल में सौनार गॉव और चाबास पुर की प्रायः सारी आबादी वस्त्र व्यवसाय में लगी थी। बंगाल के वस्त्र उत्पादन के बारे में बर्नियर लिखता है कि बंगाल में सूती तथा रेशमी कपड़ा इतना प्रचूर मात्रा में बनता है। उस लुबे को न केवल मुगल साम्राज्य का ही अपितु सारे पड़ोसी देशों और यूरोप का विशाल भण्डार समझना चाहिए। बंगाल के अतिरिक्त उत्तर प्रेदश में मऊ काशी और आगरा, पंजाब में लाहौर मुल्तान, गुजरात में अहमदाबाद, पाटन, बड़ोदा, भडोच और सूरत, खानदेश में बरहान पुर और दक्षिण में गोलकुण्डा सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। सूती वस्त्र के साथ–साथ रेशमी वस्त्र भी अनेक स्थानों पर बनाया जाता था। बंगाल इसका प्रमुख केन्द्र था। खम्भात का रेशम इस काल में बहुत प्रसिद्ध था। अकबर कालीन इतिहासकार अबुलफजल ने आईने अकबरी में 33 प्रकार के रेशम और 30 प्रकार के सूती वस्त्रों का उल्लेख किया है, जिसका निर्माण उस समय किया जाता था। उनी वस्त्र काश्मीर में बनाया जाता था। जहाँगीर ने उनी वस्त्र निर्माण के लिए एक कारखाना अमृतसर में स्थापित किया था। एडवर्ड टेरी के अनुसार "वस्त्र पर छपाई का कार्य इतना बढ़िया होता था। कि वह कभी धुल नहीं सकता था" अंग्रजों के सत्ता सम्भालने तक वस्त्र उद्योग निरन्तर प्रगति करता रहा। इसके निर्यात के कारण भारत बड़ी मात्रा में सौना चाँदी प्राप्त करता था।

धातु उद्योग

मुगल काल में लोहे, पीतल, चाँदी, काँसा, ताम्बा, टीन एवं विभिन्न मिश्रित धातुओं के अनेक उपकरण हथियार दैनिक इस्तेमाल की वस्तुएँ आदि बनाई जाती थी। अबुल फलज धातु कार्य करने वाले कारीगरों की प्रशंसा में लिखता है "शिल्पकार अपनी शिल्पगिरी के द्वारा विभिन्न धातुओं की इतनी सुन्दर वस्तुएँ बनाते थे कि उनका मुल्य धातु से दस गुणा अधिक हो जाता था।" आइने अकबरी के अनुसार लोहे और विभिन्न धातुओं के उपकरण और औजार बंगाल, पंजाब और गुजरात में बनाए जाते थे। बंगाल में लोहें की बन्दूक, तलवारें, छुरिया, कैंची, चाकु, प्याले आदि बनाए जाते थे।

सोमनाथ अपनी मजबूत और बढ़िया तलवारों के लिए विख्यात था। अनेक स्थानों पर धातु की बनी वस्तुओं पर खुदाई और नक्काशी का काम होता था। अकबर के काल में कई स्थानों पर चाँदी के बर्तन भी बनाए जाते थे।

पत्थर एवं ईट उद्योग

जिस समय बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना की उस समय यह उद्योग भारत में बहुत प्रगति पर था, बाबर ने तुजके बाबरी में लिखा है कि "वह केवल आगरा में वहाँ के संगतराशों से हर रोज 680 व्यक्तियों को शाही भवन में काम पर लगाता था। तथा सीकरी, ग्वालियर, धौतपुर, बियाना, आदि स्थानों पर शाही ईमारतों पर हर राजे 1491 संगतराश कार्य किया करते थे" हुमायूँ ने दीन पनाह का निर्माण करते हुए अनेक संग–तराशों पर पत्थर तथा ईटों के उद्योग से सम्बन्धित शिल्पकारों को काम दिया। अकबर के काल में जिन अनेक इमारतों का निर्माण हुआ, उनसे पता लगता है कि उसके काल में लाल पत्थर कि शिल्प कला जानने वाले लोगों को अधिक महत्त्व दिया गया। जहाँगीर के काल में पत्थर तथा ईटों का काम राज्य की ओर से ज्यादा नहीं हुआ लेकिन शाहजहाँ के काल में लाल पत्थर के साथ–साथ सफेद संगमरमर का प्रयोग बहुत ज्यादा हुआ।

कागज उद्योग

यद्यपि मुगलों के आने से पूर्व ही भारत में कागज उद्योग चल रहा था। लेकिन उनके काल में इस उद्योग ने विशेष प्रगति की। देश में चीड़ की लकड़ी से कागज बनाया जाता था। गया, काश्मीर, सियालकोट और शहजादा पुर इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे। शहजादा पुर का कागज सबसे बढ़िया होता था। और देश के विभिन्न हिस्सों में इसकी माँग हर समय रहती थी।

चमड़े का उद्योग

मुगल काल में यह उद्योग गाँव–गाँव और शहर–शहर फैला हुआ था। इस उद्योग में तथा कथित चमार जाति का एकाधिकार था। वे लोग चमड़े के जूते, जूतियां, किताबों की जिल्द, तलवार की मियानें, मशक चडस, चटाईया, विभिन्न जानवरों की खालों के वस्त्र आदि बनाते थे।

चीनी उद्योग

मुगल काल में गन्ने से गुड़, खांडसारी, शक्कर, चीनी, मिश्री आदि का निर्माण होता था। यह उद्योग उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल गुजरात आदि में केन्द्रित था। गन्ने को बार–बार साफ करके बढ़िया किस्म का गुड़, चीनी, और मिश्री बनाई जाती थी। यह उद्योग इस काल में बंगाल में सबसे ज्यादा प्रगति पर था। कहा जाता है कि उस काल में बंगाल में इतनी अधिक चीनी पैदा की जाती थी कि सारे भारत में आवश्कता पूरी करने के बाद बड़ी मात्रा में विदेशों को भी निर्यात की जाती थी।

अन्य उद्योग–धन्धे

मुगल काल में उपर्युक्त उद्योगों के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्योग धन्धे भी प्रगति पर थे। काँच का उद्योग, बरार, बिहार और फतेह पुर सीकरी में अधिक होता था। लकड़ी का उद्योग प्रायः गाँव–गाँव और शहर–शहर फैला था। बढ़ई लोग सुन्दर और मजबूत चारपाईयां, प्लंग, दरवाजे, खिड़कियाँ, फर्नीचर और लकड़ के खिलौने आदि बनाते थे। मुंग का काम मुख्यतः बंगाल और गुजरात में होता था। गुजरात के मुगों की माँग विदेशों में भी थी।

व्यापार

आन्तरिक व्यापार

मुगल काल में आन्तिरक एवं बाह्य दोनों प्रकार का व्यापार प्रगति पर था। देश में व्यापार के लिए अनेक सड़के तथा मार्ग थे। इन व्यापार मार्गों को सरकार द्वारा सुरक्षा दी जाती थी। बड़े–बड़े नगरों में बड़े–बड़े बाजार थे जहाँ आवश्यकता तथा विलास एवं श्रृंगार का सामान प्रचूर मात्रा में मिल जाता था। प्राचीन काल से चली आ रही व्यापारिक परम्पराओं के अनुसार वैश्य जाति के लोग ही इस काल में भी प्रमुख व्यापारी थे। वैश्यों के अतिरिक्त गुजरातियों एवं मारवाड़ियों के द्वारा भी व्यापार किया जाता था। राजस्थान के बन्जारे चलते फिरते बाजारों का काम करते थे। विदेशी मुसलमान, जिन्हें खुरासानी कह कर पुकारा जाता था देश के सभी भागों में व्यापार करते थे। कुछ लोग पैसा उधार लेने–देने का काम भी करते थे।

विदेशी व्यापार

मुगल काल में हिन्दूस्तान के विदेशी व्यापार में बहुत प्रगति हुई। मुगल काल में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध श्रीलंका, बर्मा, चीन के अतिरिक्त फारस, मध्य एशिया आदि अनेक देशों के साथ था। आयात की मुख्य वस्तुएँ सोना, कच्चा रेशम, घोड़ धातु हाथी दाँत, बहुमूल्य पत्थर जड़ी बुटी, घोड़ें इत्यादि थी। निर्यात की वस्तुएँ सूती कपड़ा, मसाले, नील, अफीम तथा अन्य दवाएँ होती थी।

उत्तर पश्चिम में निर्यात के लिए दो मुख्य स्थल मार्ग थे। एक था लाहौर से काबुल तथा दूसरा था मुल्तान से कन्धार। अन्य भागों में भी व्यापार के लिए कुछ स्थल मार्ग थे उन पर व्यापार सुरक्षित नहीं था। यातायात के साधन सीमित थे। व्यापार के लिए जल मार्ग लाभदायक था। प्रमुख बन्दरगाहों में लाहौरी बन्दर सिन्ध में, गुजरात में सूरत, बाम्बे भड़ोच, बेसीन, चोल, दाबुल, मालाबार तट पर, कोचीन और कालीकट पूर्वी तट पर सतगांव, चरगाव व सुनार गाँव के नाम उल्लेखनीय हैं। अकबर के शासन काल में अंग्रेज और डच व्यापारियों ने भी भारत के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार करना।

शुरू कर दिया था। भारत के व्यापारी भी यूरोप के व्यापारियों की तरह चतुर थे। वीरजी वोहरा ने अंग्रेज व्यापारियों की आदत पर माल दिलाया और व्यवहारिक रूप से सूरत के सम्पूर्ण व्यापार पर नियन्त्रण किया। उस समय उसे संसार का सबसे धनी व्यापारी समझा जाता था।

अध्याय-6

मुगल काल में समाज
(Society in Mughal Period)

इतिहासकार बी.ए. स्मिथ ने समकालीन मुस्लिम के बारे में ठीक ही लिखा है कि उन्होंने "राष्ट्रीय एवं सामाजिक क्रमिक विकास की अपेक्षा यथार्थ में राजाओं, दरबारों और विजयों का वर्णन करने तक ही अपने आप को सीमित रखा है" इसलिए उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों, सामान्य रूप से दिल्ली, आगरा और लाहौर का जीवन ज्यादा झलकता है। यह भी ठीक है इनमें सामाजिक जीवन के बारे में प्रयाप्त सामग्री नहीं है। परन्तु समकालीन विदेशी यात्रियों के विवरण तथा यूरोपिय कम्पनियों के दस्तावेजों तथा स्थानीय काव्य ग्रन्थों में बहुत–कुछ सामग्री मिलती है। जिससे हमें सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का पता चलता है। मुगलकालीन समाज को सामाजिक आर्थिक स्थिति के आधार पर तीन भागो या वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

उच्च वर्ग

इस वर्ग में मुगल सम्राट के अलावा प्रान्तीय प्रशासन या सूबेदार बड़े–बडे सामन्त, बड़े–बड़े उच्च उलेमा, बड़े जमींदार राजपूत सरदार, उच्च मनबसदारों के अतिरिक्त सेना के विभिन्न अधिकारी शामिल थे। इस वर्ग का जीवन स्तर बहुत ऊँचा था। मुगल सम्राट, शासक वर्ग, बड़े अधिकारी शानदार महल तथा विशाल भवनों में रहते थे। यह भवन प्रायः विशाल किले में बना होता था। हरम के अतिरिक्त उसी किले में बैठक खानें, स्नानगार, पुस्तकालय, जलाशय, मछली पकड़ने के तालाब, बाग–बगीचे इत्यादि होते थे। इन लोगों का जीवन बहुत विलासप्रिय था। उनके नौकर चाकरों तथा परिवार के सदस्यों पर बहुत सा धन खर्च होता था। ये बहुत सी विदेशी वस्तुएँ खरीदते थे, इसलिए बहुत सा धन भारत से बाहर चला जाता था। इनमें महंगी शराब पीने का शौक था। मुगल सम्राटों की तरह मुगल अमीर भी बहुत सी महिलाएँ और नर्तकियाँ रखते थे। इन्हें स्वादिष्ट पकवान बहुत अच्छे लगते थे। सर टामल रो लिखता है, नूरजहाँ के भाई आरिफ खाँ ने एक भोज किया इसमें तीस से भी अधिक पकवान थे। अधिकतर सामन्त भृष्ट थे, वे रिश्वत लेने व देने से नहीं हिचकिचाते थे। एक कानून के अनुसार किसी भी सामन्त की मृत्यु के पश्चात सम्राट उसकी सम्पत्ति को जब्त कर लेता था। इसका परिणाम यह हुआ कि ये सामन्त कुछ नहीं बचाते थे और सब कुछ खर्च कर देते थे, किसी अमीर का अपना धन दौलत देश से बाहर ले जाने की अनुमति भी नहीं थी। उस समय के अमीर बड़े ठाट–बाट से रहते थे, यूरोप के यात्री लिखते हैं कि जितने ठाट से भारत के कुछ अमीर रहते थे उतने ठाट से यूरोप के शासक भी नहीं रहते थे।

जहाँ तक उच्च वर्ग के स्वरूप का सम्बन्ध है, शासक वर्ग में शामिल उच्च सरदार तथा जमींदारो के पद पर मुगलों का एकाधिकार का चाहे सैद्धान्तिक तौर पर हर वर्ग, जाति एवं स्थान का व्यक्ति शासक वर्ग में शामिल हो सकता था लेकिन प्रायः व्यवहारिक तौर पर उच्च वर्ग एवं जातियों के विदेशी तथा भारतीयों को ही नियुक्त किया जाता था। अधिकतर मुगल सरदार तुरान, खुरासान, ईरान आदि क्षेत्रों से आये थे, बाबर ने अफगानिस्तान के लोगों को भी शामिल किया लेकिन उन्होंने मुगलों का सच्चे दिल से साथ नहीं दिया तथा मुगल तथा अफगान सरदारों में संघर्ष अकबर के काल तक चलता रहा। जहाँगीर से लेकर औरगजेब के काल तक अफगानों को भी शासक वर्ग में शामिल कर लिया गया। भारतीय मुसलमानों तथा हिन्दुओं को भी अकबर के काल से इस वर्ग में शामिल कर लिया गया। [illegible]

सतीश चन्द्र लिखते हैं कि मुगलों ने उनमें एक विशेष सांस्कृतिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया और प्रशासन में उच्च कुशलता और प्रयत्नों की परम्परा डाली। इसके कारण 150 वर्षों तक एकता की अच्छी सरकार कायम हो सकी। सत्तरवीं और अठारवीं सदी के आरम्भ में अमीरों पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए जिनके कारण अमीरों में गुटबन्दी आ गई और उससे मुगल साम्राज्य बिखर गया।

मध्यम वर्ग

मोरलेण्ड ने लिखा है कि मुगल काल में मध्यम वर्ग बहुत कम था, फिर भी विभिन्न स्त्रोतों के आधार पर कहा जा सकता है कि मुगल काल में इस वर्ग में लेखक, व्यापारियों, वैद्य, हकिमों, मध्यम स्तर के सरकारी कर्मचारी, धार्मिक नेता विद्वान, कलाकार, लर्राफ तथा निजि व्यवसाय करने वाले लोगों को शामिल किया जा सकता है। इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले व्यापारी लोगों की स्थिति बहुत अच्छी थी। इनमें से कुछ थोक व्यापारी होते थे, जो वोहरा या सेठ कहलाते थे। व्यापारी वर्ग के लोग बहुत ठाट–बाट से नहीं रहते थे तथा अपनी वास्तविक स्थिति छुपा कर रखते थे। मध्यम वर्ग के लोगों का जीवन स्तर अच्छा था क्योंकि ये उच्च के सम्पर्क में अधिक आता था। इस वर्ग के लोग रहन–सहन में उच्च वर्ग के लोगों की नकल करते थे। उच्च वर्ग के लोगों को खुश करके अपनी सुख सुविधा बढ़वाने की कामना करते थे। मध्यम वर्ग में शराब पीने का रिवाज बहुत था। साज श्रृंगार में भी उनकी बहुत रूची थी। वे रंग बिरंगे कपड़े पहनते थे। विवाहों और उत्सवों के समय काफी खर्च किया जाता था।

जन साधारण या निम्न वर्ग

मुगल समाज का बहु संख्यक वर्ग जन साधारण वर्ग था इस वर्ग में किसान, मजदूर, दस्तकार, छोटे व्यापारी, दुकानदार, निजि सेवक व दास थे। उनका जीवन कठिन था और वे अपनी आवश्यक चीजें खरीदने की क्षमता नहीं रखते थे। दुकानदारों के पास बाकी लोगों से अधिक धन था, दस्तकारों का जीवन भी कठिन था, क्योंकि उन्हें काम ढूंढने के लिए एक गाँव से दूसरे गाँव जाना पड़ता था।

किसानों की अवस्था शोचनीय थी, उनके पास पहनने के लिए वस्त्र नहीं थे, उनी वस्त्रों और जुतों कि तो वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उत्तर भारत में साधारण वर्ग के लोग इतने कम कपड़े पहनते थे कि मुगल सम्राट बाबर ने तुर्ज्क बाबरी में यहां तक कह दिया कि यहाँ किसान और निम्न वर्ग के लोग नग्न रहते थे। उसने पुरूषों के लंगोट तथा महिलाओं की साड़ियों का वर्णन किया है बाबर के बाद समय–समय पर अनेक विदेशी यात्री आए ओर उनके विवरणों से इस बात की पुष्टि होती है कि इस वर्ग के लोग गरीबी के कारण बहुत कम वस्त्र पहनते थे, शल्फफिच जो सोलहवी शताब्दी में भारत आया था कहता है कि "बनारस में पुरूष कमर में बन्धे एक कपड़े को छोड़कर नंगे रहते थे। दिलेत नामक एक यात्री ने लिखा है कि "भारत के श्रमिकों के पास सर्दी में शरीर को गर्म रखने के लिए गरम वस्त्र नहीं है।"

फ्रांसिस्को पेलसर्ट ने लिखा है "तीन वर्ग के लोग यद्यपि नाममात्र के लिए स्वतन्त्र थे फिर भी उनकी स्थिति ऐच्छिक दासता से भिन्न नहीं थी। वे थे मजदूर, चपरासी, नौकर और दुकानदार, मजदूरों की मजदूरी बहुत कम थी और उन पर सामन्तों और जमींदारों के जुल्म आये दिन होते रहते थे। कभी–कभी उनसे जबरदस्ती काम लिया जाता था और मजदूरी नाममात्र की दी जाती थी। उनका भोजन साधारण था, दिन में उन्हें एक बार भोजन दिया जाता था, वह भी खिचड़ी। साधारण समय में तो इस वर्ग के लोगों का गुजारा जैसे तैसे हो जाता था परन्तु अकाल के समय स्थिति बहुत भयंकर हो जाती थी। ऐसे भंयकर अकाल की हमें बहुत चर्चा मिलती है। जिनमें माँ बाप अपने बच्चों को बेच दिया करते थे। इस सम्बन्ध में बदायूनी लिखता है कि "मैंने स्वंय देखा था कि मनुष्य–मनुष्य को खा जाते थे, और भूख से तड़पते लोगों को देखना भी एक यन्त्रणा है।"

स्त्रियों की दशा

मुगल काल में स्त्रियों की दशा पहले से भी खराब हो गई। पर्दा प्रथा, बाल विवाह तथा सती प्रथा में वृद्धि हुई। हिन्दू

तथा मुसलमान दोनों उच्च वर्ग कि स्त्रियों में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। कई बार उच्च वर्ग के लोग स्त्री का पर्दा टूटने पर उसे तलाक दे देते थे। उदाहरण के लिए काबुल में गर्वनर अमीर खाँ ने अपनी पत्नी को इसी कारण छोड़ दिया था क्योंकि उसका पर्दा हाथी से जान बचाने के कारण हट गया था। धीरे–धीरे निम्न वर्ग की स्त्रियों में भी पर्दा प्रथा बढ़ने लगी थी। उच्च घरानों में कन्याओं का विवाह राजनीतिक सुविधा की दृष्टि से होता था, न कि उनकी मनोभावना को ध्यान में रखकर। उन्हें अपना जीवन उपेक्षा और अपमान के वातावरण में व्यतीत करना पड़ता था। कई बार अपने पति की मृत्यु के बाद उन्हें सती होना पड़ता था। आइने अकबरी ने लिखा है कि अकबर ने सती प्रथा को सुधारने के प्रयत्न किए परन्तु उसे विशेष सफलता न मिली, मुसलमानों में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी, जबकि हिन्दुओं मे एक पत्नि प्रथा थी। हिन्दुओं में लड़की का विवाह बहुत छोटी उम्र में कर दिया जाता था। इस बुराई को अकबर ने रोकने का प्रयत्न किया। मुस्लिम महिलाएँ विधवा होने पर विवाह कर सकती थी, महाराष्ट्र के गैर ब्राह्मणों तथा पंजाब के जाटों में विधवा विवाह प्रचलित था। साधारण तथा मध्यम वर्ग की स्त्रियों की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। केवल उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ही शिक्षा ग्रहण करती थी इसलिए अनेक उच्च वर्ग की महिलाओं ने शिक्षा के क्षेत्र में अद्‌भूत कार्य किया। उदाहरण के लिए हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा लिखा। मीराबाई नूरजहाँ तथा औरंगजेब की बेटी जेबुनिशा उच्च कोटी की कवित्रिया थी। साहित्य के साथ कुछ स्त्रियों के शासन प्रबन्ध तथा राजनैतिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें अकबर की मुख्य छाप माहम आनगर, चन्दल राजकुमारी रानी दुर्गावती, अहमदनगर की चाँद बीबी, जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ, मराठा नरेश राजाराम की विधवा ताराबाई प्रमुख हैं।

अध्याय-7

मुगल काल में चित्रकला तथा भवन निर्माण
(Art and Architecture under Mughal's)

भवन निर्माण कला

मुगल महान भवन निर्माणकर्ता थे। अनेक मुगल इमारते आधुनिक काल में ज्यों की त्यों खड़ी हैं फरगुर्सन का मत है कि मुगल निर्माण कला का विकास विदेश में हुआ। हावेल ने इस मत की आलोचना करते हुए कहा है कि भारत के महान भवन निर्माण कर्ताओं को कहीं बाहर से प्रेरणा नहीं मिली। मुगल शासक विदेशी न होकर भारतीय अधिक थे। इसके फलस्वरूप दोनों सभ्यताओं का मेल हुआ। सरजान मार्शल के अनुसार भारत की भवन निर्माण कला किसी एक शैली की बन्ध कर नहीं रही देश कि विशालता के कारण इसमें अन्तर आ जाना स्वाभाविक है। मुगल सम्राटों की व्यक्तिगत रूची पर भी बहुत कुछ निर्भर था।

बाबर

बाबर ने अपने अल्प शासनकाल में पानीपत की काबुली बाग की मस्जिद तथा सम्भल रूहेल खण्ड की जामा मस्जिद का निर्माण करवाया, जो कला की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है।

हुमायूँ

हुमायूँ का जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा फिर भी उसने कुछ इमारतें बनवाई इनमें फतेहाबाद की मस्जिद जो ईरानी शैली के रंगीन टायलों से जड़ी है। हुमायूँ का दिल्ली का महल दीनपनाह जल्दी में बनवाया गया था इसको देखने से पता चलता है कि कारीगरों ने इसकी दृढ़ता और सुन्दरता का बिल्कुल कोई ध्यान नहीं रखा।

अकबर

अकबर को इमारत बनाने का बड़ा शौक था उसकी सहिष्णुता उसके राज्य कला निर्माण शैली से ही झलकती है। हिन्दू शैली के अनुसार उसने आगरा तथा फतेहपुर सीकरी में अपने महल बनवाए। अकबर के काल की निम्नलिखित इमारतें प्रसिद्ध हैं –

1. **आगरे का लाल किला** – यह किला लाल पत्थर से बना हुआ है। इसका आकार बहुत विशाल है। इसके कई भव्य द्वार हैं। इसका निर्माण कार्य प्रधान कलाकार आसीम खाँ के नेतृत्व में हुआ, इसके महराबों को संगमरमर तथा पशु, पक्षी, फूल पत्तों से सुसज्जित किया गया है।
2. **जहाँगीरी महल** – अकबर ने अपने पुत्र सलीम के रहने के लिए इस महल का निर्माण लाल किले में किया इसमें मुख्यतः लाल पत्थर का प्रयोग किया गया तथा इसकी सजावट के लिए संगमरमर का प्रयोग किया गया। इसके निर्माण में हिन्दू शैली का प्रयोग अधिक हुआ। इसकी छत चपटी और गुलाईदार नहीं हैं।
3. **लाहौर का किला** – इसमें लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है, इसकी दीवारों को पशु पक्षी हाथियों के युद्ध शिकार सम्बन्धी दृश्य तथा पोलों खेल के नजारों से सजाया गया है।
4. **अजमेर का किला** – अकबर ने अजमेर में 1570 में एक साधारण किला बनवाया। इसकी दीवार दोहरी तथा मोटी थी, किले के मध्य में विशाल, आंगन के चारों और विशाल खम्बे हैं।
5. **शहर फतेहपुर सीकरी** – मुगलकालीन वास्तुकला में ताजमहल छोड़कर फतेहपुर सीकरी सर्वोत्तम कृति है। अकबर ने इस शहर की नींव 1569 में सलीम चिश्ती की याद में डाली और 12 वर्ष में बहुत सी ईमारतें बनाई गई। यह नगर

आगरा से 36 किलोमीटर की दूरी पर है। यह अकबर की नई राजधानी थी यह नगर सात मील के क्षेत्र मे फैला हुआ है, इसके नौ प्रवेश द्वार है, इसमें उसने अनेक इमारतें तथा बाग बगीचे बनवाए। फतेहपुर सीकरी की ईमारतों में हिन्दु और मुस्लिम कला दोनों का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

6. **दीवान–ए–आम** – फतेहपुर सीकरी में दिवान–ए–आम का निर्माण एक ऊँची कुषी पर किया गया। इसका आकार चकौर है। यह लाल पत्थर का बना हुआ है।

7. **दीन–ए–खास** – यह ईमारत आकार में लघु तथा लाल पत्थर की बनी हुई है। बाहर से यह ईमारत दो मंजिला दिखाई देती है। इसकी छत समतल है तथा खम्बे नुमा छतरी इसके चारों कोनों में है।

8. **जोधाबाई का महल** – फतेहपुर सीकरी में बनाए गए महलों में यह सबसे बड़ा है इसका आकार वर्गाकार है। यह 230 फीट लम्बा, 215 फीट चौड़ा तथा 15 फीट ऊँचा है। इस महल की ज्यादातर इमारतें समकोण तथा दो मंजीली है। इसमें हिन्दू स्थापत्य कला का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

9. **पंचमहल** – इस महल का निर्माण हवा खोरी के लिए किया गया इसकी पांच मंजिलें हैं इसकी पहली मजिल का भाग अन्य मंजिलों की अपेक्षा बडा है इसकी प्रत्येक मंजिल क्रमशः छोटी होती गई है। इसकी पांचवी मंजिल पर गुम्बद है।

10. **बीरबल का महल** – अकबर के प्रसिद्ध दरबारी महेशचन्द बीरबल के लिए इसका निर्माण फतेहपुर सीकरी में 1572 में किया गया। यह दो मंजिला है इसकी निचली मंज़िल में चार कमरे तथा दो डयोढ़ियां हैं और ऊपर की मंजिल में दो कमरे हैं।

11. **बुलन्द दरवाजा** – फतेहपुर सीकरी में एक सुन्दर ईमारत है जिसे अकबर ने अपनी गुजरात विजय के समारक के रूप में बनवाया। यह दरवाजा 150 फीट ऊँचा है। यह दरवाजा आधे गुम्बद की शैली में बना हुआ। गुम्बद का आधा भाग दरवाजे के बाहर वाले हिस्से के उपर है इसके पीछे छोटे–छोटे दरवाजे हैं। यह शैली ईरानी है।

12. **फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद** – इस शाही मस्जिद का निर्माण 1572 ई. में हुआ। इस मस्जिद के ऊपर तीन गुम्बद हैं, इस मस्जिद में इस्लामी शैली के साथ–साथ हिन्दु शैली का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

13. **शेख सलीम चिश्ती का मकबरा** – यह मकबरा प्रसिद्ध सूफी सन्त सलीम चिश्ती की याद में अकबर ने 1571 में बनवाया। यह मकबरा जामा मस्जिद के प्रांगण में बना हुआ है। इसके गुम्बद पर सजावट के लिए सफेद पलास्टर है। इसका फर्श रंगबिरंगा तथा जालियाँ अद्वितीय हैं।

जहाँगीर

जहाँगीर की अपने पिता की तरह ईमारते बनवाने में इतनी रूची नहीं थी। वास्तव में उसका निर्माण कला से अधिक चित्रकला में लगा था। जहाँगीर के काल में दो इमारतों का निर्माण हुआ –

1. **लाहौर में जहाँगीर का मकबरा** – यह मकबरा जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ ने पूरा करवाया था। इसके चारों और एक विशाल बाग है, यह रावी नदी के किनारे पर स्थित है इस मकबरें के चारों और ईंट की ऊँची चारदीवारी है।

2. **इतमाद–उद–दौला का मकबरा** – यह मकबरा आगरा में यमुना नदी के किनारे पर नूरजहॉ द्वारा 1626 ई. में अपने पिता की याद में बनवाया। यह संगमरमर का बना है। पार्नी ब्राउन के अनुसार यह मकबरा अकबर और शाहजहॉ के काल की शैलियों के मध्य एक कड़ी है।

शाहजहाँ

शाहजहाँ मुगल काल में सबसे महान भवन निर्माणकर्ता था। उसने एक के बाद एक अति सुन्दर ईमारतों का निर्माण करवाया। उसके काल की अधिकतर ईमारतें संगमरमर की बनी हैं। और उनकी दीवारों पर कीमती नक्काशी की गई है –

1. **लालकिला** – शाहजहाँ ने दिल्ली में जो किला बनवाया वह आजकल लाल किले के नाम से जाना जाता है, यह किला बहुत ही मजबूत दीवार से घिरा हुआ है, इसमें दो मुख्य दरवाजे पश्चिम तथा दक्षिण में है। इसके अन्दर अनेक ईमारतें हैं जो इस प्रकार हैं

(क) **दीवान–ए–खास** – इसका फर्श लाल संगमरमर का है जिस पर फूलों की सजावट का काम किया गया है। इस पर एक लेख खुदा हुआ है जिसमें इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

"गर फिरदौस बररूय जमीं अस्त,

हमी अस्तो, हमीं अस्तो, हमी अस्त"

;अर्थात् यदि पृथ्वी पर स्वर्ग कहीं है वह यहीं है यहीं है और यहीं हैद्ध

(ख) **दीवान–ए–आम** – यह पत्थर की ईमारत है और जहां सम्राट जनता की अपील सुनता था। इसका बाहरी भाग नौ महराबों द्वारा बना है, यह महराब दोहरे खम्बों पर टिके हैं।

(ग) **रंग महल** – यह दिवान–ए–खास के समीप स्थित है। यह शाहजहाँ का हरम था। इसके भीतरी भागों में मोती महल और हीरा महल बहुत ही सुन्दर हैं।

2. **दिल्ली की जामा मस्जिद** – दिल्ली के लाल किले के सामने ही एक मस्जिद का निर्माण किया गया। लाल पत्थर की बनी इस मस्जिद का निर्माण उठे हुए विशाल चबूतरे या प्लेटफार्म पर किया गया है इसमें तीन विशाल द्वार हैं, जिन तक पहुंचने के लिए मस्जिद के तीनों और सीढ़िया बनी हुई हैं।

3. **आगरा के किलें में बनावाई गई ईमारतें** – शाहजहाँ ने अकबर द्वारा बनाए गए अकबर के लाल किले में कुछ ईमारतों का निर्माण करवाया। इनमें तीन सुन्दर मस्जिदें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, ये हैं – नगीना, मस्जिद, जामा मस्जिद और मोती मस्जिद। नगीना मस्जिद आकार में बहुत छोटी परन्तु बहुत सुन्दर सफेद संगमरमर की बनी है। जामा मस्जिद का निर्माण जहांआरा की देखरेख में 1648 ई. में पूरा किया गया। इसके ऊपरी भाग में तीन बड़े गुम्बद चार सुन्दर मिनारें हैं जो इसकी सुन्दरता को बढ़ती हैं। मोती मस्जिद शाहजहाँ द्वारा आगरे के किले में बनवाई गई है। सभी ईमारतों में सबसे अधिक सुन्दर है।

4. **ताजमहल** – इस विश्व की सबसे सुन्दर ईमारत का निर्माण शाहजहाँ ने 1631 में शुरू करवाया था, 1653 में पूर्ण हुई। शाहजहाँ ने इसका निर्माण यमुना नदी के किनारे अपनी बेगम अर्जमंद बानों की याद में करवाया था। यह ईमारत सफेद संगमरमर से बनी है। इसकी दीवारों पर कीमती पत्थरों की सुन्दर नक्काशी की गई है। इस भवन की एक विशेषता यह है कि इसमें दो गुम्बदों का प्रयोग हैं, इसमें एक बड़े गुम्बद के अन्दर एक छोटा गुम्बद भी बना हुआ है इसकी एक अन्य विशेषत उसका विशाल गुम्बद और चबूतरे के किनारे पर खड़ी–चार मीनार है। पर्सी ब्राउन ने ताजमहल की सुन्दरता के बारे में कहा है, "यह स्मारक मुगल वास्तुकला को प्रगति के पूर्ण शिखर पर ले गया।"

औरंगजेब

पर्सी ब्राउन के अनुसार "औरंगजेब का काल मुगल वास्तुकला के पतन का काल कहा जाये तो अतिश्योक्ति नह होगी" औरंगजेब के काल में बहुत भवनों का निर्माण नहीं हुआ। फिर भी उसने दिल्ली के लालकिले में, मोती मस्जिद का निर्माण के अलावा लाहौर में बादशाही मस्जिद भी बनवाई।

मुगल काल में चित्रकला

मुगल सम्राट चित्रकला प्रेमी थे। अकबर के काल में इसकी उन्नति प्रारम्भ हुई और जहाँगीर के काल में यह चर्मोकर्ष पर पहुँच गई। इस युग की चित्रकला में भारतीय और ईरानी कला का सुन्दर एवं सुखद समन्वय है।

बाबर

बाबर कला का प्रेमी था। भारत में उसके शासन काल के साथ–साथ मुगल कला में भी प्रवेश किया। बाबर ईरान के प्रसिद्ध चित्रकार बेजशद का समकालीन था। बाबर ने अपनी आत्म कथा तुजुक–ए–बाबरी उसे एक महान चित्रकार बताया है बाबर के इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि उसने उस समय के चित्रकारों के चित्रों का अध्ययन बड़ी सुक्ष्मता से किया था।

हुमायूँ

बाबर के समान हुमायूँ भी चित्रकला का प्रेमी था। जब हुमायूँ ईरान के शाह के दरबार में पुनः भारत लौटा तो वह सैयद अली

और ख्वाजा अब्दुल समद नामक दो चित्रकारों को अपने साथ ले आया जो बेजहाद द्वारा स्थापित चित्रकार सम्प्रदाय के अनुयायी थे। हुमायूँ ने केवल चित्रकारों का संरक्षण ही नहीं किया बल्कि वह स्वयं भी चित्रकार था उसने अपने पुत्र अकबर को भी इस कला की शिक्षा दी।

अकबर

अकबर को चित्रकारी से अत्यन्त प्रेम था। उसके अनुसार चित्रकला ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करती है। उसने ईरानी कलाकारों को बुलाकर आश्रय प्रदान किया। उसके दरबार में जसवन्त और दसावन तथा अब्दुल सयद जैसे अनेक उच्च कोटी के चित्रकारों को अश्रय मिला था। उसने अपने महल में उत्तम और आकर्षक चित्र बनवाए। अकबर के काल में हिन्दू और मुसलमान दोनों चित्रकार थे। उसके 17 अग्रणी चित्रकारों में से 13 हिन्दू थे। अकबर ने अब्दुल सैयद के नेतृत्व में चित्रकारी का एक अलग विभाग खोल दिया। उसके नेतृत्व में अनेक चित्रकारों ने विभिन्न पुस्तकों, महल की दीवारों, विभिन्न वस्तुओं और कागज पर चित्र बनाए। उसके काल में पुस्तकों को चित्रित करने की पुरानी परम्परा को जारी रखा गया। उसने हम्जा नामा, पंचतन्त्र, महाभारत, अकबर नामा, बाबर नामा आदि पुसतकों को चित्रित करवाया। अकबर के काल में भित्ति चित्र नामक शैली पहली बार मुगल काल में विकसित हुई। उसके काल में फतेहपुर सीकरी में विभिन्न महलों की दीवारों और छतों पर पशु, पक्षी वृक्ष और मानव आकृतियाँ बनाई गई। कहा जाता है कि वह हर सप्ताह चित्रकारों के काम का निरीक्षण करता था और उन्हें उचित ईनाम देता था।

जहाँगीर

चित्रकला की दृष्टि में जहाँगीर का काल सर्वश्रेष्ठ था। पर्सी ब्राउन ने जहाँगीर को मुगल चित्रकला की आत्मा कहा है। मुगल सम्राट अकबर ने चित्रकला की जिस शैली की आधार शिला रखी वह उसके पुत्र जहाँगीर के काल में प्रोढता तो प्राप्त हुई।

जहाँगीर के काल में हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों चित्रकार मौजूद थे। मुस्लिम चित्रकारों में आगा रजा तथा उसका पुत्र अब्दुल हसन, समरकन्द के मुहम्मद नासीर, मुहम्मद मुराद तथा उस्ताद मनातुर अधिक प्रसिद्ध थे। विभिन्न चित्रकारों ने विभिन्न विषयों से सम्बन्धित चित्र बनाये। शिकार युद्ध और दरबारी जीवन से सम्बन्धित दृश्यों को चित्रित करने की कला मे जहाँगीर के काल में विशष प्रगति हुई। इस क्षेत्र में मनँसुर का नाम उल्लेखनीय है। इसकाल में चित्रकारों ने चित्रों को जिस प्राकृतिक पृष्ठ भूमि में बनाया वह पृष्ठ भूमि भी वास्तविकता पर आधारित है। चित्रकारों ने जिन रंगों का प्रयोग चित्रों को बनाने में किया उसका चुनाव बड़े ध्यान के साथ किया गया है। और उसका उपयोग सुन्दर ढंग से किया है। वास्तव में पर्सी ब्राउन ने ठीक ही कहा है। "जहाँगीर के देहावसन के साथ ही मुगल चित्रकला की आत्मा विलीन हो गई।"

शाहजहाँ

शाहजहाँ ने चित्रकला को संरक्षण तो दिया लेकिन प्रोत्साहन नहीं। वस्तुतः चित्रकला की अपेक्षा वास्तुकला में वह अधिक रूची रखता था। उसके दरबार में मुहम्मद फकीर, मीर हासिम, अनूप और चिन्तमणी आदि प्रसिद्ध चित्रकार थे। इस काल में मुख्यतः दरबार, शाही महलों, सामन्ती जीवन का ही चित्रण किया गया। शाहजहाँ के काल के चित्र उतने प्रभावशाली नहीं हैं, जितने अकबर औ जहाँगीर कालीन। उसके काल में चित्रकारों की संख्या घट गई और अनेक चित्रकार सामन्तो के आश्रय में चले गये। पर्सी ब्राउन के अनुसार शाहजहाँ के काल में मुगल चित्र शैली की अवनति और पतन के लक्षण दिखाई देने लगे।

औरंगजेब

औरंगजेब धर्मान्ध और रूढ़ीवादी था। उसे चित्रकला में बिल्कुल रूची नहीं थी। इसलिए मुगल दरबार के चित्रकार देश मे दूरन्दूर तक बिखर गये। कहा जाता है कि उसने बीजापुर और गोलकुण्डा मे महलों की दीवारों पर बने चित्रों पर सफेदी करवा दी। मनूची के विवरण के आधार पर, कहा जाता है कि उसकी आज्ञा से सिकन्दरा में अकबर के मकबरे की दीवारों पर भी सफेदी कर दी गई औरंगजेब की चित्रकला विरोधी नीतियों के कारण प्रान्तों में राजपूत चित्र शैली और कांगड़ा चित्र शैली को प्रोत्साहन मिला।

अध्याय-8

अकबर की धार्मिक नीति
(Religious Policy of Akbar)

भारत के मुसलमान शासकों में अकबर सबसे अधिक उदार सम्राट था। उसने अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति सहानुभूति तथा मित्रता की नीति को अपनाया। आरम्भ में वह भी अन्य शासकों की भाँति कट्टर सुन्नी मुसलमान था। परन्तु धीरे–धीरे उसके विचारों में परिवर्तन आया और उसने अन्य धर्मों के प्रति प्रेम तथा सहनशीलता के व्यवहार को अपना लिया। केवल यही नहीं वह इससे भी आगे बढ़ गया, धार्मिक मतभेदों के कारण प्रतिदिन होने वाले झगड़ों को समाप्त करने के लिए उसने सारे धर्मों के मुख्य सिद्धान्तों को इकट्ठा करके एक नया मत दीने–इलाही चलाने के प्रयत्न किया। इस सब के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ जिम्मेवार थी –

1. जिस युग में अकबर पैदा हुआ वह वास्तव में उदारता तथा नव जागरण का युग था। भक्ति आन्दोलन तथा सुफी आन्दोलन के सन्त पहले ही धार्मिक सहनशीलता पर काफी जोर डाल रहे थे।
2. अकबर के सहनशील होने में कुछ सम्बन्धियों तथा मित्रों का भी बहुत बड़ा हाथ है। अकबर की माता हमीदा बानु बेगम, उसका शिक्षक अब्दुल लतीफ, उसका संरक्षक बैरम खाँ सब शिया थे। इन सब का अकबर के जीवन पर गहरा प्रभाव था। इनके विचारों के कारण अकबर के विचारों में परिवर्तन आ गया।
3. भारत की राजनैतिक स्थिति ने भी अकबर को स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति होने के लिए विवश किया। भारत में गैर मुसलमान बहुत संख्या में थे और जब तक अकबर को उनका विश्वास प्राप्त नहीं होता वह अपने शासन की नींव को दृढत्र नहीं बना सकता था।
4. अकबर की राजपूत पत्नियों ने भी अपने पति के धार्मिक विचारों पर गहरा प्रभाव डाला, अपनी इन पत्नियों द्वारा अकबर हिन्दू धर्म की रीतियों से परिचित एवं प्रभावति हुआ। धीरे–धीरे उसने शाही महल के बाहर भी हिन्दूओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।
5. अकबर धर्म की सत्यता जानना चाहता था। उसने इसके लिए कई प्रयोग किए, इसी उदेश्य से उसने सब धार्मिक नेताओं को बुलाकर फतेहपुर सीकरी में धर्म के विषयों पर वाद–विवाद करवाया। अन्त में वह इस परिणाम पर पहुँचा कि सब धर्मों के मौलिक सिद्धान्त एक जैसे हैं इस कारण भी उसने धार्मिक सहनशीलता की नीति का अनुसरण किया

अकबर के धार्मिक विचारों का विकास

1560 ई. में बैरम खाँ के पतन के पश्चात् अकबर ने राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले ली। पहले वर्ष वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान की तरह कार्य करता रहा। लेकिन 1562 ई. से उसके धार्मिक विचारों में परिवर्तन दिखाई देने लगा। 1562 ई. में ही उसने अम्बर की राजकुमारी से विवाह किया। 1563 ई. में अकबर ने हिन्दूओं पर लगा तीर्थयात्रा कर भी हटा लिया, अगले ही वर्ष अर्थात् 1564 ई. में उसने हिन्दुओं पर लगा जजिया कर भी हटा लिया। उसने हिन्दुओं को ऊँचे–ऊँचे पद दिए तथा एक फरमान जारी कर कैदियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाने पर रोक लगा दी।

इबादत खाना की स्थापना

1575 में अकबर ने फतेहपुर सीकरी में एक भवन बनवाया जिसे इबादत खाना यानि प्रार्थना गृह का नाम दिया गया। आरम्भ में यहाँ पर केवल मुस्लिम धर्म के नेताओं को ही वाद विवाद के लिए बुलाया गया और जब इस्लाम के मौलिक सिद्धान्तों की चर्चा हुई तो शेख अब्दुल नबी और मखदुद–उल–मुल्ख में झगड़ा हो गया और एक दूसरे को काफिर कहने लगे। इसके बाद वहाँ अन्य कई धर्मों के विद्वानों को बुलाया गया। अकबर ने उनके साथ धार्मिक विषयों पर चर्चा की। उसने इन धार्मिक वाद विवादों में भाग लेकर जान लिया कि सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त लगभग एक जैसे हैं।

फतेहपुर सीकरी में स्वयं खुतबा पढ़ना

अकबर ने 22 जून 1579 ई. को फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद के बड़े ईमाम को हटाकर स्वयं खुतबा पढ़ा, जिसकी रचना फैजी ने की थी। वैसे भारत के बाहर इस्लामी देशों के शासकों के लिए खुतबा पढ़ना कोई नई बात नहीं थी, लेकिन यहाँ रूढ़ीवादी वर्गों ने इसका विरोध किया। अनेक धर्मान्ध काजियों ने उसे काफिर तक कह दिया। और उसके विरूद्ध लोगों को भड़काने का प्रयास किया। लेकिन अकबर ने इसकी कोई प्रवाह नहीं की।

मजहर जारी करना

1579 में ही अकबर ने उलेमाओं के इस्लामी विधि या कानून कि अन्तिम या सही व्याख्या करने के अधिकार को स्वयं ग्रहण कर लिया। इसके लिए उसने एक घोषणा पत्र तैयार करवाया जिसे मजहर कहते हैं इस मजहर को अनेक बड़े–बड़े उलेमाओं ने अपने हस्ताक्षर सहित अकबर को भेंट किया था। सच्चाई यह है कि उसने मुल्लाओं से निपटने के लिए मजहर की घोषण की जिसके अनुसार कुरान की अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

नये धर्म की स्थापना

इबादत खाने में अलग–अलग धर्मों के नेताओं के सम्पर्क में आने के बाद अकबर को यह विश्वास हो गया कि सभी धर्मों में कई अच्छी बाते हैं, लेकिन वे धर्मान्ध नेताओं के आपस में लड़ाई झगड़े और विरोध के कारण हमारे सामने पूरी तरह नहीं आयी। इसलिए उसने सभी धर्मों के अच्छे सिद्धान्तों को इकट्ठा करके 1582 में एक नये धर्म को चलाया। तत्कालीन इतिहासकार अबुल फजल और बदापूनी इस नये धर्म के लिए तोहीब–ए–इलाही शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है 'देवी एकेश्वरवाद'। साधारणतया इसे दीने–इलाही के नाम से जाना जाता है।

दीन–ए–इलाही के मुख्य सिद्धान्त

इस धर्म के अनुयायी निम्न सिद्धान्तों में विश्वास रखते थे –

1. ईश्वर एक है और अकबर उसका पैगम्बर अथवा प्रतिनिधि है।
2. इस धर्म के मानने वाले जब कभी एक दूसरे से मिलते तो पहला व्यक्ति 'अल्लाह–उ–अकबर कहता तो दूसरा जल्ले जल्लाहू कहकर उसका उत्तर देता।
3. इस मार्ग में दीक्षित होने वाला नया व्यक्ति इतवार के दिन सम्राट के कदमों पर सिर रखता था और सम्राट उसे उठा कर मन्त्र देता था तथा वह व्यक्ति इस मन्त्र को बार–बार दोहराता था।
4. जहाँ तक हो इस धर्म का व्यक्ति माँस खाने से दूर रहता था।
5. प्रत्येक सदस्य को अपने जन्मदिन पर एक भोज देना पड़ता था।
6. इस मत को मानने वाले सूर्य की उपासना करते थे। तथा अग्नि को पवित्र समझते थे।
7. इस धर्म को मानने वालों की दीक्षा के अतिरिक्त किसी आडम्बर या पूजा स्थल या किसी विशेष पवित्र पुस्तक का सम्मान करने का आदेश नहीं था।
8. प्रत्येक सदस्य अपने आचरण को ऊँचा रखने का संकल्प करता था।
9. इस धर्म के अनुयायी सभी धर्मों का समान आदर करते थे।

10. इस मत के अनुयायी बाल विवाह और बूढ़ी स्त्रियों के विवाह के विरोधी थे।

दीन–ए–इलाही का प्रचार

इस धर्म के मानने वालों की संख्या बहुत ही कम थी। केवल 18 बड़े एंव प्रभावशाली व्यक्तियों ने ही इस मार्ग को ग्रहण किया। जिनमें एक हिन्दू बीरबल भी था। अकबर ने अपना यह धार्मिक मत बलपूर्वक न ही लादा और उसके बड़े–बड़े सरदारों ने इसमें शामिल होने से साफ इन्कार कर दिया।

दीन–ए–इलाही की आलोचना

दीन–ए–इलाही की भूमिका और अकबर के इस नये धर्म के चलाने के प्रयत्न को लेकर इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। इतिहासकार वी ए स्मिथ ने तो यहाँ तक कह दिया है "दीन–ए–इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं अपितु उसकी मुर्खता का प्रतीक है। "डा. स्मिथ का यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि अकबर इस मत को चलाकर स्वयं पैगम्बर नहीं बनना चाहता था। प्रो. एस.आर. शर्मा का कथन है "अकबर का इस मत को चलाने का उद्देश्य राजनैतिक था न कि धार्मिक", लेकिन प्रो. शर्मा का यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता। इसके दो तर्क दिए जा सकते हैं प्रथम इस धर्म को अपनाने वालों की संख्या बहुत कम थी और उनमें से बहुत से अकबर के अपने कृपा पात्र थे। दूसरा जब अकबर ने 1582 में इसकी नींव रखी वह पूरी तरह अपने साम्राज्य को सुदृढ़ कर चुका था। इतिहासकार बदायूंनी, इस मत को चलाने का कारण अयोग्य चापलूस और विधमियों द्वारा अकबर का दिमाग खराब करना बताया है। इतिहासकार अबुल फजल ने अकबर के इस प्रयत्न की प्रशंसा करते हुए कहा, "शासक को अपने लोगों का अध्यात्मिक मार्ग दर्शन करना चाहिए और अकबर में यह योग्यता थी।" वास्तव में अकबर के इस धर्म को चलाने के पीछे एक सच्चा राष्ट्रीय शासक बनना तथा एक मजबूत राष्ट्र की नींव रखना था। उसने इस धर्म को चलाकर देश में सांस्कृतिक एकता और मानवता की विचारधाराओं को किसी सीमा तक प्रोत्साहन अवश्य दिया।

औरंगजेब की धार्मिक नीति

औरंगजेब स्वयं एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, परन्तु उसने भूल तब की जब अन्य सभी धर्मों को बुरा समझना शुरू कर दिया। वह अकबर द्वारा निर्धारित की हुई उदार और सहनशीलता की नीति को भूल गया और राजनीति में भी उसने धार्मिक विचारों को प्रमुख स्थान दिया। सिंहासन पर बैठते ही उसने सारी शक्ति इस्लाम धर्म के प्रचार में लगा दी और भारत को हर प्रकार से इस इस्लामी देश बनाने का प्रयत्न किया। उसने कुरान के नियमों को सामने रखते हुए उन सब प्रथाओं को बन्द कर दिया जो उसके अनुकूल नहीं थी। सारे देश में नाच गानों आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। दरबार में भी संगीत की मनाही कर दी गई और दरबारी गायकों को चले जाने का हुक्म दिया। उसने चित्रकला पर भी रोक लगा दी क्योंकि इस्लाम धर्म इसकी अनुमति नहीं देता। उसने सिक्कों पर से कलमा हटा लेने का आदेश दिया। ताकि किसी गैर मुस्लिम का हाथ लगने से उनका निरादर न हो। स्वयं उसने झरोखा दर्शन देने की रस्म को बन्द कर दिया। क्योंकि कुरान इसकी अनुमति नहीं देता।

परन्तु यहां तक औरंगजेब कुछ हद तक ठीक था। वह इससे आगे बढ़ गया और उसने राजनैतिक मामलों में भी धार्मिक उद्देश्यों को ठोसने का प्रयत्न किया। उसने गैर मुसलमानों विशेषकर हिन्दूओं के ऊपर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये।

1. सर्वप्रथम उसने हिन्दूओं को नये मन्दिर बनाने की अनुमति नहीं दी। और साथ ही उन्हें पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने से रोक दिया।
2. उसने हिन्दुओं के प्रसिद्ध मन्दिरों जैसे बनारस का मन्दिर, सोमनाथ का मन्दिर, मथुरा में केशवराय का मन्दिर आदि को तुड़वा दिया। उसने प्रान्तीय गर्वनरों को भी राज्य आदेश दिया कि वे अधिक से अधिक मन्दिरों को तोड़े।
3. धार्मिक अनुदान के रूप में हिन्दूओं को मुगल सम्राटों द्वारा जो भूमि या मदद–ए–मास मिली हुई थी, 1674 के एक आदेश द्वारा सब छीन ली गई।
4. 1679 में हिन्दुओं पर पुनः जजीया तथा तीर्थयात्रा कर लगा दिए गए।
5. उसने मुसलमानों पर से चुंगी तथा कई अन्य कर हटा लिए परन्तु हिन्दुओं पर इनकी दर दोगुनी कर दी गई और उन्हें बड़ी कठोरता से चुंगी इकट्ठा किया गया।

6. बहुत से हिन्दू पदाधिकारी जो ऊंचे पदों पर नियुक्त थे, उनको पदों से हटा दिया गया। 1671 ई. में औरंगजेब ने आदेश जारी किया कि राजस्व विभाग से सभी हिन्दुओं को निकाल दिया जाये परन्तु बाद में उसे अपना यह आदेश वापस लेना पड़ा क्योंकि हिन्दू दीवानों और आमिलों के बिना यह विभाग चलाया जाना मुश्किल हो गया।

7. हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए औरंगजेब ने उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। उन्हें धर्म बदलने पर धन तथा उंचे पद दिए जाने लगे।

8. हिन्दुओं को जो समानता अकबर ने प्रदान की थी उसे छीन लिया गया। राजपूतों को छोड़कर अब वे ना तो अच्छे कपड़े पहन सकते थे, उनके लिए घोड़े हाथी की सवारी तथा तलवार लेकर चलने की मनाही कर दी गई। इस प्रकार उसने हिन्दुओं को अपना जानी दुश्मन बनाकर मुगल साम्राज्य की कब्र खोदने का काम किया।

औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणाम

औरंगजेब की इस धार्मिक असहनशीलता का परिणाम न केवल उसके लिए घातक सिद्ध हुआ बल्कि मुगल साम्राजय के लिए भी अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ। देश के अनेक भागों में विद्रोह होने लगे तथा राज्य की आर्थिक अवस्था स्थिल होने लगी। शासन व्यवस्था दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई और मुगल साम्राज्य का पतन बहुत निकट आ गया।

1. **जाटों का विद्रोह** – मथुरा और उसके आस–पास के क्षेत्र में जाट लोग रहा करते थे, जो बहुत वीर और युद्ध प्रिय लोग थे। 1669 ई. में औरंगजेब की धार्मिक नीति से तंग आकर विद्रोह कर दिया और मुगल फौजदार अब्दुल नबी की हत्या कर दी। मुगल सेना ने इस विद्रोह को दबा दिया और गोकुल की हत्या कर दी, परन्तु औरंगजेब लोगों की भावनाओं को न दबा सका। जाटों ने पहले तो राजा राम और बबाद में चुड़ामल के नेतृत्व में अपना संघर्ष जारी रखा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद वे और भी शक्तिशाली हो गए और मुगल साम्राज्य को पतन की ओर ले जाने में उन्होंने बड़ा काम किया।

2. **सतनामियों का विद्रोह** – सतनामी शान्ति प्रिय हिन्दू साधुओं का एक दल था जो वर्तमान हरियाणा में नारनौल के आस–पास रहते थे और कृषि तथा व्यापार करके अपना निर्वाह किया करते थे। 1672 ई. में जब एक शाही प्यादे ने एक सतनामी से दुर्व्यवहार किया और उसका सिर फौड़ दिया तो उन्होंने विद्रोह कर दिया, उन्होंने शाही सेना को खूब हानि पहुँचाई परन्तु अन्त में उनकी हार हुई। इस घटना से लोगों के मन में मुगल साम्राज्य के प्रति घृणा बढ़ गई।

3. **सिखों का विद्रोह** – औरंगजेब की असहनशीलता की नीति ने पंजाब के सिखों को भी उसके विरूद्ध कर दिया। हिन्दूओं पर दिन प्रतिदिन बढ़ते अत्याचारों को देखकर नवी पादशाही के गुरू तेग बहादुर ने उनकी रक्षा का कार्य अपने हाथ में लिया और परिणाम स्वरूप उन्हें 1675 ई. में दिल्ली में अपना शीश बलिदान कर दिया। इस समाचार को पाकर सारे पंजाब में विद्रोह की भावना भड़क उठी। दसवें गुरू गोविन्द सिंह जी ने सिखों को एक सैनिक वर्ग में बदल दिया और मुगलों का विरोध जारी रखा। सिखों का यह विद्रोह मुगल साम्राज्य के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ।

4. **राजपूतों का विद्रोह** – अकबर ने राजपूतों के साथ मित्रता करके अपनी बुद्धिमत्ता का सबूत दिया और भारत वर्ष में मुगल वंश की नींव को मजबूत किया। परन्तु औरंगजेब ने अपनी धार्मिक नीति के कारण राजपूतों को अपना घोर शत्रु बना लिया। मारवाड़ के महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात उसकी दो रानियों तथा उसके पुत्र अजित सिंह को जबरदस्ती पकड़ने का प्रयत्न करके औरंगजेब ने राजपूतों को अपना दुश्मन बना लिया, परिणामस्वरूप मारवाड़ और मेवाड़ के साथ 1679 में उसे युद्ध लड़ने पड़े और बहुत सी शक्ति व साधन व्यर्थ खोने पड़े।

5. **मराठों का विद्रोह** – औरंगजेब की धार्मिक नीति से मराठे भी उसके घोर शत्रु बन गये, उन्होंने मुगलों के धन तथा शक्ति को बरबाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मराठा सरदार शिवाजी को 1616 ई. में औरंगजेब अपने पक्ष में कर सकता था। जब वह मुगल दरबार में पेश हुआ, परन्तु अपनी धर्मान्धता तथा कट्टरपन के कारण वह शिवाजी को उचित स्थान तथा आदर न दे सका। शिवाजी का निरादर करना उसे बहुत महंगा पड़ा क्योकि मराठे पहले तो शिवाजी और उसकी मृत्यु 1680 ई. के पश्चात् राजाराम तथा उसकी सुयोग्य पत्नी ताराबाई के अधीन मुगलों का

विरोध करते रहे और उन्होंने औरंगजेब को उलझाए रखा।

6. **बुन्देलों का विद्रोह** – बुन्देलखण्ड तथा मालवा के हिन्दुओं के अपने पवित्र मन्दिरों की रक्षा करने तथा मुगल अत्याचारों का विरोध करने का निश्चय किया। बुन्देलों ने छत्रपाल के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। स्थानीय मुगल अधिकारी छत्रपाल की शक्ति को रोकने में असफल रहे। छत्रपाल के कालिजंट के दूर्ग पर अधिकार कर लिया और मालवा के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने लगा। औरंगजेब दक्षिण के युद्धों में व्यस्त होने के कारण छत्रपाल की शक्ति का दमन करने में असमर्थ था। अतः विवश होकर उसने 1705 ई. में छत्रपाल को कुछ प्रदेशों का स्वामी मान लिया और उसे मुगल सेवा में 4000 का मनसबदार बना दिया।

आर्थिक अवस्था बिगड़ जाना

औरंगजेब की धार्मिक नीति केवल विद्रोहों के लिए ही जिम्मेदार नहीं थी वरन् उसके कई अन्य विनाशकारी परिणाम निकले। इन विद्रोहों को दबाने में उसकी असीम धन राशि खर्च हो गई। और परिणामस्वरूप खजाना खाली हो गया, जिससे मुगल साम्राज्य का पतन जल्दी हो गया।

शासन प्रबन्ध में अकुशलता

औरंगजेब ने सरकारी नौकरों, मनसबदारों और दीवानों की नियुक्ति में योग्यता की बजाए धर्म को सामने रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि अयोग्य लालची और विलासी लोगों को सरकारी पदों पर बहुत अधिकता हो गई और चारों ओर अशान्ति और अव्यवस्था का बोल बाला हो गया।

भक्ति आन्दोलन

मध्यकालीन भारत में एक सुधार आन्दोलन चला जिसे भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। भक्ति आन्दोलन के प्रचारक होते थे जिनके विचार कई प्रकार से समान थे। उनका किसी विशेष सम्प्रदाय से लगाव न था। उन्होंने किसी विशेष प्रकार के रीति रिवाजों को न अपनाया। उनमें से अधिकांश ने मूर्ति पुजा का विरोध किया। वे केवल एक ईश्वर को मानते थे। परन्तु एक ही ईश्वर को राम, कृष्ण, शिव, अल्लाह आदि के नामों से पुकारते थे उनका मत था प्रभु भक्ति अथवा प्रभु प्रेम से ही मोक्ष मिल जाता है। भक्ति का अर्थ है एकाग्रचित और निस्वार्थ होकर ईश्वर की पूजा करना। उन्होंने भक्त के प्रेम की तुलना सेवक की मालिक के प्रति भक्ति मित्रों के मध्य प्रेम, शिशु के प्रति माँ का प्रेम और अपनी प्रिया के प्रति प्रियतम के स्नेह से की।

डा. ताराचन्द, निजामी व डा. कुरेशी का मत है कि भक्ति आन्दोलन मुसलमानों के भारतीय समाज पर सम्पर्क का परिणाम है। लेकिन दूसरे विद्वान इस बात को सही नहीं मानते क्योंकि इस्लाम का भाई चारा हिन्दुओं पर लागू नहीं हुआ। इसलिए इस्लाम का हिन्दू धर्म पर खास प्रभाव नहीं पड़ता। इस्लाम के भारत में आगमन से पहले थी भक्ति की कविताएँ भारत में प्रचलित थी। तमिलनाडू के अलवरों और नपनारों के भक्ति भजन मन्दिरों में पूजा का अंश थे। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के कुछ प्रमुख सन्त इस प्रकार थे –

गुरूनानक 1469–1538 ई.

गुरू नानक का जन्म 29 नवम्बर 1469 ई. को पंजाब के शेखपुर जिले के तलवण्डी में हुआ जो अब पाकिस्तान में है। उनके पिता का नाम कालु मेहता, माता का तृप्ता था। नानकी उनकी बहन थी। नानक ने प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव के स्कूल में प्राप्त की। उनकी रूची पढ़ाई में नहीं थी। वे जंगलों में घूमना और सन्तों के साथ बैठना अधिक पसंद करते थे। घरवालों ने इस बात से दुःखी होकर उनका विवाह छोटी आयु में कर दिया परन्तु उनकी घर के कामों में कोई रूची नहीं थी। 30 वर्ष की आयु में गुरू नानक ने घर छोड़ दिया और सन्यासी बन गये। उन्होंने अपने दो शिष्यों भाई बाला और भाई मर्दाना के साथ काफी भ्रमण किया। इनका देहान्त 1538 ई. में पंजाब के करतारपुर नामक स्थान पर हुआ।

गुरू नानक का कहना है कि ईश्वर एक है। वह निर्गुण और निरंकार है। गुरू नानक ने अच्छाई की प्रशंसा और बुराई की निन्दा की। उनका विचार था कि आत्मा और प्रमात्मा से रोशनी मिलती है परन्तु वह माया से ढक जाती है। गुरू नानक का विश्वास न वेदों में था न कुरान में। वे ब्राह्मणों और मुल्लाओं के विरोधी थे। वे रीति–रिवाज और धर्म के बाहरी आडम्बरों के भी विरोधी थे। वे कर्म सिद्धान्त और जीवात्मका के आवागमन में विश्वास रखते थे। उन्होंने दया, सत्य, ईमानदारी, नम्रता और

नैतिकता पर बहुत बल दिया। प्रत्येक सिख का कर्त्तव्य था कि वह लोगों को दान दे। हरि का नाम ले और गुरू की आज्ञा माने। गुरू ने भजन और कविताएँ लिखी, जो लोगों के सामने आदि ग्रंथ के रूप में आई।

मीराबाई 1498–1546 ई.

मीराबाई भी भक्ति आन्दोलन की एक बड़ी सन्त थी। उनका जन्म राजस्थान में लगभग 1498 ई. में हुआ। उनका विवाह 1516 ई. में भोजराज से हुआ, जो राणा सांगा का सबसे बड़ा लड़का था। भोजराज की मृत्यु राणा सांगाके जीवन काल में ही हो गई और मीराबाई जवानी में ही विधवा हो गई। पति की मृत्यु के बाद उसने अपना सारा समय धार्मिक कार्यों तथा भक्ति में लगा दिया। उसकी ख्याति सब दिशाओं में फैल गई। और दूर–दूर से लोग उसके पास आने लगे। राजा विक्रमादितय ने जहर देकर मीराबाई को मारना चाहा परन्तु वह बच गई। इसके बाद वह अपने चाचा बीरस देव के पास भेड़ता चली गई। 1546 में उसकी मृत्यु हो गई।

मीरा का संदेश था कि किसी को जन्म के कारण, गरीबी के कारण अथवा आयु के कारण परमात्मा से परे नहीं रखा जा सकता। उसको मिलने का एक भाग साधन भक्ति है। जब गुरू अपने शिष्य को उपदेश देगा तो दरवाजे खुल जाएंगे और शब्द के रहस्यों का ज्ञान उसे हो जायेगा। धीर–धीरे परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे। परमात्मा ज्ञान अथवा योग से नहीं मिलता परन्तु भक्ति और प्रेम से मिलता है।

तुलसी दास 1532 से 1623 ई.

तुलसी दास का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। कहा जाता है कि वह अपनी पत्नी के ताना देने से घर बार छोड़कर सन्त महात्मा बन गया। वह राम का भक्त था। उसने रामचरितमानस पुस्तक रची जिससे उसकी राम के प्रति भक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। तुलसी दास का कहना था कि परमात्मा एक है और उसका नाम राम है। उसने लोगों के उपकार के लिए जन्म लिया। तुलसी का विश्वास था कि भक्ति द्वारा राम मिल सकता है।

सूरदास 1479 से 1568 ई.

सूरदास कवि और सन्त दोनों थे। उसने ईश्वर के प्रति भावना का प्रचार किया, उसने कई पुस्तकें लिखी जिनमें सूरसागर, साहित्य रत्न और सुरसारावली मुख्य है। सुरसागर में कृष्णा के बाल्य कला के जीवन का वर्णन है, इसमें कृष्ण भगवान के प्रति अगाध भक्ति प्रेम दर्शाया गया है। यह पुस्तक ब्रज भाषा में है।

दादुदयाल 1554 से 1603 ई.

दादुदयाल अहमदाबाद का जुलाहा था। भक्ति आन्दोलन में उसकी महत्त्वपूर्ण देन है। बाल्यकाल में ही उसने संसार छोड़ दिया। अपने उपदेशों से उसने प्रेम एकता, मातृ भाव और सहिष्णुता पर जोर दिया। उसका कहना था कि हिन्दू और तुर्क में और अल्लाह और राम में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। वह मूर्ति पूजा, अवतार वाद, धर्म के बाहरी आडम्बरों की पूजा का विरोधी था। वह ईश्वर में विश्वास रखता था और उसके अनुसार ईश्वर अजर और अमर है। वह सबके हृदय में विद्यमान है। उसने एक पंथ चलाया और उसके अनुयायी दादुपंथी कहलाते हैं। दादुदयाल के उपदेश दादुराम की वाणी में मिलते हैं।

शंकर देव

शंकर देव असम का सबसे बड़ा धार्मिक सुधारक था, उसने भक्ति को असम प्रदेश में चलाया। उसकी पत्नी के असमय मृत्यु के कारण उसका जीवन बदल गया और वह योगी बन गया। उसने हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया और अन्त में वह भक्ति का समर्थक बना। उसने उत्तर और दक्षिण भारत के तीर्थ स्थानों की यात्रा की। उसका सन्देश था विष्णु अथवा कृष्ण की भक्ति। वह एक ईश्वर में विश्वास रखता था। उसने निष्काम भक्ति पर जोर दिया। उसका भगवत पुराण की पवित्रता में विश्वास था। और उसकी एक प्रति मूर्तियों के स्थान पर रखी जाती थी। वह मूर्ति पूजा का विरोधी था। उसने जाति प्रथा की निन्दा की। उसने लोगों की ही भाषा में धर्म प्रचार किया।

तुकाराम 1598 से 1650 ई.

भक्ति आन्दोलन का महाराष्ट्र का सबसे बड़ा सन्त तुकाराम था। उसका जन्म एक गाँव में हुआ था। उसका ईश्वर से बड़ा प्रेम

था। उसकी यह प्रबल ईच्छा थी कि भगवान के दर्शन हो और उसे अपने प्रयास में सफलता भी मिली।

तुकाराम रीति–रिवाजों, तीर्थ यात्राओं, मूर्ति पूजा, उपवासों, वैदिक यज्ञों आदि का विरोधी था, उसने हिन्दु धर्म और ईस्लाम धर्म को नजदीक लाने का प्रयास किया। उसका ईश्वर का दृष्टिकोण कबीर से मिलता जुलता था, उसका कहना थाकि ईश्वर का न तो कोई नाम है, न कोई रूप से और न कोई रहने का स्थान। वह सब जगह विद्यमान है, वह सर्वव्यापक है? परमात्मा उसी को मिलता है जिसका उसमें विश्वास है।

राम दास 1608 से 1681 ई.

राम दास के माता पिता का देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया था। उसने कई वर्षों तक भ्रमण किया और तपस्या का जीवन व्यतीत किया, अन्त में उसमें कृष्णा नदी के किनारे राम का एक मन्दिर बनवाया। उसका मुख्य ग्रन्थ दस बोध है, उसने भक्ति और कर्मयोग दोनों पर बड़ा जोर दिया। राम दास राम का भक्त था।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव

भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने लोगों के सामने जीवन का ऐसा लक्ष्य रखा, जिस पर साधारण लोग भी बिना किसी कठिनाई के चल सकते थे। इसके निम्नलिखित प्रभाव पड़े।

1. भक्ति आन्दोलन ने कार्य के रीति रिवाजों व धार्मिक क्रियाओं की आलोचना कि जिससे लोगों में नई जागृति पैदा हुई खास कर निम्न वर्ग के लोगों में। जिससे समाज में उनका स्थान उंचा उठा।
2. भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने जन साधारण की भाषा का प्रयोग किया। इस कारण क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हुआ।
3. भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने हिन्दू मुस्लिम एकता का पाठ पढ़ाया, वे दोनों अब एक दूसरे को समझने लगे और एक दूसरे के निकट आने लगे। जिससे धार्मिक कट्टरता कम हुई
4. भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से जाति बन्धन की जटिलता कुछ कम हुई। प्रायः सभी सुधारकों ने जाति पाति की निन्दा की। जिसके फलस्वरूप हिन्दू धर्म में जाति पाति के बन्धन शिथिल हुए।
5. भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से सिखों और मराठों का उत्थान हुआ। पंजाब में गुरूनानक और उसके नौ शिष्यों और महाराष्ट्र में तुकाराम और रामदास आदि ने प्राणियों की समानता पर जोर दिया, इन्हीं के प्रभाव से पंजबा में गुरू गोविन्द सिंह और महाराष्ट्र में शिवाजी जैसे वीर पुरूष पैदा हुए। इन्होंने अपने–अपने राज्य स्थापित किए।

   भक्ति आन्दोलन के बारे में डा. युसुफ हुसैन ने लिखा है कि भक्ति आन्दोलन से हिन्दू और मुस्लिम सभ्यताओं का सम्पर्क हुआ और दोनों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस आन्दोलन ने हिन्दुओं और मुसलमानों के भक्तों को एक स्थान पर मिलने के अवसर पैदा किये। भक्ति मार्ग सन्तों ने समता का प्रचार किया और जाति प्रथा और धार्मिक आडम्बरों का विरोध किया। उन्होंने ऐसा समाज बनाने का प्रयत्न किया जिसमें समता और न्याय हो और सब धर्मों के लोग आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति करें।

मध्यकालीन भारत में सूफीमत

सूफी शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के कई विचार है, कुछ का विचार है कि इस शब्द की उत्पत्ति "सफा" शब्द से हुई, जिसका अर्थ है पवित्र। मुसलमानों मे जो सन्त पवित्रता और त्याग का जीवनव्यतीत करते थे वे सूफी कहलाये। एक अन्य विचार में सूफी शब्द की उत्पत्ति "सूफ" शब्द से हुई जिसका अर्थ है उन। मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद जो सन्त उनी कपड़े पहन कर मत का प्रचार करते थे सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों का विचार है कि सूफी शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द "सोफिया" से हुई जिसका अर्थ ज्ञान है। एक मत यह भी है कि मदीना मुहम्मद साहब द्वारा बनाई गई मस्जिद के बाहर सफा अर्थात मक्के की पहाड़ी पर जिन व्यक्तियों ने शरण ली तथा खुदा की अराधना में लगे, वे सूफी कहलाये। सूफी शब्द का प्रयोग ईसा की नवी शताब्दी से प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। सूफी लोग किसी भी धर्म या व्यक्ति से वैर न रखने वाले लोग थे।

सूफीमत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यूसुफ हुसैन के विचार में सुफीयों का जन्म इस्लाम से हुआ और उन पर बाहर के रीति–रिवाजों और विचारों का कोई प्रभाव न पड़ा। डा. ए.एल श्रीवास्तव का इनसे मतभेद है। उनका कहना है

कि सूफी मत पर हिन्दू विचारों और रिवाजों का बहुत प्रभाव पड़ा, सूफियों का ईश्वर से बहुत प्रेम हिन्दू धर्म से लिया गया। अहिंसा और न लड़ने के विचार बोधों और जैनियों से लिए। उनमें जो शरीर को यातनाएँ देने और भूखे मारने के हैं, वे भी उन्होंने हिन्दुओं और बोधों से लिए। प्रो. के.ए. निजामी का विचार है कि सूफियों के चिश्ती सिलसिले ने हिन्दुओं के कई रीति–रिवाज अपनाए। शेख के सामने झुकना, अतिथियों को पानी पिलाना, सिर मुंडवाना और मांगने का बर्तन भी हिन्दुओं और बो(ों से लिया।

सूफी मत का भारत में आगमन

मुहम्मद गजनवी के पंजाब विजय के साथ ही कई सूफी सन्त भारत आए। उनमें सबसे पहला शेख ईमाईल था, जो लाहौर आया। इस प्रकार 1200 से लेकर 1500 तक सूफी मत का विस्तार धीरे–धीरे हुआ। और मध्य काल में कई नये सम्प्रदाय और आन्दोलन प्रारम्भ हुए, जो कि हिन्दू धर्म और इस्लाम के मध्य का रास्ता बताते थे। उनमें से चिश्ती, सुहरावर्दी, फिरदौसी, काहरी और नकशाबन्दी सिलसिले महत्त्वपूर्ण है।

चिश्ती सिलसिले

चिश्ती सिलसिले की स्थापना ख्वाजा अब्दुल चिश्ती ने हेरात में की थी। इस सिलसिले का ख्वाजा म्युनदीन चिश्ती ;1141–1236 ई.द्ध भारत आया। वह भारत के सूफीयों में सबसे बड़ा था। उसका जन्म मध्य एशिया में हुआ। बचपन से ही वह ईश्वर का भक्त था। उसने घर छोड़कर पवित्र स्थानों का भ्रमण शुरू किया और समरकन्द बगदाद मक्का आदि स्थानों की यात्र की। वह गजनी से 1161 में लाहौर आया और अन्त में अजमेर को अपना प्रधान केन्द्र बना लिया। उसने निम्न जाति के लोगों में अधिकतर काम किया। उसकी बड़ी प्रसिद्धी हुई, जो आज तक कायम है।

ख्वाजा म्यूनदीन चिश्ती के कई शिष्य और अनुयायी थे, उनमें शेख हमीउद्दीन और शेख कुतुबुद्दीन बख्त्यार काकी थे। शेख काकी अल्तमस के शासन काल में दिल्ली आया। उसने सुल्तान के महल के नजदीक रहने की सुल्तान की प्रार्थना को अस्वीकार दिया और दिल्ली से बाहर एक खानकाह में रहे। काकी के शिष्य बाबा फरीद शकर गंजे थे, जो अफगानिस्तान के राजवंश से सम्बन्ध रखते थे। उन्होंने हाजी में काम किया, उनके कार्य के कारण चिश्ती उसे हमेशा घेरे रहते थे।

बाबा फरीद के शिष्य हजरत शेख निजामुद्दीन औलिया थे। वे 1258 ई. में दिल्ली आये, वहाँ लगभग 60 वर्ष धार्मिक कार्य किया। उसने दिल्ली के कई सुल्तानों का समय देखा, परन्तु वे किसी के भी दरबार में न गये। औलिया साहब के पास जो कुछ आता था, उसे वे स्वयं बांट देते थे, इसलिए उन्हें कभी–कभी भूखा सोना पड़ता था। शेख हमीउदीन नागौरी ;1192–1274द्ध के नागोर के स्थान पर एक महत्वपूर्ण चिश्ती सिलसिले का केन्द्र बनाया। शेख नसिरूदीन महमूद चिश्ती सिलसिले का एक बड़ा सूफी सन्त था। उसको दिल्ली का चिराग भी कहते हैं, वह निजामुदीन औलिया के शिष्य थे। सिराजुदीन अली सिराज के चिश्ती सिलसिलों को बंगाल में चलाया।

मुगलों के शासन काल में चिश्ती सिलसिले का पहले सा प्रभाव न रहा, क्योंकि इस काल में निजामुद्दीन औलिया जैसा कोई धार्मिक नेता न था मुगल काल में चिश्ती सिलसिले का एक सन्त, शेख सलीम था, जिसका केन्द्र फतेहपुर सीकरी था। कहा जाता है की जहाँगीर का शेख सलीम से आशीर्वाद से हुआ था।

चिश्ती सिलसिले के सन्त सादगी और पवित्रता का जीवन व्यतीत करते थे। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति उन्नति के मार्ग में बाधा मानते थे। उनके निवास स्थान प्रायः मिट्टी के बने होते थे। जो दान लोग उन्हें देते थे, उसी से वे अपना गुजारा करते थे। चिश्ती सन्त उदार विचारों के थे। वे ईश्वर के प्रति प्रेम और मनुष्य भाग की सेवा में विश्वास रखता था।

सुहरावर्दी सिलसिले

सुहरावर्दी सिलसिले की स्थापना शेख सहाबुदीन सुहरावर्दी ने की। उन्होंने अपने शिष्यों को भारत भेजा और वे भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में बस गये। उनमें से एक बहाउदीन जकारिया (1182–1263) जिन्होंने मुलतान में लगभग 50 वर्षों तक कार्य किया। इस सिलसिले के अन्य सन्त जलालूदीन तकेजी थी, जिन्होंने लखनौती में अपनी खानकाह बनाई

सुहरावर्दी सिलसिले ने पंजाब, सिन्ध और बंगाल तीन महत्वपूर्ण केन्द्र बनाए। सुहरावर्दी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने पर जोर देते थे और उनकों इस कार्य के लिए सहायता कई स्त्रोता ‹, ⁻⁻लती थी।

चिश्ती व सुहरावर्दी सन्त सिलसिले में कुछ अन्तर था। सुहरावर्दी सन्त अमीरों और सुल्तानों से मेल रखते थे। बहाउदीन जकारिया ने सब प्रकार से धन इकट्ठा किया।

फिरदौसी सिलसिला

फिरदौसी सिलसिला सुहरावर्दी सिलसिले की एक शाखा थी और उसका कार्य क्षेत्र बिहार था, इस सिलसिले को शेख शरीफउदीन यहप्या ने लोकप्रिय बनाया। वह ख्वाजा निजामूदीन फीरदौसी का शिष्य था, उसने मनुष्य भाग की सेवा पर बहुत जोर दिया। वह अपने अनुयायीयों से कहता था कि जिव्हा, लेखनी, धन और पद से लोगों की सेवा करनी चाहिए।

कादिरी सिलसिला

कादिरी सिलसिले का संस्थापक बगदाद का शेख अब्दुल कातिर जिलानी (1077 से 1116) था। यह सिलसिला 15वीं शताब्दी में भातर पहुँचा। शाह न्याम तुलाह और मखदूर मुहमद जिलानी ने इस सिलसिले को भारत में लोकप्रिय बनाया।

नक्शाबन्दी सिलसिला

इस सिलसिले को ख्वाजा पीर मुहमद के अनुयायियों ने भारत में चलाया। इसके अनुयायियों ने शरीयल पर बहुत जोर दिया और नई बातों का विरोध किया, इस सिलसिले के लोग संगीत विरोधी थे।

सूफी मत का प्रभाव

इस मत के प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। ए.एल. श्रीवास्तवा के अनुसार सूफी मत का हिन्दू धर्म पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। डा.ए.सी. बैनर्जी का विचार है, कि सूफीमत ने भारत में इस्लाम को प्रोत्साहन न दिया यद्यपि कई हिन्दू सूफियों से प्रभावित हुए तथापि वे लोगों को मुसलमान बनाने में असफल ही रहे। डा. आर सी मजूमदार का भी ऐसा ही विचार है। उनका कहना है कि सूफियों का जो हिन्दुओं पर प्रभाव पड़ा वह स्थायी सिद्ध न हुआ। तथा हिन्दू मुसलमान एक दूसर से दूर रहे।

डा. ताराचन्द का विचार है कि शंकराचार्य के अदत वाद और रामानन्द की भक्ति भावना पर इस्लाम से सम्पर्क का गहरा प्रभाव पड़ा। इसका विरोध करने वाले विद्वान कहते हैं कि बारहवीं शताब्दी से पूर्व इस्लाम तथा हिन्दू धर्म का कोई सम्पर्क नहीं था, इसलिए वे एक दूसरे से प्रभावित न हुए।

लेकिन यह कहा जा सकता है, कि भारतीय संस्कृति के सम्पर्क में आने से दोनों के बीच विचारों का आदान प्रदान हुआ। एक दूसरे ने आपस में कुछ न कुछ ग्रहण किया। बाबा फरीद ने पंजाबी साहित्य को अनूठी देन दी। कुतुबन मन्झन, जायसी और नूर मोहमद के साहित्य अवधी भाषा में थे। यह सुफीयों के प्रयत्न का ही फल है कि इस्लाम में उदार और गतिशील तत्वों को प्रेरणा मिली, सुफीयों ने अहिंसा और शान्ति से समस्याऐं सुलझाने के लिए जनता को प्रेरणा दी। जनता का ध्यान बार–बार भई–चारे की ओर दिलाया।

अध्याय-9

मुगल साम्राज्य का पतन
(Decline of Mughal Empire)

बाबर ने 1526 ई. में जिस मुगल साम्राज्य की नींव रखी थी तथा अकबर ने जिसे अपने कार्यों द्वारा मजबूत किया था। औरंगजेब के समय में उसका विहारन शुरू हो गया। औरंगजेब कि मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य के पतन का चक्र और भी तेज हो गया। मुगल साम्राज्य के पतन के अनेकों कारण थे। मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों को दो भागों में बांटा जा सकता है – एक वो जिनके लिए औरंगजेब की मूर्खतापूर्ण नीतियाँ जिम्मेदार थी दूसरे इसके लिए साम्राज्य की आन्तरिक दुर्बलताएँ जिम्मेदार थी।

औरंगजेब की जिम्मेदारी

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुगल साम्राज्य के पतन के लिए बहुत हद तक औरंगजेब जिम्मेदार था।

1. **धार्मिक असहनशीलता की नीति** – जिस राजनीतिक सूझ–बूझ के साथ अकबर ने धार्मिक सहनशीलता और उदाहरता से लोगों का विश्वास जीतकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। औरंगजेब ने अकबर की इस नीति को बिल्कुल ही उल्ट दिया। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़कर उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाई। उन पर जजीया तथा तीर्थ यात्रा जैसे करों को पुनः लगाकर। हिन्दुओं को उंचे पदों से हटाकर उन्हें सदा के लिए अपना शत्रु और साम्राज्य विरोधी बना लिया। प्रो. एस.आर. शर्मा के अनुसार "यह सब कार्य एक समझदार शासक अथवा एक रचनात्मक राजनीतिज्ञ के न होकर एक अन्धविश्वासी और हठधर्मी के क्रोध के आवेश में आकर किए हुए कार्य थे।"

   केवल हिन्दुओं को ही नहीं औरंगजेब ने अपनी असहनशीलता व धर्मान्धता की नीति से शिया लोगों को भी मुगल साम्राज्य का शत्रु बना लिया। इस धार्मिक नीति का यह परिणाम निकला की औरंगजेब की मृत्यु के 15–20 सालों में ही मुगल साम्राज्य बिखर गया।

2. **राजपूतों से दुर्व्यवहार** – अकबर ने राजनीतिक सूझ–बूझ का परिचय देते हुए राजपूतों के साथ मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए थे। जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने इस नीति को प्रचलित रखा परन्तु औरंगजेब राजपूतों की मित्रता का मुल्य न जान सका और उसने ऐसे स्वामीभक्त तथा शूरवीर लोगों को अपना शत्रु बना लिया। मारवाड़ के शासक राजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य को हड़पने तथा उसकी पत्नियों तथा एक पुत्र को पकड़कर मुसलमान बनाने का प्रयत्न करके उसने सारे राजपूतानों को अपना विरोधी बना लिया। इन सबके कारण उसे राजपूतों से कई वर्षों तक युद्ध करने पड़े। एक तो इन युद्धों से जान माल का नुकसान हुआ, दूसरा राजपूत मुगल साम्राज्य के दुश्मन बन गये तथा उसकी सेवा करने की बजाय उसके पतन के लिए प्रयत्न करने लगे।

3. **मराठों से दुर्व्यवहार** – औरंगजेब ने अपना बहुत सा समय, धन तथा अन्य साधन से संघर्ष करके व्यर्थ खो दिए। यदि औरंगजेब चाहता तो जब 1666 ई. में शिवाजी उसके दरबार में आए तो उनसे अच्छा व्यवहार करके उनको अपना मित्र बना सकता था। परन्तु औरंगजेब इसके उल्ट शिवाजी को कैद कर लिया। शिवाजी दक्षिण में भागने में सफल हुआ और उन्होंने जीवन भर मुगलों को तंग किया। शिवाजी की मृत्यु के बाद भी मराठों ने मुगल साम्राज्य को नष्ट करने का अपना कार्यक्रम जारी रखा।

4. **मूर्खतापूर्ण दक्षिण नीति** – औरंगजेब की मूर्खतापूर्ण दक्षिण नीति मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य

साम्राज्य के साथ लगने लगी। अब मराठों को मुगल साम्राज्य को लूटना आसान हो गया। अगर औरंगजेब इन दो शिया राज्य में नहीं मिलाता तो वे काफी समय तक मराठों की बढ़ती हुई शक्ति को रोक सकते थे। उसे इन राज्यों को मिलाने की अपेक्षा धन और जन से मराठों के विरूद्ध लड़ने की सहायता देनी थी।

5. **अति केन्द्रीयकरण की नीति** – औरंगजेब को विरासत में एक विशाल साम्राज्य मिला था, लेकिन उसे उतने राज्य से ही तृप्त रहकर उसी को ठीक करना चाहिए था और उसी के प्रबन्ध की ओर ध्यान देना चाहिए था। परन्तु औरंगजेब ने और अधिक प्रदेशों को जीतकर बड़ी भूल की क्योंकि अब इतने विस्तृत साम्राज्य को सम्भालना बड़ा कठिन हो गया, विशेषकर उन दिनों आने–जाने के साधन बड़े कठिन थे। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट तानाशाह थे। उनकी तानाशाही के खिलाफ कभी–कभी प्रान्तीय गर्वनर विद्रोह कर देते थे।

6. **औरंगजेब का सन्देहशील स्वभाव** – औरंगजेब का स्वभाव अत्यन्त संदेहशील था। उसे किसी पर भी यहाँ तक कि अपनी सन्तान तथा सम्बन्धियों पर भी विश्वास नहीं था। परिणामस्वरूप उसके समय में राजकुमार प्रशासन सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त न कर सके और न ही उन्हें युद्ध सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, इसलिए उसकी मृत्यु के बाद कोई भी उत्तराधिकारी ऐसा नहीं था जो सारे साम्राज्य का भार सम्भाल सके इसी कारण वे मुगल साम्राज्य के पतन को न रोक सके।

पतन के अन्य कारण

1. **मुगलों में उत्तराधिकार का कोई नियम न होना** – मुगलों में राजगदी के लिए उत्तराधिकार का कोई नियम न था और यह भी साम्राज्य के पतन का कारण बना सभी मुगल शहजादे अपनी योग्यता का डंका बजाकर सिंहासन के लिए लड़ने लगे। इर्स काईन ने लिखा है कि गद्दी पर बैठने के वास्तविक अधिकार का निर्णय तलवार से होता था। प्रत्येक भाई दूसरे भाईयों के विरूद्ध युद्ध लड़कर भाग्य की परीक्षा करता था। 1712 में बहादुर शाह की मृत्यु के बाद विभिन्न दलों के नेताओं ने अपनी–अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अपने हकदार खड़े किए। इस प्रकार होने वाली उत्तराधिकार की लड़ाईयां मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

2. **औरंगजेब के दुर्बल उत्तराधिकारी** – यह ठीक है कि मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब काफी हद तक जिम्मेदार है परन्तु यदि उसके उत्तराधिकारी योग्य और शक्तिशाली होते तो वे मुगल साम्राज्य के पतन को काफी समय तक रोक सकते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश सब के सब कमजोर अयोग्य और विलास प्रिय थे।। उन्होंने अपना बहुत सा समय हरम में व्यतीत करना आरम्भ कर दिया और लोगों की भलाई के लिए कुछ न किया। जब जहांदार शाह जैसे मुगल सम्राट लाल कवंर जैसी वेश्या पर लट्टू रहने लगे तो भला उस साम्राज्य के पतन को कौन रोक सकता है।

3. **आर्थिक कारण** – मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण यह भी था कि मुगल सरकार आर्थिक रूप से दिवालिया हो गई थी। केवल औरंगजेब ही इसके लिए जिम्मेवार न था, परन्तु उसने इससे निपटने के लिए कुछ नहीं किया। उसने अपनी लड़ाईयों में बहुत सा धन खर्च कर दिया और उससे आर्थिक व्यवस्था पहले से भी बिगड़ गई। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों ने टेक्स इक्ट्ठे करने का काम उन लोगों को दिया जिन्होंने इसकी बढ़ चढ़ कर बोली दी। इस प्रथा से सरकार को तो लाभ न हुआ परन्तु टैक्स देने वाले तबाह हो गये। मुगल सम्राट शाह आलम की यह अवस्था थी कि वह ईदगाह तक पैदल जाता था और खाने के लिए महलों में कुछ भी न था। सर जादूनाथ सरकार ने लिखा है कि एक अवसर पर शाही महलों के रसोई घर में तीन दिन तुक आग न जली और भूख से सताई हुई मुगल शहजादियाँ लाल किले से निकल पड़ी। लेकिन किले के द्वार बाहर से बन्द थे, वे रात भर वहीं बैठी रही और बहुत मुश्किल से उन्हें वापिस भेजा गया।

4. **मुगल सेना की निर्बलता** – आरम्भ में मुगल सैनिक बड़े बलवान और स्वामीभक्त थे। उनमें सबसे बड़ी कठिनाईयों को सहन करने की क्षमता थी। बाबर के साथ आने वाले मुगल सैनिक अपने स्वामी के लिए जान तक न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। परन्तु भारत की जलवायु तथा विलासिता ने उन्हें कमजोर निर्बल बना दिया। अब वे अपने साथ युद्ध क्षेत्र में अपनी स्त्रियों को भी ले जाने लगे, इसके अतिरिक्त जितने सैनिक लड़ाई लड़ने के लिए जाते थे, उससे भी कई गुना अधिक उनकी आराम की देखभाल करने के लिए जाते थे।

तक न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। परन्तु भारत की जलवायु तथा विलासिता ने उन्हें कमजोर निर्बल बना दिया। अब वे अपने साथ युद्ध क्षेत्र में अपनी स्त्रियों को भी ले जाने लगे, इसके अतिरिक्त जितने सैनिक लड़ाई लड़ने के लिए जाते थे, उससे भी कई गुना अधिक उनकी आराम की देखभाल करने के लिए जाते थे। अब सैनिकों में कोई स्वामीभक्ति न रही थी। वे लोभी हो गये थे और जिधर से भी पैसा मिल जाता था उधर ही झुक जाते थे। इसके अतिरिक्त मुगल सेनापति भिन्न–भिन्न वर्गों से सम्बन्धित होने के कारण एक दूसरे से लड़ते–झगड़ते रहते थे। और आपसी ईर्ष्या द्वेष ने उन्हें कभी भी मिलकर काम करने न दिया।

5. **किसानों की दुर्दशा** – प्रो. इरफान हबीब के अनुसार मुगलों के साम्राज्य की कब्र खोदने वाले वे स्वयं थे। उनके राज्य में किसानों की दशा खराब हो गई। सत्रहवीं तथा अठारवी सदियों में किसानों की दशा अधिक से अधिक खराब हो गई जागीरदारों के लगातार तबादलों के कारण कई भारी दोष आ गये। प्रत्येक जागीरदार ने यह प्रयत्न किया कि वह थोड़े से समय में किसानों से अधिक से अधिक धन वसूल कर लें। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जागीरों और खालसा भूमि का इजारा ठेका दिया जाने लगा। इन नये इजारेदारों ने किसानों पर क्रूर अत्याचार किए। किसानों का असन्तोष बढ़ता गया और वे खेती छोड़कर भागने लगे। उनके असन्तोष ने सिखों, जाटों व सतनामियों के विद्रोह का रूप धारण कर लिया। इससे मुगल साम्राज्य की स्थिरता तथा शक्ति को नुकसान पहुँचा।

6. **नौ सेना का अभाव** – मुगलों ने अपनी नौ सेना की ओर ध्यान न दिया। उन्होंने अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए नौ सेना के महत्त्व को न समझा, उसका परिणाम यह हुआ कि मुगल यूरोप की शक्तियों के सामने ठहर न सके। क्योंकि उनकी नौ–शक्ति बड़ी थी और वे उसके लड़ने के ढंग में भी अभ्यस्त थे। विशेषकर अंग्रेजों ने अपनी नौ शक्ति के आधार पर भारत में अपना प्रभुत्व जमा लिया। एक समय के बाद मुगल नष्ट हो गये।

Chapter - 5 Objective Type Questions

1. अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुण्डा नामक दक्षिण राज्य किस राज्य के विघटन पर उभरे?
   उ0. बहमनी
2. किस दक्षिण रियासत ने अकबर की प्रभुत्ता को सर्वप्रथम स्वीकारा?
   उ0. खानदेश ने
3. अहमद नगर के शासक बुरहान की मृत्यु कब हुई?
   उ0. 1595 ई. में
4. दक्षिण का सबसे दृढ़ किला किसे माना जाता था?
   उ0. असीरगढ़ का किला।
5. बहादुर निजाम शाह की गिरफ्तारी के बाद किस व्यक्ति ने मुगलों का विरोध किया?
   उ0. मलिक अम्बर ने।
6. मलिक अम्बर की मृत्यु कब हुई?
   उ0. 1626 ई. में।
7. 1929 ई. में अहमद नगर का शासक कौन था?
   उ0. निजाम शाह।
8. 1929 ई. में बीजापुर के किसका शासन था?
   उ0. आदिल शाह।
9. संसार का सबसे बड़ा गुबन्द कौन सा है?
   उ0. बीजापुर का गोल गुंबद।
10. अकबर ने कंधार को अपने राज्य में कब मिलाया?
    उ0. 1595 ई. में।
11. शाहजहाँ के समय किस ईरानी शासक ने कन्धार पर अधिकार कर लिया।?
    उ0. शाह अब्बास द्वितीय।

12. शाहजहाँ के समय कन्धार विजय करने के लिए कितने अभियन भेजे?
उ0. तीन।

13. औरंगजेब के समय उत्तर पश्चिमी सीमा पर कौन–कौन से कबीले निवास करते थे?
उ0. यूसुफजर्क, अफरीरी, खटक।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. दक्षिण भारत की किस जाति ने मुगलों को अधिक क्षति पहुंचाई।
(क) मराठे (ख) राजपूत (ग) ब्राह्मण (घ) शिया
उ0. (क) मराठे।

2. मुगलों ने 1576 में दक्षिण के किस प्रदेश पर आक्रमण किया?
(क) बराब (ख) बीदर (ग) खानदेश (घ) बीजापुर
उ0. (ग) खानदेश

3. शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकुण्डा के साथ सन्धियाँ किस वर्ष की?
(क) 1630 (ख) 1632 (ग) 1633 (घ) 1636
उ0. (घ) 1636।

4. किताब ए नौरोज का लेखक?
(क) अबुल फजल (ख) अमीर खुसरो (ग) इब्राहिम आदिल शाह (घ) इब्राहिम लोदी
उ0. (ग) इब्राहिम आदिल शाह

5. चार मिनार का निर्माण किस शासक ने करवाया?
(क) आदिल शाह (ख) कुली कुतुबशाह (ग) निजाम शाह (घ) मलिक अम्बर
उ0. (ख) कुली कुतुबशाह

6. शाह अब्बास द्वित्तीय शाहजहां से कन्धार प्रदेश छीना?
(क) 1622 (ख) 1649 (ग) 1638 (घ) 1625
उ0. (ख) 1649।

7. युसुफ जईयों ने औरंगजेब के खिलाफ विद्रोह किया?
(क) 1672 (ख) 1682 (ग) 1667 (घ) 1657
उ0. (ग) 1667

मिलान संबंधी प्रश्न

	अ		ब
1.	अकबर द्वारा दक्कन में विजय किया गया शक्तिशाली दुर्ग	1.	मुहम्मद
2.	जहांगीर के समय मुगलों का कड़ा विरोध करने वाला अहमदनगर का सेनापति।	2.	राजकुमार औरंगजेब
3.	जहांगीर के समय अहमदनगर के विरूद्ध दो सफल अभियानों का नेता	3.	अली आदिल शाह
4.	शाहजहाँ द्वारा दक्षिण के प्रदेशों का दो बार नियुक्त सूबेदार	4.	सिकन्दर आदिल शाह

5.	गोलकुण्डा के सुल्तान अब्दुल कुतुबशाह की पुत्री से विवाह करने वाला राजकुमार	5.	अबुल हसन
6.	बीजापुर का सुल्तान जिसकी मृत्यु से बीजापुर की शान और शक्ति की समाप्ति।	6.	असीरगढ़
7.	बीजापुर राज्य का अन्तिम सुल्तान	7.	मलिम अम्बर
8.	गोलकुण्डा राज्य का अन्तिम सुल्तान	8.	राजकुमार खुर्रम

उ0. **1(6), 2 (7), 3 (8), 4 (2), 5 (1), 6 (3), 7 (4), 8 (5)।**

Chapter-6

1. अकबर ने शासन प्रबन्ध में किस अफगान शासक का अनुसरण किया?
   उ0. शेरशाह सूरी का
2. अकबर के साम्राज्य में कितने प्रान्त थे?
   उ0. 15।
3. मुगल काल में दिल्ली और आगरा में भूमिकर की कौन सी प्रणाली स्थापित की गई?
   उ0. जब्ती प्रणाली।
4. जब्ती प्रणाली का दूसरा नाम क्या था?
   उ0. टोडरमल का बन्दोबस्त।
5. मनसबदारी प्रणाली का आरम्भ किस मुगल सम्राट ने किया?
   उ0. अकबर।
6. मनसबदारों की भर्ती के लिए सम्राट किस की सलाह लेता था?
   उ0. मीर बख्शी।
7. मुगल सेना का मुख्य अंग क्या था?
   उ0. घुड़सवार
8. मुगल सेना के तोपखाने का अध्यक्ष कौन था?
   उ0. मीर–ए–आलिश।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मुगलकाल में प्रधानमंत्री को क्या कहा जाता था?
   (क) वकील (ख) सदर (ग) खानखाना (घ) दीवान
   उ0. (क) वकील
2. मुगलकाल में शाही घराने के घरेलू कार्यों में मंत्री?
   (क) मीर बख्शी (ख) खाना–ए–सामान (ग) मीर–ए–बर (घ) नाजिम
   उ0. (ख) खाना–ए–सामान।
3. जब्ती प्रणाली के अनुसार भूमि को कितने भागों में बांटा जाता था?
   (क) छः (ख) चार (ग) तीन (घ) पांच
   उ0. (ख) चार

4. भू–राजस्व की गल्ला बख्शी प्रणाली किस प्रदेश में लागू की गई?
(क) बंगाल (ख) सिन्ध (ग) कश्मीर (घ) काबुल
उ0. (क) बंगाल

5. मनसबदारी प्रणाली प्रचलित करने में इस मंत्री ने अकबर की सहायता की थी?
(क) बैरम खाँ (ख) अबुल फजल (ग) शहबाज खाँ (घ) मुजफ्फर खाँ
उ0. (ग) अबुल फजल

6. मुगल काल में सबसे बड़े मनसब था?
(क) 10,000 (ख) 1000 (ग) 5000 (घ) 20,000
उ0. (क) 10,000

7. मुगल काल में सबसे बड़े मनसबदार को कहा जाता था?
(क) अमीर–उल–उमरा (ख) मीर–ए–बख्शी (ग) दीवान–ए–आला (घ) सदर–ए–सदर
उ0. (क) अमीर–उल–उमरा

8. मुगल सेना में निम्नलिखित की उचित व्यवस्था नहीं थी?
(क) पैदल सेना की (ख) समुद्रीय सेना की (ग) घुड़सवारी की (घ) हाथियों की
उ0. (ख) समुद्री सेना की

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

अ	ब
1) मुगल सम्राटों की राजपद के दिव्य सिद्धान्त की द्योतक उपाधि	1. जब्ती प्रणाली
2) अकबर के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में सुप्रसिद्ध वजीर	2. शिकदार
3) मुगल काल में प्रान्त का मुखिया	3. शहबाज खाँ
4) मुगलकाल में प्रांतों की घटनाओं को सम्राट को सूचना देने वाला अधिकारी	4. टोडर मल
5) मुगलकाल में परगने का मुखिया	5. नाजिम
6) अकबर के शासनकाल में आठ प्रान्तों में प्रचलित भू–राजस्व प्रणाली	6. जिल्ल–ए–अल्लाह
7) जब्ती प्रणाली प्रचलित करने में अकबर का सहायक दिवान–ए–आला	7. वाक्या नवीस
8) मनसबदारी प्रणाली के प्रचलन में अकबर का सहायक मीर बख्शी	8. बैरम खां

उत्तर : 1 (6), 2 (8), 3(5), 4 (7), 5 (2), 6 (1), 7(4), 8 (3)।

Chapter - 7

1. बाबर ने पानीपत में कौन सा भवन बनवाया?
उ0. बाबरी मस्जिद।

2. आगरे का लाल किला किस मुगल सम्राट ने बनवाया?

उ0. अकबर ने।

3. आगरे के किले में किस रंग का पत्थर प्रयोग किया गया?

उ0. लाल रंग का।

4. बुलन्द दरवाजा किसने और कहां बनवाया?

उ0. अकबर ने फतेहपुर सीकरी में।

5. अकबर का मकबरा कहां बना हुआ है?

उ0. सिकन्दरा में।

6. शाहजहाँ द्वारा निर्मित विश्व विख्यात भवन?

उ0. ताजमहल

7. शाहजहाँ द्वारा दिल्ली में बनवाए गये किन्हीं दो भवनों के नाम बताओ?

उ0. लाल किला, जामा मस्जिद।

8. मोती मस्जिद कहां स्थित है?

उ0. आगरा में।

9. अकबरकालीन तीन हिन्दू चित्रकारों के नाम बताओ।

उ0. सावल दास, ताराचन्द, जगन्नाथ।

10. अकबर ने किस चित्रकार को मधुर बलम की उपाधि दी?

उ0. अब्दुल समद।

11. जहांगीर के काल के तीन मुसलमान चित्रकारों के नाम बताओ?

उ0. आगा रजा, अब्दुल हसन, मुहम्मद आदि।

12. शाहजहाँ का कौन सा पुत्र चित्रकला का प्रेमी था?

उ0. दारा

13. अकबरकालीन दो प्रसि(गायकों के नाम बताओ?

उ0. तानसेन, बैजुबावरा।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. हुमायूँ द्वारा बनवाया गया भवन?

(क) दीन पनाह (ख) मोती मस्जिद (ग) बाबरी मस्जिद (घ) दीवाने आम

उ0. (ख) दीन पनाह।

2. किस मुगल सम्राट ने भवन निर्माण कला के प्रति उदासीनता दिखाई?

(क) औरंगजेब (ख) अकबर (ग) शाहजहाँ (घ) हुमायूँ

उ0. (क) औरंगजेब

3. किस मुगल सम्राट को संगीत का सबसे अधिक चाव था?

(क) बाबर (ख) शाहजहाँ (ग) जहांगीर (घ) अकबर

उ0. (घ) अकबर

4. अकबर नामा का लेखक कौन था?

(क) अबुल फजल (ख) बदायूनी (ग) फैजी (घ) निजामुदीन अहमद

उ0. (क) अबुल फजल।

5. मुगल काल में लिखा गया सर्वश्रेष्ट हिन्दी ग्रन्थ?

(क) सत सई (ख) रामचरित मानस (ग) सुर सागर (घ) कोई सा भी नहीं

उ0. (ख) रामचरित मानस।

6. अकबर के दरबार का सबसे महान कवि?

(क) गिजाली (ख) अबुल तालिब (ग) अबुल फजल (घ) फैजी

उ0. (क) गिजाली।

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		**ब**
1.	कन्या वध तथा बाल विवाह के रोकने का प्रयास करने वाला मुगल सम्राट	1.	फतेहपुर सिकरी
2.	अकबर तथा जहांगीर के समय नक्शबन्दी सूफीयों का प्रसिद्ध नेता	2.	ताजमहल
3.	बाबर की आत्म कथा	3.	अकबर नामा
4.	सिखों का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ	4.	जहांगीर
5.	अकबर के दरबार में राजकवि	5.	खाफी खाँ
6.	अबुल फजल की सुप्रसिद्ध रचना	6.	तुजके बाबरी
7.	मुन्तखब उल लुबाब का लेखक	7.	शेख अहमद सरहिंदी
8.	अकबर द्वारा स्थापित नगर जो कई वर्षों तक राजधानी रहा	8.	आदि ग्रन्थ
9.	शाहजहां के शासन काल की सबसे सुन्दर इमारत	9.	गिजाली
10.	चित्रकला में सबसे अधिक रूची लेने वाला सम्राट	10.	अकबर

उत्तर : **1 (10), 2 (7), 3(6), 4 (8), 5 (9), 6 (3), 7(5), 8 (1), 9(2), 10(4)।**

Chapter 8

1. मराठों को सर्वप्रथम किसने एकता के सूत्र में बांधा?

   उ0. शिवाजी ने।

2. मराठों में जागृति पैदा करने वाले तीन भक्तों प्रचारकों के नाम बताओ?

   उ0. सन्त तुकाराम, एकनाथ, रामद्धा।

3. शिवाजी का जन्म कब हुआ?

   उ0. 1627 ई. में।

4. शिवाजी की माता का नाम?

   उ0. जीजाबाई।

5. शिवाजी के पिता किस शासक के अधीन कार्य करते थे?

   उ0. बिजापुर के सुल्तान के अधीन।

6. शिवाजी ने सर्वप्रथम किस दुर्ग को जीता?

   उ0. तोरण।

7. शिवाजी के विरू(औरंगजेब ने सबसे पहले किस व्यक्ति को भेजा?
   उ0. साईस्ता खाँ को।
8. शिवाजी ने सुरत का पहला आक्रमण कब किया?
   उ0. 1664 ई. में।
9. पुरन्धर की सन्धि कब हुई?
   उ0. 1665 ई. में
10. शिवाजी मुगल दरबार में कब उपस्थित हुआ।
    उ0. 9 मई 1666 ई. को।
11. शिवाजी की राजधानी का क्या नाम था?
    उ0. रामगढ़।
12. शिवाजी के अधीन मंत्रीपरिषद को क्या कहते थे।
    उ0. अष्ट प्रधान।
13. शिवाजी के अधीन प्रधान मंत्री को क्या कहते थे?
    उ0. पेशवा।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मराठे किस प्रदेश के रहने वाले थे?
   (क) तमिल नाडू (ख) उड़ीसा (ग) महाराष्ट्र (घ) केरल
   उ0. (ग) महाराष्ट्र
2. शिवाजी के संरक्षक कौन थे।
   (क) गुरूराम दास (ख) दादा कोण्डदे (ग) शाहजी भौंसले (घ) उपर्युक्त सभी
   उ0. (ख) दादा कोण्डदेव।
3. शिवाजी ने बीजापुर के किस सेना नायक का वद्य किया?
   (क) शाईस्ता खाँ (ख) आदिल शाह (ग) अफजल खाँ (घ) राजा जय सिंह
   उ0. (ग) अफजल खाँ
4. शिवाजी का राज्यभिषेक कब हुआ?
   (क) 1627 (ख) 1664 (ग) 1674 (घ) 1650
   उ0. (ग) 1674
5. शिवाजी के सैनिक संगठन में विशेष महत्त्व था?
   (क) दुर्गों का (ख) तोपखाने का (ग) हाथी सेना का (घ) डटसेना का
   उ0. (क) दुर्गों का।
6. शिवाजी की मृत्यु कब हुई।
   (क) 1664 (ख) 1674 (ग) 1680 (घ) 1684
   उ0. (ग) 1680
7. शिवाजी का उत्तराधिकारी था?
   (क) शम्भाजी (ख) ताराबाई (ग) राजा राम (घ) साहू

उ0. (क) शम्भाजी।

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	शिवाजी का पिता	1.	रायगढ़
2.	शिवाजी का जन्म स्थान	2.	240
3.	शिवाजी का अध्यात्मिक गुरू	3.	जिजी
4.	शिवाजी के हाथों मारा गया बीजापुर का सेनानायक	4.	मोरो त्रिम्बक पिंगले
5.	पुना में शिवाजी से पराजित मुगल सेना नायक	5.	शाह जी भौंसले
6.	शिवाजी द्वारा दो बार लूटी गई मुगल बन्दरगाह	6.	शिवनेर
7.	शिवाजी की राजधानी	7.	अफजल खाँ
8.	सुदूर दक्षिण पूर्व में	8.	सूरत
9.	शिवाजी के समय का प्रसि(पेशवा	9.	रामदास
10.	शिवाजी के राज्य में दुर्गों की संख्या	10.	शाईस्ता खां

उत्तर : 1 (6), 2 (6), 3(9), 4 (7), 5 (10), 6 (8), 7(1), 8 (3), 9(4), 10 (2)।

Chapter - 9

1. भारत में आने वाले प्रथम पुर्तगाली का नाम बताओ?
   उ0. वास्कोडिगामा।
2. वास्कोडिगामा पहले भारत की किस बन्दरगाह पर पहुंचा और कब?
   उ0. कालीकट, 1498 ई. में।
3. डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई?
   उ0. 1602 ई. में।
4. किस पुर्तगाली वायसराय ने गोवा पर अधिकार किया और कब?
   उ0. अल्फासों अल्बुकर्क ने 1510 ई. में।
5. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कब हुई?
   उ0. 1600 ई. में।
6. मुगल सम्राट जहांगीर के दरबार में आने वाले दो अंग्रेज प्रतिनिधियों का नाम बताओ?
   उ0. विलियम्स हाकिन्स तथा टाम्स रो।
7. अंग्रेजों ने किस मुगल सम्राट से बिना कर दिये व्यापार करने का अधिकार प्राप्त किया?
   उ0. फर्रूखसियर से।
8. भारत में अंग्रेजों की चार प्रमुख फैक्टरियों के नाम बताओ?
   उ0. कलकत्ता, मद्रास, बम्बई तथा सूरत।
9. फ्रांसीसी कम्पनी का भारत में सबसे प्रसि(गवर्नर कौन थे?
   उ0. डूप्ले।
10. भारत में किन्हीं दो फ्रांसीसी बस्तियों के नाम लिखो?
    उ0. पांडिचेरी तथा चन्द्रनगर।

11. कर्नाटक के तीसरे युद्ध में किस यूरोपिय जाति की विजय हुई?

उ0. अंग्रजों की।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. कोलम्बस किस देश का निवासी था?

(क) पुर्तगाल (ख) स्पेन (ग) इंग्लैण्ड (घ) फ्रांस

उ0. (ख) स्पेन

2. यूरोप से भारत के समुद्री मार्ग की खोज किसने की?

(क) वास्को डि गामा (ख) कोलम्बस (ग) डियाज (घ) सर टाम्स रो

उ0. (क) वास्कोडिगामा

3. 1579 में समुद्री मार्ग द्वारा संसार की परिक्रमा करने वाला नाविक था?

(क) कोलम्बस (ख) वास्कोडिगामा (ग) ड्रेक (घ) क्लाईव

उ0. (ग) ड्रेक।

4. भारत में सबसे अन्त में आने वाली यूरोपीय जाति थी?

(क) अंग्रेज (ख) फ्रांसीसी (ग) डच (घ) पुर्तगाली

उ0. (ख) फ्रांसीसी

5. इंग्लैण्ड के सम्राट चार्ल्स द्वितीय को अपनी पुर्तगाली पत्नी से दहेज में मिला?

(क) ब्रसील (ख) दमन (ग) बम्बई (घ) गोवा

उ0. (ग) बम्बई

6. अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में सर्वप्रथम इस दुर्ग की स्थापना की?

(क) फोर्ट विलियम (ख) उगली फोर्ट (ग) फोर्ट सेन्ट जार्ज (घ) पटना फोर्ट

उ0. (ग) फोर्ट सेन्ट जार्ज।

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	पुर्तगाली जहाज का चालक जो 1498 ई. में कालीकट पहुंचा	1.	डप्ले
2.	चिन्सुरा एवं कोचीन पर अधिकार करने वाली युरोपीय शक्ति	2.	राबर्ट क्लाईव
3.	अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा निर्मित भारत में प्रथम दुर्ग	3.	डच
4.	दक्षिण भारत में फ्रांसीसी कम्पनी कर प्रमुख बस्ती	4.	वास्कोडिगामा
5.	शूरवीर अंग्रेज सेनानायक जिसने कर्नाटक के दूसरे युद्ध का रूख अंग्रजों के पक्ष में बदल दिया	5.	पांडिचेरी
6.	सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी नेता जिसका कर्नाटक के दूसरे युद्ध के परिणामस्वरूप पतन हुआ।	6.	फोर्ट सेंट जार्ज

उत्तर : 1 (4), 2 (3), 3(6), 4 (5), 5 (2), 6 (1)।

अध्याय-10

भारत में यूरोपीय शक्तियों का आगमन
(Advent of European Powers in India)

भारत में यूरोपीय शक्तियों का आगमन एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। कौन जानता था कि व्यापार करने के उद्देश्य से आने वाली पुर्तगाली, अंग्रेजी, तथा फ्रांसीसी जातियाँ एक दिन यहाँ के वास्तविक स्वामी बन जाएंगे।

पुर्तगाल

सर्वप्रथम भारत पहुँचने वाले यूरोपिंया पुर्तगाली थे। पुर्तगाल का शासक प्रिंस हैनरी सुदूर प्रदेशों तथा नये समुद्री मार्ग की खोज के पक्ष में था। इसके लिए उसने पुर्तगाल में जहाज चालकों के लिए विशेष प्रकार के स्कूल खोले जहाँ पर नाविक बनने की शिक्षा तथा प्रोत्साहन दिया जाता था। प्रिंस हैनरी के पश्चात् भी साहसी पुर्तगाली नाविकों ने अपनी गतिविधियाँ जारी रखी। 1486 में पुर्तगाली कप्तान बारथोलियों डायज ने प्रसिद्ध अनारीप की खोज की जिसका पुर्तगाल के शासक जॉन ने आशा अन्तरिप नाम रखा। इस समय तक स्पेन ने भी कई नये समुद्री मार्ग ढूंढ लिये थे। अतः समुद्री शक्ति को लेकर दोनों देश एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगे। अन्त में पोप अलेगजेण्डर छठे की मध्यस्थता से एक फैसला हुआ कि पूर्वी दुनिया के देश पुर्तगाल के अधिकार में तथा पश्चिमी देश पुर्तगाल के अधिकार में। इसके तहत पुर्तगालियों को पूर्व से व्यापार करने तथा भारत में अपनी बस्तियाँ बसाने का अधिकार मिल गया।

वास्कोडिगामा

वास्कोडिगामा पुर्तगाल का साहसी तथा अनुभवी नाविक था अपने सम्राट की आज्ञानुसार 8 जुलाई 1497 ई. में तीन समुद्री जहाज तथा 120 व्यक्तियों के सथा भारत की खोज करने लिस्वन बन्दरगाह से चला आशा अन्तरीप का चक्कर काट कर वह 20 मई 1498 ई. को भारत के पश्चिमी तट पर कालीकट के स्थान पर पहुँच गया। वहां के राजा जमोरिन ने उसका शानदार स्वागत किया और उसे वहां रहने की आज्ञा दे दी। शीर्घ ही पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट पर अपनी कुछ कोठियां स्थापित कर ली। भारत में पुर्तगालियों के आने से अरब व्यापारी खुश नहीं हुए। उन्होंने पुर्तगालियों के अत्याचारी व्यवहार के बारे में कई अफवाहें फैला दी। उनकी बातों में आकर जमेरिन ने पुर्तगालियों पर आक्रमण कर दिया परन्तु युद्ध में जमोरिन पराजित हुआ और पुर्तगालियों की शक्ति धीरे–धीरे बढ़ने लगी।

फ्रांसिस्को अल्मेडा

1500 से लेकर 1505 ई. तक पूर्व से माल प्राप्त करने के लिए तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी अरबों के विरूद्ध कार्रवाई करने के लिये पुर्तगाल का शासक प्रति वर्ष एक जहाजी बेड़ा भेजने लगा। 1505 में फ्रांसिस अल्मेडा का भारत के पुर्तगाली प्रदेशों का गवर्नर बनाकर भेज दिया। भारत में रहकर उसने पुर्तगालियों की समुद्री शक्ति को बढ़ाया इससे भारत, चीन, लंका के साथ व्यापार में वृद्धि हुई। इसके साँथ उसने अरब व्यापारियों से छीन कर सारा व्यापार अपने हाथों में ले लिया। अल्मेडा दुर्ग विजय करने के पक्ष में नहीं था। 1509 को उसे पुर्तगाल वापिस बुला लिया गया मार्ग में आशा अन्तरीप के समीप उसके शत्रुओं ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार वह जीवित स्वदेश न लौट सका।

अल्बूकर्क

1509 में अल्बूकर्क को भारत के पुर्तगाली प्रदेशों का वायसराय बना कर भेजा। वह बड़ा ही सूझ–बूझ वाला व्यक्ति था तथा अल्मेडा की समुद्री नीति में विश्वास नहीं रखता था। उसने 1510 ई. में गोवा पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया जो भारत में पुर्तगाली प्रदेशों की राजधानी बन गई। गोवा को केन्द्र बनाकर उन्होने भारत के समस्त पश्चिमी तट पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार उसने दक्षिण पूर्वी एशिया में मलक्का पर अधिकार कर लिया और वहां एक दुर्ग का निर्माण किया उसने चीन के दक्षिण तट पर मकाओं में बस्ती स्थापित की। इसके अतिरिक्त उसने कोलम्बों और मलाया में शस्त्र बनाने के कारखाने स्थापित किए। राजा जमोरिन की आज्ञा से उसने कोचीन में एक दुर्ग का निर्माण भी कराया। 1515 में उसकी मृत्यु हो गई।

अल्बुकर्क के उत्तराधिकारियों के अधीन पुर्तगालियों की शक्ति का विकास हुआ। 1534 ई. में उन्होंनें बसीन पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने, सालसेट, चोल, नागपट्टम, हुग्ली, चिट गाँव में भी अपनी बस्तियाँ स्थापित की। पुर्तगालियों की बढ़ती शक्ति को देखकर बीजापुर और अहमदनगर के सुल्तानों ने पुर्तगालियों की राजधानी गोवा पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगलियों ने उनके अनेक आक्रमण को असफल बना दिया।

पुर्तगालियों का पतन

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुर्तगाली शक्ति का पतन हो गया। धीरे–धीरें उनके प्रदेश और व्यापार उनके हाथों से जाता रहा। इसके अनेक कारण थे –

1. 1580 में स्पेन ने पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया और पुर्तगाली व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया।
2. भारत में शक्तिशाली मुगल साम्राज्य स्थापित हो जाने के कारण पुर्तगालियों का विस्तार नहीं हो सका। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने पुर्तगालियों को बुरी तरह हराया और हुग्ली से निकाल दिया।
3. युरोप में इंग्लेण्ड जैसे प्रोस्टेन्ट देशों की समुद्री शक्ति बहुत बढ़ गई। उन्होंने पोप के आदेश की परवाह नहीं की और पूर्व में पुर्तगाल को हराकर भारत तथा पूर्वी देशों में अपनी शक्ति स्थापित कर ली।
4. दक्षिण अमेरिका में ब्राजील की खोज भी पुर्तगालियों के पतन का एक और कारण था। अब पुर्तगालियों ने अपना ध्यान ब्राजील की ओर देना आरम्भ कर दिया धीरे–धीरे वे अपनी भारतीय बस्तियों की ओर उदासीन हो गये।
5. पुर्तगाली व्यापार के साथ–साथ लूटमार तथा डाके द्वारा भी धन इक्कठ्ठा करते थे। जिस कारण वे पूर्व के लोगों में बहुत बदनाम हो गये।
6. 1556 ई. में कालीकट के यु(के परिणामस्वरूप विजय नगर का पतन हो गया। इस कारण पुर्तगालियों को बड़ी हानि पहुंची क्योंकि एक बड़ी मण्डी उनके हाथ से जाती रही।

अंग्रेज

1578–80 में फ्रांसिस ड्रेक नामक एक अंग्रेज नाविक ने सारे एशिया का सफलता पूर्वक चक्कर लगाया और वह आशा अन्तरीप होता हुआ इंग्लैण्ड वापस लौट गया। उसकी इस यात्रा से पूर्व के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना बढ़ गई। 1588 में अंग्रेज ने स्पेन के प्रसिद्ध जंगी बेड़े आरमेज को पराजित कर दिया जिसके बारे में वह समझा जाता था कि इसे कोई नहीं हरा सकता। इस विजय से अंग्रजों की समुंद्री शक्ति पर धाक जम गई। 1591 ई. में रैल्प फीच नामक एक अंग्रेज व्यापारी भारत, बर्मा, आदि पूर्वी देशों की यात्रा की। उसने वापस जाकर अपने देशवासियों को पूर्व से अति लाभदायक व्यापार के बारे में सम्भावना बता कर एक नया उत्साह पैदा कर दिया। परिणामस्वरूप अंग्रेज व्यापारी इस व्यापार के प्रति अधिक उत्सुक हो उठे। अन्तः 31 दिसम्बर 1600 ई. को लन्दन के 100 मुख्य व्यापारियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की महारानी एलिजाबेथ ने भी इस की अनुमति दे दी। इसका नाम "The Governor and Company of Merchants of London Trading into the East Indies" रखा गया।

हाकीन्ज तथा थामस रो के मिशन

सर्वप्रथम अंग्रजों ने अपना ध्यान दक्षिण पूर्व में फैले द्वीपों की ओर दिया। लेकिन वहां पर डचों की स्थिति पहले से ही मजबूत बनी हुई थी उन्होंने अंग्रजों को पाँव नहीं जमाने दिए। इसलिए अंग्रेजों ने अपना सारा ध्यान भारत की ओर दिया। सर्वप्रथम 1609 ई. में विलियम हाकिन्ज को भारत भेजा। वह सूरत बन्दरगाह पर उतरा। वहाँ से आगरा पहुंचकर उसने मुगल सम्राट जहांगीर से भेंट की। जहांगीर के हाकिन्ज का शानदार स्वागत किया और अंग्रजों को सूरत में एक कारखाना खोलने की इजाजत दे दी परन्तु सूरत के व्यापारियों के विरोध के कारण उसने अंग्रेजों को व्यापारिक रियायतें देने से इन्कार कर दिया। 1611 ई. में हाकिन्स निराश होकर वापस अपने देश लौट गया। 1612 ई. में कम्पनी ने सर थामस बैस्ट की अध्यक्षता में जहाजों का एक बेड़ा भेजा। जब इस बेड़े से अंग्रेज सूरत के निकट स्वाली होल नामक स्थान पर उतरे तो सशस्त्र पुर्तगालियों ने उन पर एकाएक आक्रमण कर दिया। इस स्थान पर पुर्तगालियों की पराजय हुई। परिणाम स्वरूप अंग्रजों के लिए भारत में व्यापार करने की सम्भावनाएँ खुल गई। 1615 ई. में सर थामस रो इंग्लैण्ड के शासक जेम्स प्रथम की ओर से जहांगीर के दरबार मे राजदूत बनकर आया तथा मुगल सरकार से अंग्रजों के लिए सूरत में शान्तिपूर्वक व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त करने में सफल हो गया।

सर थामस रो के मिशन के पश्चात कम्पनी के व्यापार का बड़ी तेजी से विस्तार होने लगा अंग्रेजों ने मद्रास, उड़ीसा तथा बंगाल में अनेक कारखाने स्थापित कर लिए। उन्होंने 1611 ई. में गोलकुण्डा राज्य में मसौलि पट्टम में एक कारखाना खोला। परन्तु वहां उन्हें डच अधिकारी तथा स्थानीय कर्मचारी बहुत परेशान करते थे। इसलिए 1625 ई. में पुलीकट की डच बस्ती से दूर स्थित अमरगांव में एक अन्य कारखाना खोल लिया। 1633 में अंग्रेजों ने पूर्वी भारत में हरिहर पुर तथा बाला सौर में अपने कारखाने खोले।1640 ई. में फोर्ट सेन्ट जार्ज नामक दुर्ग का निर्माण हुआ। इस दुर्ग के लिए अंग्रेज अधिकारी फ्रासिसडे ने चन्द्रगिरी के शासक से भूमि प्राप्त की थी। इसी दुर्ग के आस–पास मद्रास के प्रसिद्ध नगर की नीवं पड़ी। 1651 ई. में हुगली पटना तथा कासिम बाजार नामक स्थानों पर भी अंग्रेज कम्पनी ने अपने कारखाने स्थापित किए।

1660 से 1680 तक के समय में कम्पनी के व्यापार और धन में बहुत वृद्धी हुई। इंग्लैण्ड के शासक चार्लस द्वितीय ने कई चार्टरों द्वारा कम्पनी के अधिकार और शक्तियां बढ़ा दी। कम्पनी को सिक्के जारी करने दुर्ग बनाने, मुक्कदमों का फैसला करने, युद्ध एवं सन्धियां करने के अधिकार दे दिये गये। चार्लस ने 1688 ई. में बम्बई का प्रदेश जो उसे अपनी पूर्तगाली पत्नी केथराईन के दहेज में मिला था भी कम्पनी को दे दिया। जब सूरत मराठों के आक्रमणों के कारण सुरक्षित न रहा तो 1687 ई. में बम्बई पश्चिमी तट पर अंग्रेज कम्पनी का मुख्य केन्द्र बन गया। 1688–1690 ई. के दौरान अंग्रेजों को मुगलों से युद्ध करना पड़ा। अंग्रेज मुगलों का सफलतापूर्वक विरोध न कर सके अतः विवश होकर 1690 में उन्होंने मुगलों से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार मुगल सरकार को युद्ध के हर्जाने के रूप में 1.12 लाख रू प्राप्त हुए। 1691 ई. में अंग्रेज को 300 वार्षिक राशि के बदले बंगाल में बिना चुंगी कर दिये व्यापार करने का अधिकार दिया गया। 1696–98 ई. में अंग्रेज ने सुतानूती–कालीकता जो बाद में कलकत्ता के नाम से प्रसिद्ध हुआ एवं गोविन्द पुरी की जमींदारी प्राप्त की। उन्होंने सुताश्ती में एक दुर्ग बनवाया जिसका नाम फोर्ट विलियम रखा गया। 1700 ई. में यह बंगाल की प्रजीडेन्सी का मुख्य कार्यालय बन गया।

सितम्बर 1698 में इंग्लैण्ड में भारत के साथ व्यापार करने के लिए एक नई कम्पनी की स्थापना की गई जिसका नाम "The English Company Trading to East Indies" रखा गया। यह कम्पनी 1857 तक भारत में बनी रही।

फ्रांसीसी

फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना

फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना 1664 ई. में हुई उसका नाम "कम्पनी डे इंडीज ओरियन्टल" रखा गया। इसे मेडागास्कर में उपनिवेश स्थापित करने और वहां 50 वर्ष तक व्यापार करने का अधिकार मिल गया। वहां पर कम्पनी असफल रही लेकिन वह मारीसिस में अपने पैर जमाने में सफल रही।

फ्रांसीसी के भारत में कारखाने एवं बस्तियां

भारत में सबसे पहला फ्रांसीसी कारखाना 1688 ई. में सूरत में खोला गया। अगले ही वर्ष मछलीपट्टनम में एक और कारखाना खोला गया। इस कारखाने के लिए भूमि गोलकुण्डा के सुल्तान ने दी। इन दोनों फ्रांसीसी बस्तियों के लिए फ्रांसीसकेरन को अध्यक्ष नियुक्त किया गया परन्तु बाद में उसे वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर फ्रीस मार्टीन को अध्यक्ष बनाया गया। 1673 ई. में फ्रांसीस मार्टीन ने तंजोर एवं धनटिका के गर्वनर शेरखाँ लोधी से कुछ भूमि प्राप्त की इस भूमि पर 1674 ई. में पान्डिचेरी नगर की नींव रखी गई। जो बाद में फ्रांसीसी भारत की राजधानी बनी। इसी वर्ष फ्रांसीसियों ने बंगाल के गर्वनर साईस्ताखाँ से कुछ भूमि ली जिस पर 1690–92 ई. में चन्द्रानगर का कारखाना स्थापित किया गया। 1693 ई. में डचों ने फ्रांसीसी बस्ती पर अधिकार कर लिया परन्तु छः वर्ष पश्चात यह बस्ती फ्रांसीसियों को लौटा दी गई।

1706 ई. में फ्रांसीस मार्टीन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद 14 वर्षों तक भारत में फ्रांसीसी कम्पनी को काफी आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा उन्हें सूरत और मछलीपट्टनम के कारखाने बन्द करने पड़े। ऐसा फ्रांस की गृह स्थिति के कारण भी हुआ। जब फ्रांस की स्थिति में सुधार हुआ तो फ्रांसीसी ईस्ट इंण्डिया कम्पनी का पुर्नगठन किया गया तथा इसना नाम Perpetual Company of the Indies रखा गया। 1725 ई. में मालाबार तट पर माही और 1739 में कारोमण्डल तट पर कारीकल में भी इसने फ्रांसीसी बस्तियाँ स्थापित कर ली। डूमा और डूप्ले जैसे योग्य गर्वनरों के नेतृत्व में फ्रांसीसी कम्पनी की बड़ी उन्नति हुई। इनकी इस बढ़ती हुई शक्ति के कारण अंग्रेज कम्पनी के साथ इनका झगड़ा होना स्वाभाविक ही था।

अंग्रेज फ्रांसीसी संघर्ष

भारत में व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा को लेकर अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेज और फ्रांसीसियों में संघर्ष चल पड़ा। इस समय यूरोप में भी अंग्रेज तथा फ्रांसीसी एक दूसरे के शत्रु थे। उनकी इस शत्रुता का प्रभाव भारत में रहने वाले फ्रांसीसियों तथा अंग्रेजों पर भी पड़ा। दक्षिण भारत में कर्नाटक नामक प्रदेश में इन दोनों की बस्तियां थी। और यहीं पर इनमें आपस में भी युद्ध हुए जिन्हें कर्नाटक के युद्धों के नाम से जाना जाता है।

कर्नाटक का प्रथम युद्ध (1746–1748 ई.)

कारण

1. **व्यापारिक शत्रुता** : अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में गहरी व्यापारिक शत्रुता थी। वे अपने व्यापार का अधिक से अधिक विस्तार करना चाहते थे। इसके साथ–साथ वे एक दूसरे की बढ़ती हुई शक्ति से ईर्ष्या भी करते थे। इस प्रकार उनकी इस व्यापारिक शत्रुता ने संघर्ष को बढ़ावा दिया।
2. **कर्नाटक की स्थिति** : कर्नाटक दक्षिण भारत का एक प्रान्त था जिसकी राजधानी अरकाट थी। कर्नाटक के राज्य में उस समय प्रायः अशान्ति तथा अव्यवस्था रहती थी। और उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़े होते रहते थे। अंग्रेज तथा फ्रांसीसी दोनों कर्नाटक में आन्तरिक हस्तक्षेप चाहते थे। यह भी कर्नाटक के प्रथम युद्ध का मुख्य कारण बनी।
3. **आटूया में उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध** : 1744 ई. में आटूया का उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में अंग्रेज तथा फ्रांसीसियों में एक दूसरे के विरोधी के रूप में भाग लिया जब इसका समाचार भारत पहुंचा तो दोनों पक्षों ने एक दूसरे के प्रति यूद्ध की तैयारियां आरम्भ कर दी।

घटनाएँ

मद्रास की लड़ाई और अंग्रेजों की हार

1745 में एक ब्रिटिश बेड़ा कर्नाटक के तट पर पहुंचा। इससे घबरा कर डूप्ले ने फ्रांसीसी बस्ती मारीशस के गर्वनर लाबुर्दोन को समुद्री सहायता के लिए लिख दिया। लाबुर्दोन अपनी सेना सहित जुलाई 1746 ई. में कारोमण्डल के तट पर आ पहुंचा, उसने अंग्रेज अधिकारी पेटन को जल युद्ध में पराजित करके लंका की ओर भगा दिया। मद्रास के अंग्रेज गर्वनर मार्स ने कुछ समय तक मुकाबला किया लेकिन उसने भी हथियार डाल दिया।

मद्रास के प्रश्न पर लाबुर्दोन व डुप्ले में मतभेद हो गया। डुप्ले मद्रास पर स्थायी रूप से अधिकार रखना चाहता था लेकिन लाबुर्दोन कुछ धन लेकर इसे वापस अंग्रेजों को सौंपना चाहता था। अन्त में उसने अंग्रेजों से 400,000 पौंड लेकर उन्हें लौटा दिया और स्वयं वापस चला गया। उसके चले जाने के तुरन्त पश्चात डुप्ले ने मद्रास पर अधिकार कर लिया।

1. **अडियार का युद्ध** : फ्रांसीसियों ने कर्नाटक नवाब को यह वचन दिया था कि वह मद्रास को विजय करके उसे सौंप देंगे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। परिणामसवरूप नवाब ने अपने पुत्र महफुज खाँ के नेतृत्व में फ्रांसीसियों के विरूद्ध सेना भेजी। मद्रास के समीप अडियार के स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ इसमें फ्रांसीसी विजयी रहे। मद्रास फ्रांसीसियों के हाथ में ही रहा।

2. **पाण्डीचेरी का घेरा और विजय करने का असफल प्रयत्न** : मद्रास पर विजय करने के पश्चात डुप्ले ने सेन्ट डेविड दुर्ग जो पाण्डीचेरी के 12 मील दक्षिण में था घेर लिया। उन्होंने यह घेरा 18 मास तक डाले रखा परन्तु वह इस पर अधिकार करने में असफल रहे। इसका कारण यह था कि इस समय तक अंग्रेजों को इंग्लैण्ड से सहायता पहुंच चुकी थी सहायता मिलने पर अब अंग्रेजों ने पांडिचेरी का घेरा डाल दिया। फ्रांसीसियों ने डुप्ले के नेतृत्व में डटकर शत्रु का मुकाबला किया। विवश होकर अंग्रेजों को घेरा उठाना पड़ा। यह स्पष्ट रूप से फ्रांसीसियों की विजय और अंग्रेजों की पराजय थी।

3. **एक्स–ला–रोपल की सन्धि** : जिस समय अंग्रेज और फ्रांसीसी एक दूसरे के विरूद्ध युद्ध में लगे हुए थे उसी समय यह समाचार भारत में पहुंचा कि यूरोप में इंग्लैण्ड तथा फ्रांस का युद्ध समाप्त हो गया और दोनों में एक्स–ला–रोपल की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार भारत में अंग्रेजों को मद्रास तथा अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को उत्तरी अमेरिका में स्थित लुईस वर्ग लौटा दिया। डुप्ले को इस सन्धि से गहरा धक्का लगा क्योंकि भारत में फ्रांसीसी राज्य स्थापित करने का उसका स्वपन टूट गया।

युद्धका महत्त्व

भारत के इतिहास में कर्नाटक के प्रथम युद्ध का बड़ा महत्व है। सर्वप्रथम इस युद्ध में यह स्पष्ट कर दिया भविष्य में उसी की विजय होगी जिसकी समुद्री जल शक्ति अधिक होगी। दूसरे इस युद्ध में सिद्ध हो गया कि यूरोपिय युद्ध प्रणाली भारतीय युद्ध प्रणाली से कहीं अधिक कुशल है। क्योंकि अडियार के युद्ध में थोड़ी सी फ्रांसीसी सेना ने नवाब की विशाल सेना को हरा दिया। तीसरे इस युद्ध में डुप्ले की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धी हुई। चौथे इस युद्ध में फ्रांसीसी और अंग्रेज को भारतीयों की दुर्बलता का पता चल गया। इस दुर्बलता को देखकर ही उन्होंने भारत में अपना राज्य स्थापित करने का प्रोत्साहन मिला पांचवें इस युद्ध से अंग्रेज तथा फ्रांसीसी दोनों ही असन्तुष्ट रहे और उनकी आपसी शत्रुता और बढ़ गई और वे युद्ध की तैयारियों में लग गये।

कर्नाटक का दूसरा युद्ध : 1748 से 1754 ई.

कारण

1. कर्नाटक के प्रथम युद्ध के समाप्त होने के शीर्घ पश्चात अंग्रेज तथा फ्रांसीसियों में फिर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध को इतिहास में कर्नाटक का दूसरा युद्ध कहा गया है। इस युद्ध का वास्तविक कारण अंग्रेज और फ्रांसीसियों की पिछली शत्रुता थी। दोनों ही एक दूसरे के विरोधी थे। तथा एक दूसरे की शक्ति को नष्ट कर देना चाहते थे। अतः दोनों में युद्ध होना अनिवार्य था।

2. कर्नाटक के प्रथम युद्ध में यूरोप वासियों को भारतीय सेना की कमजोरियों का पता चल गया। अतः अब उन्होंने किसी डर के भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

   1748 ई. में कर्नाटक और हैदराबाद में उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध छिड़ गए। कर्नाटक में चन्दा साहब ने जो कर्नाटक के पहले नवाब दोस्त अली का दामाद था। अरकाट की राजगद्दी को प्राप्त करने के लिए नवाब अनवरूद्दीन से झगड़ा कर दिया। लगभग इसी समय हैदराबाद के निजाम आसफ जहाँ निजाम–उल–मुल्क की मृत्यु हो गई जिसके कारण

उनके पुत्र नासिर जंग तथा पोते मुजफ्फर जंग से झगड़ा हो गया। डुप्ले इस स्थिति से लाभ उठाना चाहता था। अतः उसने चन्दा साहब और मुजफ्फर जंग दोनों से गुप्त सन्धि कर ली। सर्वप्रथम तीनों ने मिल कर अगस्त 1749 ई. म अनवरूद्दीन को युद्ध में हरा दिया और उसे मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार कर्नाटक पर चन्दा साहब का अधिकार हो गया। अब अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अनवरूद्दीन के पुत्र मुहम्मद अली तथा नासिर जंग की सहायता करने का निश्चय किया इससे दोनों में फिर युद्ध छिड गया।

घटनाएँ

नासिर जंग तथा अंग्रेजों की विजय

1756 ई. में जब कर्नाटक का नया नवाब चन्दा साहब तंजौर पर आक्रमण में लगा हुआ था तो नासिर जंग ने एक विशाल सेना सहित उसके प्रदेशों पर धावा बोल दिया। मेजर लारेंस के अधीन अंग्रेजों ने उसका साथ दिया। चन्दा साहब को तन्जोर का घेरा तुरन्त उठाना पड़ा और उसने पाण्डीचेरी में शरण ली, अब डुप्ले ने नासिर जंग के विरूद्ध प्रतिद्वन्द्वी मुजफ्फर जंग की सहायता करने के लिए फ्रांसीसी सेना को भेजा। परन्तु इस युद्ध में मुजफ्फर जंग बुरी तरह पराजित हुआ और उसे बन्दी बना लिया गया।

मुजफ्फर जंग की पराजय से डुप्ले को बहुत दुख हुआ। उसने नासिर जंग को कुचलने के लिए छल व बल दोनों से काम लिया। उसने एक और सेना का पुनः गठन किया और दूसरी ओर एक षडयंत्र द्वारा दिसम्बर 1751 में नासिर जंग का वध करवा दिया। मुजफ्फर जंग को कैद से मुक्त करवा कर हैदराबाद का सूबेदार घोषित कर दिया। यह डुप्ले की बहुत बड़ी सफलता थी चन्दा साहब डूप्ले की इच्छा के अनुसार कर्नाटक का नवाब मान लिया गया।

1751 में मुजफ्फर जंग का उसके एक सेवक ने वध कर दिया। फ्रांसीसी कमांडर बुर्सी जो इस समय उसके साथ न था न बड़ी सूझ–बूझ से काम लिया और नासिर जंग के छोटे भाई सलाबत जंग को हैदराबाद के सिंहासन पर बैठा दिया। उसके बदले में सलाबत जंग ने उत्तरी सरकार का प्रेदश फ्रांसीसियों को दे दिया। इसके कारण सारे दक्षिण में फ्रांसीसियों का प्रभाव स्थापित हो गया।

त्रिचनापल्ली और आरकट का घेरा

मद्रास के अंग्रेज गर्वनर सोडंर्स ने चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब मानने से इन्कार कर दिया। उसने फ्रांसीसियों की बढती हुई शक्ति को कम करने के लिए मुहम्मद अली को उनके विरूद्ध भड़काया और कर्नाटक का नवाब बनने में सहायता करने का वचन दिया। डुप्ले पहले ही चन्दा साहब का साथ दे रहा था।

इसी समय एक शूरवीर और समझदार अंग्रेज जनरल राबर्ट क्लाईव के हाथों मे सेना की कमान आ गई। जब चन्दा साहब सेना सहित त्रिचनापल्ली के युद्ध में गया हुआ था तो उसने उसकी अनुपस्थिति में एक छोटी सी सेना सहित आरकट पर आक्रमण कर दिया और उस पर विजय प्राप्त की। चन्दा साहब ने अपनी आधी सेना त्रिचनापल्ली से आरकट पर पुनः अधिकार करने के लिए भेजी। क्लाईव ने 53 दिनों तक वीरता से मुकाबला किया। इतने में त्रिचनापल्ली में मुहम्मद अली तथा [illegible] की संयुक्त सेना ने शत्रुओं को पराजित कर दिया। चन्दा साहब भाग निकला परन्तु पकड़ा गया और उसका वध कर दिया गया। इसके पश्चात मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब बना दिया गया। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर एक तरह अंग्रजों का अधिकार हो गया।

डुप्ले का वापस बुलाना : 1754 ई. में डुप्ले को वापस बुला लिया गया उसके पश्चात उनके उत्तराधिकार गाडयू ने अंग्रेजों से सन्धि के लिए बातचीत आरम्भ कर दी और 1755 ई. में पांडिचेरी की सन्धि के साथ युद्ध समाप्त हो गया।

पांडिचेरी की सन्धि

पांडिचेरी की सन्धि अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच 1755 ई. में हुई। इस सन्धि की अग्रलिखित शर्तें थी।

1. दोनों कम्पनियों ने यह स्वीकार कर लिया की वे भारतीय शासकों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।
2. इस सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों ने एक दूसरे के प्रदेश लौटा दिए।

3. दोनों ने वचन दिया कि वे नये दुर्ग नहीं बनायेंगे।
4. सलाबत जंग को दक्षिण का सूबेदार तथा मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब स्वीकार कर लिया गया।

महत्त्व

कर्नाटक का दूसरा युद्ध एक महत्त्वपूर्ण युद्ध था इस युद्ध में डूप्ले ने सब कुछ खो दिया जो उसने प्राप्त किया था और अंग्रेजों को सब कुछ मिल गया जिसके लिये व लड़े थे। इस सन्धि के कारण फ्रांसीसी के हाथों से बहुत सी जागीरें निकल गई परन्तु इसी समय सप्त वर्षीय युद्ध आरम्भ होने के कारण सन्धि की शर्तें पूर्ण रूप से लागू न हो सकी। इसलिए इस सन्धि का विशेष महत्त्व न रहा।

कर्नाटक का तीसरा युद्ध (1756–63 ई.)

अंग्रेज तथा फ्रांसीसियों के मध्य दो युद्ध हो चुके थे। परन्तु उनके सन्धि द्वारा जो शन्ति स्थापित हो गई थी वह अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी। 1756 ई. में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ गया जो 1763 ई. तक चलता रहा। इस युद्ध के परिणामस्वरूप कुछ समय पश्चात भारत में भी दोनों पक्षों में युद्ध शूरू हो गया।

घटनाऐं

1. **अंग्रेजों द्वारा बंगाल विजय** : 1757 ई. में अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को युद्ध में हरा दिया और बंगाल पर अपना अधिकार कर लिया। उन्होंने बंगाल में स्थित फ्रांसीसी बस्ती चन्द्र नगर पर भी अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार सारे बंगाल पर अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित हो गया।
2. **फ्रांसीसियों के सेन्ट डेविड पर अधिकार** : फ्रांसीसी जनरल काउंट–डि–लाली ने भारत पहुंचते ही फोर्ट सेन्ट डेविड को घेर लिया और शीघ्र ही उस पर अधिकार करने की योजना बनाई परन्तु उसने मद्रास विजय करने की योजना बनाई परन्तु उसे पांडिचेरी के गर्वनर डि–ऐक से कोई सहयोग प्राप्त न हो सका। इसके परिणाम स्वरूप लाली की कठिनाईयां और बढ़ गई। लाली को अपनी स्थिती सुधारने के लिए धन की आवश्यकता थी। अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने तंजौर को घेर लिया। वह तंजौर के राजा से धन प्राप्त करना चाहता था। परन्तु असफल रहा।
3. **मद्रास का घेरा** : तंजौर की असफलता के बाद लाली ने मद्रास पर आक्रमण करने का निश्चय किया। सहायता के लिये उसने बुसे को हैदराबाद से बुला लिया वास्तव में लाली की यह बहुत बड़ी राजनैतिक भूल थी। क्योंकि बुसे के हैदराबाद से आते ही उत्तरी संरकार पर कर्नल फॉ ने अधिकार कर लिया। इसके परिणाम स्वरूप भयभीत होकर सलाबत जंग भी अंग्रेजों से जा मिला। दिसम्बर 1758 में फ्रांसीसियों ने मद्रास को घेर लिया। परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य से कोई सफलता नहीं मिल सकी। फ्रांसीसियों की इस असफलता ने उनकी स्थिती को बहुत दुर्बल कर दिया। इसके पश्चात अंग्रेजों का पलड़ा भारी हो गया और फ्रांसीसी अपनी रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ा। विवश होकर 1759 ई. को उन्हें मद्रास का घेरा उठाना पड़ा।

वन्दीवास का युद्ध

मद्रास का घेरा उठा लेने के पश्चात फ्रांसीसियों की स्थिति दिन–प्रतिदिन खराब होती चली गई। छोटी–छोटी झड़पों में उनकी कई बाद हार हुई परन्तु जनवरी 1760 ई. में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच वन्दीवास नामक स्थान पर निर्णायक युद्ध हुआ। इस युद्ध में जनरल सर आयर कुट ने फ्रांसीसियों को बुरी तरह पराजित किया तथा बुसी को बन्दी बना लिया। वन्दीवास की विजय के पश्चात अंग्रेजों ने जिन्जी का दुर्ग अपने अधिकार में ले लिया और पांडिचेरी का घेरा डाल दिया। जनवरी 1761 ई. में अंग्रेजों ने पांडिचेरी को विजय कर लिया। लाली को बन्दी बना कर इंग्लैण्ड भेज दिया गया।

पैरिस की सन्धि 1763 ई.

1763 ई. में पैरिस की सन्धि द्वारा अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों में चल रहा सप्तवर्षीय युद्ध समाप्त हो गया। इसी के साथ ही भारत

में भी दोनों के बीच युद्ध समाप्त हो गया। इस सन्धि के अनुसार पांडिचेरी तथा चन्द्रनगर की बस्तियॉ फ्रांसीसियों को वापस दे दी गई। परन्तु उन्हें दुर्ग बनाने तथा सेना रखने का अधिकार नहीं दिया गया। इस प्रकार कर्नाटक के तीसरे युद्ध के पश्चात भारत में फ्रांसीसियों की शक्ति नाम मात्र ही रह गई। यहाँ फ्रांसीसी राज्य स्थापित होने की सम्भावना सदा के लिये समाप्त हो गई।

अंग्रजों की सफलता तथा फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

अंग्रेज फ्रांसीसी संघर्ष में फ्रांसीसियों की असफलता तथा अंग्रेजों की सफलता के निम्नलिखित कारण थे।

1. **अंग्रेजों की समुद्री शक्ति श्रेष्ठ होना** : अंग्रेजों की समुद्री शक्ति, फ्रांसीसियों से ज्यादा बेहतर थी। अंग्रेज अपने जहाजों द्वारा आवश्कता के अनुसार बंगाल तथा इंग्लैण्ड से रसद और सैनिक मंगवा लेते थे और पूरी तैयारी के बिना किसी कठिनाई के युद्ध करते थे। अंग्रेजों की श्रेष्ठ समुद्री शक्ति उनकी फ्रांसीसियों के विरूद्ध विजय का एक शक्तिशाली कारण सिद्ध हुई।
2. **अंग्रेज कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी होना** : अंग्रेजों की सफलता का एक अन्य कारण अंग्रेजी कम्पनी की आर्थिक दशा फ्रांसीसी कम्पनी की तुलना में बहुत अच्छी थी अंग्रेज कम्पनी लडाई के साथ–साथ व्यापार को भी बढ़ावा देती रही। कहते हैं कि कर्नाटक के युद्ध में अंगेजी कम्पनी ने अपने व्यापार को साढ़े तीन गुणा बढ़ा लिया। उनके सैनिकों को समय पर वेतन मिलता था और सभी प्रशासनिक कार्य सुचारू रूप से चलते थे। इस सबकी तुलना में फ्रांसीसी कम्पनी ने व्यापार की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जिसके कारण सदा धन का अभाव बना रहा और सैनिकों को समय पर वेतन भी नहीं मिलता था। आर्थिक तंगी के कारण उन्हें अन्ततः अंग्रेजों से पराजित होना पड़ा।
3. **अंग्रेजों के पास अच्छे व्यापारिक केन्द्र या बस्तियाँ होना** : भारत में अंग्रेजों के मुख्य व्यापारिक केन्द्र बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास थे और फ्रांसीसियों के माही, चन्द्रनगर और पांडिचेरी थे। व्यापारिक दृष्टि से अंग्रेजों के केन्द्रों का महत्त्व फ्रांसीसी केन्द्रो से कही अधिक था। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास बहुत बड़े व्यापारिक केन्द्र थे यहाँ से खूब धन कमाया जा सकता था। जब की माही चन्द्र नगर और पांडीचेरी साधारण सी मण्डियां थी यहां रहकर अधिक धन नहीं कमाया जा सकता था।
4. **अंग्रेजों का बंगाल पर अधिकार** : कर्नाटक के तीसरे युद्ध के आरम्भ में अंग्रेज ने बंगाल पर अधिकार कर लिया, जिससे उन्हें शत्रुओं को पराजित करने में बहुमूल्य सहायता मिली। बंगाल से उन्हें पर्याप्त मात्रा में धन तथा रसद मिलती रही।
5. **अंग्रेजों के योग्य सेनापति** : फ्रांसीसियों को पराजित करने में कई योग्य अंग्रेज सेनापतियों ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। लारेंस क्लाईव, फोर्ड, सर आयकुट आदि अंग्रेज सेनापति युद्ध कार्य में अत्यन्त निपुण थे उन सब में एक गुण यह भी था कि वे एक दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग से कार्य करते थे। इसके विपरीत डुप्ले तथा बुसी को छोड़कर फ्रांसीसियों के पास कोई सेनापति नहीं था।
6. **डुप्ले की वापसी** : फ्रांसीसी सरकार ने डुप्ले को वापस बुला कर बहुत भारी भूल की। वह एक योग्य गवर्नर भारत की स्थिति को भली भांति समझता था। वह जानता था कि भारत विजय की योजनाओं को किस प्रकार लागू करना है किन्तु उसके भारत वापस जाते ही सारी योजनाओं का अन्त हो गया।
7. **यूरोप की अवस्था** : उन दिनों यूरोप में भी युद्ध चल रहे थे। फ्रांस इन युद्धो में बुरी तरह उलझा हुआ था। इसलिए वह भारत में अपनी शक्ति बढ़ाने की तरफ ध्यान नहीं दे सका। दूसरी और इंग्लैण्ड इन युद्धों से अलग रहा जिससे उसकी जन शक्ति तथा धन सुरक्षित रहा। इंग्लैण्ड ने इन साधनों का प्रयोग भारत में किया और सफलता प्राप्त की।

अध्याय-11

बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार

(British Annexation of Bengal)

अंग्रेजों की भारत विजय की शुरूआत बंगाल से हुई। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही मुगल साम्राज्य में अशान्ति फैल गई और विभिन्न प्रदेश स्वतंत्र होने लगे। 1741 में बिहार का नायब सूबेदार अलीवर्दी खाँ बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के नायब सरफराज खाँ से विद्रोह कर उसे युद्ध में मारकर स्वयं समस्त प्रदेश का नवाब बन गया। अपनी स्थिती को और भी सुदृढ़ करने के लिए उसने सम्राट मुहम्मद शाह से बहुत से धन के बदले एक पुष्टि पत्र प्राप्त कर लिया। वह बड़ा योग्य और शक्तिशाली था। जब तक वह जीवित रहा बंगाल में किसी भी विदेशी शक्ति की सर उठाने की हिम्मत नहीं हुई, 1756 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसका दोहता सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना।

प्लासी का युद्ध 1757 ई.

युद्ध के कारण

अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। सिंहासन पर बैठते ही उसके अंग्रेजों से मतभेद हो गये जो 1757 तक निरन्तर बढते ही रहे। परिणाम स्वरूप 1757 में प्लासी के स्थान पर एक भयंकर युद्ध हुआ जिसके निम्नलिखित कारण थे।

1. **सिराजुद्दौला का उत्तराधिकार का झगड़ा** : अलीवर्दी खाँ का कोई पुत्र नहीं था उसकी तीन बेटियां थी जो उसके भाई के तीनों बेटों से ब्याही थी। अलीवर्दी खाँ ने अपने जीवन काल में ही अपनी छोटी बेटी के पुत्र सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। परन्तु इस बात को उसकी अन्य दोनों बेटियां और दामाद स्वीकार नहीं करते थे। अतः उसकी मृत्यु के साथ ही गद्दी के दो दावेदार और पैदा हो गए एक उसकी बेटी घसीटी बेगम तथा दूसरा उसका एक अन्य दोहता शोकत जंग। बंगाल के कुछ दरबारियों ने भी उनका पक्ष लेना आरम्भ कर दिया। ऐसे समय मे अंग्रेजों को भी बंगाल के आन्तरिक मामलों में दखल देने का मौका मिल गया।

2. **अंग्रेजों की शौकत जंग को सहायता** : सिराजुद्दौला के गद्दी पर बैठते ही उसके चचेरे भाई शौकत जंग ने उसके विरूद्ध विद्रोह कर दिया। क्योंकि वह बंगाल का नवाब बनने का इच्छुक था अंग्रेजों ने शौकत जंग की सहायता करनी आरम्भ कर दी इससे नवाब अंग्रेजों के विरूद्ध हो गया।

3. **अंग्रेजों द्वारा अपनी बस्तियों की किलाबन्दी** : अंग्रेज तथा फ्रांसीसियों ने अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात् अपनी–अपनी बस्तियों की किलेबन्दी आरम्भ कर दी। सिराजुद्दौला ने उन्हें ऐसा न करने को कहा। फ्रांसीसियों ने तो उनकी आज्ञा का पालन किया। किन्तु अंग्रेजों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया इस प्रकार अंग्रेजों और सिराजुद्दौला में विरोध और बढ़ गया।

4. **व्यापारिक अधिकारों का अनुचित प्रयोग** : 1717 ई. में मुगल सम्राट फरूरखसियर ने अंग्रेज कम्पनी को केवल 3000 वार्षिक कर के बदले में बंगाल बिहार और उड़ीसा के भागों में निःशुल्क व्यापार करने का अधिकार दे दिया। परन्तु कम्पनी के नौकरों ने इसका दुरूपयोग करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने दस्तक या अनुमति पत्र

भारतीय व्यापारियों को बेच दिये जिनके कारण अब वे सारे प्रान्त में मुक्त व्यापार करने लगे। इससे नवाब को काफी मात्रा में आर्थिक हानि होने लगी। अतः उसने अंग्रेजों के विरूद्ध कार्रवाई करने का निश्चय कर लिया।

5. **नवाब का कलकत्ता पर अधिकार तथा ब्लेक हॉल की दुर्घटना** : 4 जून 1756 को नवाब ने कासिम बाजार पर हमला कर दिया। 16 जून को वह कलकत्ता पहुंच गया। और बिना किसी खास विरोध के उसे अपने अधीन कर लिया। कलकत्ता के अंग्रेज गर्वनर रोजर ड्रेक ने कुछ अंग्रेज अधिकारियों के साथ भागकर फुलटा नामक जगह पर शरण ली और कलकत्ता का कार्यभार हालवेल नामक एक सैनिक अधिकारी पर छोड़ दिया। यहाँ पर ब्लेक हॉल नामक घटना का उल्लेख आवश्यक है। युद्ध की आम प्रणाली के अनुसार अंग्रेज बन्दियों को जिनमें स्त्रियाँ तथा बच्चे भी शामिल थे एक कक्ष में बन्द कर दिया गया। कहा जाता है कि 18 फुट लम्बे तथा 14 फुट 10 ईंच कक्ष में 146 बन्दियों को बन्द कर दिया। 20 जून को रात्रि को ये बन्द किए गये तथा अगले दिन प्रातः इनमें से केवल 23 व्यक्ति ही बच पाए। शेष गर्मी तथा घुटन के कारण मारे गये। बचने वालों में हालवेल भी एक था।

आधुनिक इतिहासकार इस ब्लैक हॉल घटना को सत्य नहीं मानते क्योंकि उनके विचार में अंग्रेज नवाब पर आरोप लगाकर अपना राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे। सर्वप्रथम इतने छोटे कमरे में 146 व्यक्तियों का आना ही कठिन है। तत्कालीन रिकार्डों से इस घटना का कोई उल्लेख नहीं मिलता। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार गुलाम हुसैन ने अपनी पुस्तक "सियार–उल–मुस्तेखरीन" में इस घटना का कोई वर्णन नहीं किया, न ही मद्रास कौंसिल की रिपोर्ट में इसका कोई उल्लेख है। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस घटना को नवाब के विरूद्ध युद्ध के लिए प्रचार का कारण बनाये रखा और अंग्रेज जनता का समर्थन प्राप्त कर लिया।

6. **अंग्रेजों का कलकत्ता पर पुनः अधिकार** : ज्यों ही कलकत्ता के पतन का समाचार मद्रास पहुंचा तो वहाँ के अधिकारियों ने एक सेना क्लाईव के नेतृत्व में बंगाल की ओर भेजी। उस समय सिराजुद्दौला कलकत्ता को अपनेएक सेनापति मानिक चन्द के अधीन छोड़कर शौकत जंग के विरूद्ध कार्यवाही कर रहा था। मनिक चंद को अंग्रेजों ने खरीद लिया इसलिए थोड़ी सी लड़ाई का दिखावा करके वह कलकत्ता छोड़कर भाग गया इस प्रकार 2 जनवरी 1757 को कलकत्ता पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो गया।

7. **अलीनगर की सन्धि फरवरी 1757 ई.** : इन हालात में सिराजुद्दौला को 9 फरवरी 1757 को अंग्रेजों के साथ अलीनगर की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों की पुरानी व्यापारिक सुविधाऐं लौटा दी गयी और उनको एक भारी रकम हर्जाने के रूप में मिली। सिराजुद्दौला ने अलीनगर की अपमानजनक सन्धि को कई कारणों से स्वीकार कर लिया। उसको इस बात की भनक मिल गई थी कि उसका दरबार षडयंत्रों आ अड्डा बन गया है और उसके अपने ही आदमी धोखा दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस समय उत्तर पश्चिम की ओर से बंगाल पर आक्रमण होने की आशंका थी। इस हालात में नवाब ने अंग्रेजों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना ही अधिक उचित समझा।

8. **चन्द्रनगर पर अधिकार** : उसी समय यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में ब्रिटेन और फ्रांस एक दूसरे के विरूद्ध लड़ रहे थे। इसका प्रभाव भारत में तुरन्त ही अंग्रेज फ्रांसीसी सम्बन्धों पर पड़ा। अंग्रेजों ने मार्च 1757 में चन्द्रनगर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इस समय सिराजुद्दौला को फ्रांसीसियों की सहायता करनी चाहिए थी लेकिन उसमें उच्च कोटि की राजनीतिज्ञता का सर्वथा अभाव था इसलिए वह कूटनीति की लड़ाई में क्लाईव से पिछड़ गया।

9. **सिराजुद्दौला के विरूद्ध षड्यंत्र** : फ्रांसीसियों का दमन करने के उपरान्त क्लाईव ने सिराजुद्दौला का विनाश करने के लिए षड्यंत्र रचना आरम्भ कर दिया। दुर्भाग्यवश उस समय भारत में भी देशद्रोहियों की कमी न थी। अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला के मुख्य सेनापति मीर जाफर और एक अन्य सेना नायक रादुर्लभ को अपने जाल में फांस लिया। मीर जाफर को नवाब बनाने का वचन दिया इसलिए वह विश्वासघात पर उतर आया। 4 जून 1757 को अंग्रेजों और मीर जाफर में एक गुप्त सन्धि हुई जिसके द्वारा यह निश्चय किया गया कि अंग्रेजों की सहायता से मीर जाफर को बंगाल

का नवाब बना दिया जायेगा। जिससे वह अंग्रेजों को कलकत्ता, ढाका तथा कासिम बाजार की किलेबन्दी की इजाजत देगा तथा समस्त फ्रांसीसी व उनकी बस्तियों को अंग्रेजों के हवाले कर देगा। अंग्रजों की सहायता के बदले मीर जाफर एक करोड़ रूपया कम्पनी को देगा तथा भविष्य में यदि उसे सैनिक सहायता की आवश्यकता पड़ेगी तो अंग्रेज उसकी सहायता करेंगे। सेना का व्यय नवाब को देना होगा। नवाब बनने में एक महीने के अन्दर मीर जाफर को ये शर्तें पूरी करनी होगी।

अंग्रेज और मीर जाफर के इस षड्यंत्र में अमीचन्द नामक एक धनी व्यापारी भी शामिल था। उसने अंग्रेजों को धमकी दी थी कि वे उसे तीस लाख रूपये तथा नवाब के कोष का पाँच प्रतिशत न देने का वचन देंगे तो वह सारे षड्यंत्र का भड़ाफोड़ कर देगा। क्लाईव ने इस अवसर पर बड़ी चालाकी से काम लिया। उसने उसके साथ दोहरी सन्धि की। सन्धि पत्र एक सफेद कागज पर लिखा गया जिसमें अमीचन्द की मांगों का उल्लेख था झूठा सन्धि पत्र लाल कागज पर लिखा गया जिसमें अमीचन्द की मांगों का उल्लेख नहीं था। जब नकली मसौदे का वाटसन के हस्ताक्षर से इन्कार कर दिया तो क्लाईव ने उस पर वाटसन के स्वयं जाली हस्ताक्षर कर दिये।

प्लासी का युद्ध

षड्यंत्र के पक्का हो जाने पर क्लाईव किसी बहाने की खोज करने लगा ताकि सिराजुद्दौला से युद्ध छेड़ा जा सके। शीर्घ ही उसने सिराजुद्दौला पर यह आरोप लगाया कि वह 9 फरवरी 1757 ई. को अलीनगर की सन्धि का उल्लंघन कर रहा है। और फ्रांसीसी तथा डचों से मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध षड्यंत्र कर रहा है। नवाब के इन्कार करने पर भी क्लाईव उसके विरूद्ध चढ़ आया। 22 जून को दोनों सेनाऐं एक दूसरे के आमने–सामने प्लासी नामक गांव के पास आ खड़ी हुई। परन्तु युद्ध अगले दिन 23 जून को हुआ। सिराजुद्दौला के पास कोई 50 000 सैनिक थे। जबकि क्लाई के पास केवल 3200 सैनिक थे। आरम्भ में क्लाईव भ्रम में पड़ गया क्योंकि क्लाईव की सेना बहुत ही कम थी। लेकिन साहस करके दोपहर बाद नवाब की सेना पर धावा बोल दिया। नवाब के कुछ वफादार सैनिकों ने घनघोर संग्राम किया थोड़ी ही देर मे क्लाईव की कायरता और अकुशला साफ दिखने लगी। लेकिन मीर जाफर और राय दुर्लभ के अधीन सेना ने युद्ध में कोइ भाग नहीं लिया और अपने स्वामी को धोखा दिया। अन्त में जब नवाब को होश आया तो वह देखकर घबरा गया कि उसके बड़े–बड़े सेना नायक विश्वासघात पर उतारू है। फिर क्या था अपने प्राणों को बचाने के लिए वह युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। देखते–देखते मैदान साफ हो गया और इस प्रकार थोड़ी सी लड़ाई से ही अंग्रेजों को विजय प्राप्त हो गई। अंग्रेजों के इस युद्ध में केवल 65 सैनिक काम आए जबकि नवाब के केवल 500 व्यक्ति इस युद्ध में मारे गये। सिराजुद्दौला पहले मुर्शीवाद पहुंचा और बाद में अपनी पत्नी को साथ लेकर पटना भागने में सफल हुआ, परन्तु वह शीघ्र ही पकड़ा गया और मीर जाफर के पुत्र मीरन द्वारा उसका वध कर दिया गया।

प्लासी के युद्ध का महत्त्व

प्लासी का युद्ध कोई बड़ा युद्ध नहीं था सच तो यह है कि इसे युद्ध की संज्ञा देना अनुचित होगा। जैसा कि के.एम. पणिकर कहते हैं। प्लासी की घटना एक हुल्लड़ और भगदड़ थी युद्ध नहीं। सैनिक सफलता की दृष्टि से इस युद्ध को महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यद्यपि नवाब की सेना अंग्रेजों की सेना से बहुत बड़ी थी परन्तु उसकी अधिकांश सेना ने युद्ध में भाग नहीं लिया था। अग्रेजों के 65 सैनिक मारे गये और सिराजुद्दौला के 500 सैनिक मीर जाफर और राय दुर्लभ दोनों ने युद्ध मैदान में सिराजुद्दौला को धोखा दिया। इस कारण नवाब की हार का कारण सैनिक दुर्बलता नहीं, बल्कि क्लाईव की कूटनीति और षड्यंत्र था। उसने जगत सेठ के भय और मीर जाफर की महत्त्वकांक्षा का पूरा लाभ उठाया। पणिकर के अनुसार "प्लासी का युद्ध एक ऐसा व्यापार था जिसमे बंगाल के धनवान सेठों और मीर जाफर ने नवाब को अंग्रेजों के हाथों बेच दिया। एक व्यापारिक कम्पनी के लिए इससे अच्छा सौदा और क्या हो सकता है।"

लेकिन बाद की घटनाओं पर नजर से प्लासी का युद्ध भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। इस युद्ध के दूरगामी परिणाम अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण हुए इसी कारण प्लासी के युद्ध की गणना भारत के प्रमुख निर्णायक युद्धों में की जाती है। इन तथ्यों के आधार पर हम इसके महत्त्व को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

1. **बंगाल पर अंग्रेजी नियंत्रण स्थापित होना** : प्लासी के युद्ध के पश्चात बंगाल की वास्तविक शक्ति अंग्रेजों के हाथों में आ गई। उन्होंने एक नवाब को हटा कर दूसरे नवाब को खड़ा कर दिया। परन्तु नया नवाब उनके हाथों की कठपुतली के अलावा कुछ नहीं था उसे अंग्रेजों के ईशारे पर नाचना था या पद छोड़ना था। इस प्रकार बंगाल के वास्तविक स्वामी अंग्रेज थे।

2. **कम्पनी को आर्थिक लाभ** : आर्थिक दृष्टिकोण से बंगाल का काफी महत्त्व था युद्ध में विजय के फलस्वरूप अंग्रेजों को खूब धन हाथ लगा। मीर जाफर ने नवाब बनने की खुशी में कम्पनी और क्लाईव को खूब जागीरें प्रदान की तथा युद्ध में सैनिकों को लूट से महान लाभ प्राप्त हुआ। इस कारण कम्पनी की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत हो गई जिससे आगे चलकर व्यापारियों की एक संस्था भारत के शासक के रूप में परिवर्तित हो गई। बंगाल के धनी प्रान्त पर अधिकार हो जाने से अंग्रेजों के साधानों में काफी वृद्धि हुई, और उन्हें अपनी प्रतिद्वन्दी का विनाश करने में सहायता मिली। इस प्रकार प्लासी के युद्ध से अंग्रेजी साम्राज्य नींव भारत में रख दी गई।

3. **अंग्रेजों के प्रदेशों में वृद्धि** : प्लासी के युद्ध के पश्चात अंग्रेजों के प्रदेशों में वृद्धि हुई नवाब मीर जाफर ने अंग्रेजी कम्पनी को कलकत्ता के समीप 24 परगने प्रदान किए। इन परगनों की जमींदारी से कम्पनी को काफी आय प्राप्त होने लगी।

4. **फ्रांसीसियों को पराजित करने में सहायता** : प्लासी के युद्ध ने दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य होने वाले संघर्ष में काफी प्रभाव डाला। बंगाल से अंग्रेजों को अपार धन राशि मिली, उसके कारण अंग्रेज अधिक शक्ति से फ्रांसीसियों का मुकाबला करने में सफल हुए। इसके अतिरिक्त बंगाल में अंग्रेजों को फ्रांसीसियों के विरूद्ध कार्यवाही करने का एक अच्छा ठिकाना मिल गया। बंगाल में वे बिना किसी रूकावट के अपना व्यापार चलाते रहे। इसलिए फ्रांसीसी कम्पनी की भांति अंग्रेज कम्पनी को अपनी सरकार के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ा। इसके अतिरिक्त बंगाल में विजयी रहने के कारण अंग्रेजों को उत्साह मिला उसके परिणामस्वरूप और अच्छी तरह फ्रांसीसियों का मुकाबला करने में सफल रहे।

5. **भारत विजय के कार्य में प्रेरणा** : अंग्रेजों को प्लासी की विजय के कारण जो शक्ति और तजुरबा प्राप्त हुआ उसने भारत के अन्य भागों पर अपने पाँव फैलाने के लिए प्रोत्साहित किया। अब अंग्रेज जान गये कि सिराजुद्दौला की भांति भारत के अन्य शासकों को जीतना कोई विशेष कठिन कार्य नहीं है। भारतीयों की विशाल सेनाएं युरोपियों की संगठित सेना के मुकाबले में कुछ नहीं है। इससे वह भारत के अन्य भागों का विजय करने की योजनाएं बनाने लगे।

मीर कासिम और अंग्रेज

1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् अंग्रजों ने सिराजुद्दौला के सेनापति मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। उसने बहुत सा धन देकर अंग्रेजों को खुश करना चाहा लेकिन फिर भी वह अंग्रेजों से छुटकारा न पा सका। राज्य की सारी शक्ति अंग्रेजों और विशेषकर क्लाईव के हाथ में थी। क्लाईव ने राज्य में शान्ति स्थापित करने तथा अलीमोहर को पराजित करने में उसकी मूल्यवान सहायता की।

1760 ई. में क्लाईव का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वापस इंग्लैण्ड चला गया उसने बंगाल में अंग्रेजों की शक्ति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। अतः उसके इंग्लैण्ड जाने से अंग्रेजों की स्थिति कमजोर पड़ गई। क्लाईव के चले जाने के पश्चात उसके उत्तराधिकारी और भी लालची हो गये और उन्होंने मीर जाफर से और अधिक धन मांगा। खजाना तो पहले ही खाली था। इसलिए अंग्रेजों की वह यह इच्छा पूरी न कर सका। उसकी आर्थिक दशा इतनी बिगड़ गई थी कि उसके पास सैनिकों को वेतन देने के लिए भी पर्याप्त धन न रहा। इस अवस्था में अंग्रेजों ने उसे गद्दी से उतारने का निश्चय किया। अन्त में 1760 में उसे एक अयोग्य शासक समझकर गद्दी से उतार दिया तथा उसके दामाद मीर कासिम को नया नवाब बनाया गया।

मीर कासिम से सन्धि 1760 ई.

मीर कासिम ने नवाब बनने से पहले ही सितम्बर 1760 ई. में अंग्रेजों से एक गुप्त सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने

मीर कासिम को बंगाल के सिंहासन पर बैठाना स्वीकार किया। इसके बदले में मीर कासिम ने अंग्रेजी कम्पनी को बर्दमान, मिदनापुर तथा चिटगांव के जिले देना स्वीकार किया। उसने कम्पनी को वह शेष धन भी देने का वचन दिया जो मीर जाफर ने कम्पनी को देना था इसके अतिरिक्त उसने दस हजार पौण्ड वैसीटार्ट को 21 हजार पौण्ड हालवेल को 25 हजार पौण्ड कलकत्ता कौंसिल के अन्य सदस्यों को देने का वचन दिया।

मीर कासिम बंगाल के शासक के रूप में

अलीवर्दी खां के अनुवर्ती नवाबों में मीर कासिम सबसे योग्य था। वह पहले ही पूर्णीया और रंगपुर के फौजदार के रूप में अपनी योग्यता दर्शा चुका था वह राजधानी मुर्शीदाबाद से मुंगेर ले गया। उसने नवाब बनते ही शासन प्रबन्ध को सुधारने के लिए कार्य करने आरम्भ किए। उसने मीर जाफर के अयोग्य कर्मचारियों को अपने पद से हटा दिया सेना का पुनः संगठन किया। सैनिकों को उनके वेतनों की रकम दी गई नये शस्त्र तैयार करने हेतु कारखाने खोले गये। मुंगेर में तौंपे तथा तोड़दार बन्दूक के बनाने का कारखाना खोला गया। नवाब ने राज्य की आर्थिक अवस्था को भी सुधारा और अंग्रेजों का ऋण चुका दिया। उसने बंगाल तथा बिहार, के जमींदारों की शक्ति का भी दमन किया। ऐसा योग्य शासक अंग्रेजों के हाथों में कठपुतली बनकर नहीं रह सकता था। अतः उसका अंग्रेजों के साथ झगड़ा अनिवार्य था।

मीर कासिम तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी

मीर कासिम का कम्पनी के साथ झगड़ा आन्तरिक व्यापार पर लगे करों को लेकर आरम्भ हुआ। बंगाल में कम्पनी को बिना चुंगी दिये ही व्यापार करने का विशेष अधिकार प्राप्त था परन्तु अब कम्पनी के कर्मचारी भी बिना कर दिये अपना व्यापार करने में लग गए थे। केवल यही नहीं वे भारतीय व्यापारियों से धन लेकर अपने दस्तक बेच देते थे। जब मीर कासिम को पता लगा तो उसने इस अनुचित व्यापार को रोकने का निश्चय किया। उसने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि वे अंग्रेज कर्मचारियों को बिना चुंगी दिये अपना निजी व्यापार करने से रोकें। जब कलकत्ता कौंसिल ने कोई कार्यवाही नहीं की तो वह क्रोधित हो उठा और मार्च 1763 में अपने सभी व्यापारियों से चुंगी कर लेना बन्द कर दिया इससे अंग्रेजों को बहुत हानि हुई वे नवाब के विरूद्ध हो गये। उन्होंने नवाब को चुंगी कर फिर से लगाने को कहा परन्तु उसने इन्कार कर दिया इससे दोनों में युद्ध छिड़ गया।

मीर कासिम की पराजय

एलिस जो पटना में अंग्रेजी कारखाने का अध्यक्ष था। उसने पटना पर अचानक आक्रमण करके इस पर अधिकार कर लिया। परन्तु नवाब की सेना ने शीघ्र ही पटना पर पुनः अधिकार कर लिया और 200 अंग्रेजों को बन्दी बना लिया। अतः मीर कासिम और अंग्रेजों में युद्ध छिड़ गया अंग्रेजों ने नवाब के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए जनरल एडम्स को भेजा। एडम्स ने 1000 यूरोपीय और 4000 भारतीय सैनिकों को साथ लेकर मीर कासिम को अगस्त 1763 में कटवा गिरिया, मुर्शीदाबाद और मुंगेर आदि स्थानों पर हराया। मीर कासिम भाग कर पटना चला गया वहां से वह अपने साथ सभी अंग्रेज कैदियों को भी ले गया। जिन्हें वहां मरवा दिया गया। यहां से वह बाद में अवध चला गया।

मीर जाफर का पुनः नवाब बनना

मीर कासिम और अंग्रेजों के झगड़ों का एक परिणाम यह निकला कि मीर जाफर को एक बार फिर बंगाल की नवाबी मिल गई परन्तु इस परिवर्तन से बंगाल के लोगों की दशा नहीं सुधर सकी। वरन् वह खराब होती चली गई। मीर जाफर ने मीर कासिम द्वारा हटाए गए कर फिर से लगा दिये और अंग्रेजों को बिना किसी कर के व्यापार करने की आज्ञा दे दी। परन्तु मीर जाफर अंग्रेजों के लालच को पूरा नहीं कर सका और 1765 में उसकी मृत्यु हो गई।

बक्सर का युद्ध 1764 ई.

पटना से भाग कर मीर कासिम अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ पहुंचा। उस समय शुजाउद्दौला के साथ मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय भी था मीर कासिम ने दोनों से सहायता की प्रार्थना की। उसने बुन्देल खण्ड जीतने में मुगल सम्राट की सहायता

की [illegible] मुगल सम्राट तथा अवध के नवाब ने सहायता देने का वचन दिया। अतः तीनों की सम्मिलित सेनाओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध प्रस्थान किया। इस गम्भीर परिस्थितियों में अंग्रेजों ने शुजाउद्दौला को अपनी तरफ मिलाने का प्रयास किया लेकिन उन्हे सफलता नही मिली। तीनों ने पटना का घेरा डाल दिया और जब वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई तो नवाब की सेना बक्सर की ओर चल पड़ी। अंग्रेजों का सेनापति मुनरों तुरन्त बक्सर की ओर चल पड़ा। सितम्बर 1764 ई. में नवाब तथा अंग्रेजो की सेनाओं से बक्सर में घमासान युद्ध हुआ। लेकिन मुगल सम्राट ने दिल खोलकर नवाब की सहायता नहीं की फलतः तीनों की सम्मिलित सेनाओं की भयंकर पराजय हुई। शाह आलम अंग्रेजों से मिल गया और शुजाउद्दौला रूहेलखण्ड भाग गया। मीर कासिम भी भाग खड़ा हुआ और बारह वर्षो तक इधर–उधर ठोकर खाता रहा अन्त में 1777 में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार बक्सर के निर्णायक युद्ध का अन्त हुआ।

महत्त्व

बक्सर का युद्ध भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण युद्ध माना जाता है। जी.बी. मालेसन ने कहा है कि चाहे आप इसे देशी और विदेशी शक्तियों के बीच द्वन्द्व युद्ध समझों अथवा ऐसी सार गर्भित घटना जिसके परिणाम स्थाई तथा विशाल थे। बक्सर को सबसे निर्णायक युद्ध में गिना जायेगा। इस विजय से न केवल बंगाल ही मिला वरन् इससे अंग्रेजी राज्य की सीमाएं इलाहाबाद तक पहुंचा दी। बक्सर के युद्ध के बाद शुजाउद्दौला भी अंग्रेजों के अधीन आ गया उन्होंने 94 वर्षों तक उसे अपनी मित्रों को मित्र तथा शत्रुओं को शत्रु बनाए रखा अन्त में यह कहा जा सकता है कि बक्सर का युद्ध एक प्रकार से प्लासी के युद्ध से भी महत्त्वपूर्ण था।

वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hasting)

1772 ई. में वारेन हेस्टिंग्स ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर नियुक्त होकर आया और 1784 तक इस पद पर रहा। जिस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर होकर आया, उस समय कम्पनी के सम्मुख अनेक कठिनाईयां थी। भ्रष्टाचार और कुशासन के कारण कम्पनी का कोष खाली हो गया था चोरी तथा बेईमानी बहुत बढ़ गई थी और चारों ओर लूट खसोट मची हुई थी। 1770 के अकाल ने बंगाल की दुर्दशा को और भी अधिक भयंकर बना दिया था हजारों की संख्या में लोग भूख से तडप कर मर गये थे। इसके बावजूद माल गुजारी वसूल करने में कम्पनी के कर्मचारी बड़ी कठोरता और निर्दयता का व्यवहार करते थे। अतः किसानों ने निराश होकर भूमि जोतना छोड़ दिया था। जिससे कम्पनी की आय घट गई थी। कम्पनी के अधिकारी एक ओर निजी व्यापार तथा दूसरी ओर भारतीयों से उपहार लेकर धन एकत्रित करने में लगे हुए थे। वारेन हस्टिंगस ने इन बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया और अनेक सुधार किये जो इस प्रकार हैं :

(क) शासन सम्बन्धी सुधार :

(1) ***बंगाल में द्वैध शासन प्रणाली का अंत :*** वारेन हेस्टिंग्स ने सर्वप्रथम क्लाईव द्वारा स्थापित द्वैध शासन प्रणाली का अन्त किया। इसके लिए कम्पनी को डायरेक्टरों से उसे स्पष्ट आदेश मिला। रजा खाँ और शिवत राय पर महाभियोग लगाकर उन्हें पद से हटा दिया गया और हेस्टिंग्स का ख्याल था दिवानी और निजामत के अधिकारों को अलग–अलग करना ठीक नहीं है। इसलिए उसने रवाब से निजामत के अधिकारों को ले लिया। इस प्रकार बंगाल में अंग्रेजों का सीधा शासन स्थापित हो गया।

(2) ***कोष का कलकत्ता में स्थानान्तरण :*** बंगाल के नवाबों की राजधानी मुर्शीदाबाद थी। नवाबों का कोष भी वहीं पर होता था। हेस्टिंग्स ने कलकत्ता को शासन का केन्द्र बनाया तथा खजाना भी मुर्शीदाबाद से हटा कर कलकत्ता ले गया।

(3) ***अंग्रेज कलेकटरों की नियुक्ति :*** प्रशासन की दृष्टि से सारे बंगाल को 35 जिलों में बांटा गया। प्रत्येक जिले में भूमि कर एकत्रि करने के लिए आमिल के स्थान पर अंग्रेज कलेक्टरों की नियुक्ति की गई धीरे–धीरे कलेक्टरों का अधिकार क्षेत्र इतना विकसित हो गया कि अपने–अपने जिलों का सारा शासन कार्य चलाने लगे।

(4) ***नवाब की पेंशन में कमी और घरेलू प्रबन्ध की पुनः व्यवस्था :*** बंगाल के नवाब के शासन सम्बन्धी अधिकारों को समाप्त करके उसके व्यक्तिगत खर्च के लिए सोलह लाख रूपये वार्षिक पेंशन के रूप में दे दिये गये। हेस्टिंगस ने नवाब की देखभाल के लिए मीर जाफर की विधवा पत्नी मुन्नी बेगम को उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया।

(ख) **लगान सम्बन्धी सुधार :** कम्पनी ने वारेन हेस्टिंग्स के आते ही प्रत्येक रूप से बंगाल की दिवानी का उत्तरदायित्व ले लिया था। इस कारण लगान व्यवस्था को नियमित करना आवश्यक था। उसने इसके लिए एक लगान कमेटी की नियुक्ति की और उसकी रिपोर्ट के आधार पर निम्नलिखित सुधार किए।

(1) ***अंग्रेज कलैक्टरों की नियुक्ति :*** करों की वसूली का कार्य कम्पनी ने सीधा अपने हाथों में ले लिया भारतीय एजेन्टों तथा आमिलों को हटा दिया गया। लगान वसूल करने के लिए प्रत्येक जिले में एक कलैक्टर की नियुक्ति की गई। उन्हें अपने जिलों में रहना पड़ता था और उनकी सहायता के लिए प्रत्येक जिले में एक नायब दीवान नियुक्त किया गया।

(ग) शासन सम्बन्धी सुधार :

(2) ***लगान परिषद की स्थापना :*** सर्वप्रथम सभी जिलों में छः डिविजनों में बांटा गया। प्रत्येक डिविजन में लगान की देखभाल के लिए एक लगान परिषद स्थापित की गई जिसका सभापति कलकत्ता कोंसिल का एक सदस्य होता था यह परिषद लगान और उससे सम्बन्धित न्याय की देखभाल करती थी। परिषद की सहायता के लिए डिविजन में एक भारतीय दीवान भी रखा गया।

(3) ***पंचवर्षीय व एक वर्षीय ठेके की व्यवस्था :*** आरम्भ में लगान के क्षेत्र में पंचवर्षीय प्रबन्ध किया गया। भूमि पाँच वर्ष के लिए उन व्यक्तियों को दी जाने लगी जो अधिक लगान देने का वादा करते थे। परन्तु यह व्यवस्था भी दोषपूर्ण थी इसलिए 1777 में यह प्रथम वार्षिक कर दी गई।

(घ) **न्याय सम्बन्धी सुधार :**

वारेन हेस्टिंगस से पहले न्याय का कार्य स्थानीय जमींदार किया करते थे जो बड़े बेईमान और भ्रष्ट होते थे। अतः इस क्षेत्र में सुधार की तत्काल आवश्यकता थी। हेस्टिंग्स ने इस क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किये।

(1) ***दिवानी तथा फौजदारी अदालतों की स्थापना :*** न्याय की दृष्टि से प्रत्येक जिले को एक ईकाई मान लिया गया। हेस्टिंग्स ने प्रत्येक जिले में एक दिवानी और एक फौजदारी अदालत की स्थापना की। दीवानी अदालत कलैक्टर के अधीन होती थी। वही सब झगड़ों का निर्णय करता था। पांच सौ रूपये तक के मुकदमें इस न्यायलय में आते थे। कलैक्टर अदालतों में देशी न्यायधीश काजी अथवा मुफ्ती कानूनों की व्याख्या कर अपराधियों को दण्ड देते थे। कलैक्टर इस न्यायलय के कार्य की देखभाल करता था। इन न्यायालयों की मृत्यु दण्ड देने और सम्पत्ति जब्त करने का अधिकार नहीं था।

(2) ***कलकत्ता में अपील अदालतों की स्थापना :*** कलकत्ता में दो अपील की अदालतों की स्थापना की गई। इनमें से एक दिवानी तथा दूसरी फौजदारी अदालत थी। दिवानी अदालत का नाम सदर दिवानी अदालत तथा फौजदारी अदालत का नाम सदर फौजदारी अदालत रखा गया। इन अदालतों में जिले की दिवानी तथा फौजदारी अदालतों के विरूद्ध अपील की जाती थी। सदर दिवानी अदालतों में गवर्नर तथा कौंसिल के दो सबसे पुराने सदस्य न्यायधीशों को नजराने और भेंट आदि लेने पर रोक लगा दी गई। और उनकी तनख्वायें निश्चित कर दी गई थी। इन सबके अतिरिक्त निम्नलिखित नियम भी बनाए गये।

(1) प्रत्येक न्यायालय को अपनी कार्रवाई को लिखकर रखना पड़ता था। (2) प्रत्येक मुकद्दमें के निर्णय का कुछ समय निश्चित किया गया। (3) हिन्दू और मुस्लिम कानूनों का संग्रह करने का प्रयास किया गया। (4) दस रूपये के ऊपर के सभी झगड़ों को अदालतों में जाने के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया गया।

(ङ) व्यापार सम्बन्धी सुधार :

हेस्टिंग्स ने व्यापार के क्षेत्र में भी अनेक सुधार किए। उसने कम्पनी के नौकरों द्वारा दस्तक के प्रयोग करने की प्रथा का अन्त कर दिया। दूसरे उस समय बहुत सी चौकियां थी जहाँ व्यापारियों से चुंगी वसूल की जाती थी। जिससे व्यापार को गहरा धक्का लगता था। हैस्टिंग्स ने कलकत्ता, हुग्ली, मुर्शीदाबाद, ढाका और पटना की चौकियों को छोड़कर सभी चौकियां तोड़ दी। नमक, सुपारी तथा तम्बाकु को छोड़कर व्यापार की अन्य वस्तुओं पर 2½% चुंगी निश्चित कर दी गई। उसने गुमास्तों को यह आदेश दिया कि वे कारीगरों से उनकी इच्छा के विरूद्ध कार्य करने के लिए मजबूर न करे। इन सुधारों से कम्पनी की आय में वृद्धि हो गई।

(च) आर्थिक सुधार :

जिस समय हेस्टिंग्स गवर्नर बना उस समय कम्पनी का कोष खाली था। अतः आर्थिक सुधारों की बड़ी आवश्यकता थी। उसने दिल्ली के सम्राट शाहझालम की पेशंन बन्द कर दी, क्योंकि वह मराठों की शरण में चला गया था। उसने बंगाल के नवाब की पेशन घटाकर तेरह लाख कर दी। हेस्टिंग्स ने कड़ा और इलाहाबाद के जिले भी वापस ले लिए और उन्हें नवाब को पचास लाख में बेच दिया। हेस्टिंग्स ने सिक्कों से सम्बन्धित बुराईया भी दूर करने का प्रयत्न किया। उस समय अनेक प्रकार के सिक्के प्रयोग में लाए जाते थे। जिससे व्यापार में बड़ी हानि होती थी। हेस्टिंग्स ने उन्हें बन्द करने के लिए कलकत्ता में एक टकसाल का निर्माण किया।

(छ) सार्वजनिक सुधार :

हेस्टिंग्स के आने से पहले बंगाल में अराजकता तथा अव्यवस्था का बोल–बाला था। चारों तरफ चोरी डकेती तथा लुटपाट का आतंक छाया हुआ था। हेस्टिंग्स ने डाकुओं का निर्दयता पूर्वक दमन किया। अनेक डाकुओं को फांसी पर लटका दिया गया। पुलिस अफसरों के अधिकार बढ़ा दिए गये तथा प्रत्येक जिले में एक पुलिस अफसर की नियुक्ति की गई। जिस पर जिले की सुव्यवस्था का भार होता था, इस तरह हेस्टिंगस ने भारत में एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था की नींव डाली।

इन सुधारों के द्वारा वारेन हेस्टिंग्स ने कम्पनी की नई नीति को जन्म दिया। अभी तक भारत में कम्पनी अपने स्वार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी ओर ध्यान नहीं देती थी।

वारेन हेस्टिंग्स की विदेश नीति

वारेन हेस्टिंग्स की विदेश नीति का उद्देश्य कम्पनी के प्रदेशों का विस्तार करना नहीं था, अपितु उसका उद्देश्य भारत में कम्पनी की सत्ता को मजबूत बनाना था। मुगल बादशाह अवध, मराठे और मैसूर राज्य के साथ उसके सम्बन्ध इसी आधार पर बने और बिगड़े।

शाह आलम के प्रति नीति

मुगल सम्राट शाह आलम के साथ कम्पनी के बक्सर की लड़ाई के बाद मैत्री स्थापित कर ली थी। तथा उसे इलाहाबाद और कड़ा के जिले दे दिये थे। और 25 लाख रूपये वार्षिक पेंशन भी निश्चित कर दी थी। इस प्रकार मुगल सम्राट अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया था। लेकिन धीरे–धीरे मुगल सम्राट मराठों के प्रभाव में आने लगा, 1777 में वह मराठों के सहयोग से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा उसके बदले में उसने मराठों को इलाहाबाद और कड़ा के जिले सौंप दिए। वारेन हेस्टिंगस यह सब सहन नहीं कर सका। अतः उसने मुगल सम्राट की वार्षिक पेंशन बन्द कर दी। साथ ही कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले शाह आलम से वापस लेकर अवध के नवाब को 50 लाख रूपये में बेच दिये।

वारेन हेस्टिंग्स की इस कार्य के लिए तीव्र निन्दा की जाती है, क्योंकि ऐसा करके हेस्टिंग्स ने उस सन्धि को भंग किया जो क्लाईव ने शाह आलम के साथ की थी।

अवध के प्रति नीति

हेस्टिंग्स की अवध के प्रति नीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे। एक तो वह अवध के नवाब के साथ मित्रता का समबन्ध स्थापित कर अंग्रेजी कम्पनी की सीमा को अफगानों के आक्रमणों से सुरक्षित रखना चाहता था। तथा ब्रिटिश राज्य को मराठों, जो उस समय कम्पनी के सबसे प्रबल विरोधी थे, के प्रत्येक्ष आक्रमण से बचना चाहता था। इसीलिये वारेन हेस्टिंग्स ने अवध के नवाब के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए। उसने कड़ा तथा ईलाहाबाद के जिले नवाब से 50 लाख रूपये लेकर लौटा दिये, 1773 ई. में दोनों पक्षों की बीच बनारस की सन्धि हुई जिसमें इस बात को पक्का कर दिया गया। इसके अतिरिक्त नायब वजीर की रक्षा के लिये कम्पनी की एक सैनिक टुकड़ी तेयार की और नायब वजीर ने इसका सारा खर्च देना स्वीकार कर लिया।

जनवरी 1775 ई. में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई। वारेन हेस्टिंग्स ने उसके उत्तराधिकारी के साथ एक नई सन्धि की, जिसे फैजाबाद की सन्धि कहा जाता है। इस सन्धि के अनुसार अवध में रखी गई अंग्रेज सेना का खर्च बढ़ा दिया गया और बनारस और गाजीपुर के जिले कम्पनी के प्रत्यक्ष अधिकार में दे दिये गये।

वारेन हेस्टिंग्स तथा रूहेला युद्ध

अवध के उत्तर पश्चिम में हिमालय की तलहटी में रूहेलखण्ड का राज्य स्थित था यहाँ का शासक अफगान था। 1749 ई. में हाफिज रहमत खाँ इस राज्य का शासक बना, उसके प्रयासों से यह छोटा सा राज्य बहुत धनवान हो गया। मराठों के आक्रमणों से बचने के लिए 1772 ई. में रूहेलों ने अवध के नवाब से एक सन्धि की । इस सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला ने मराठों के विरूद्ध रूहेलों की सहायता करनी थी और इसके बदले रूहेलों ने उसे 40 लाख रूपये देना स्वीकार किया। 1793 ई. में मराठे रूहेल खण्ड की सीमा तक आ पहुँच। अवध के नवाब तथा कम्पनी की सेनाएँ उनके मुकबाले के लिए आगे बढ़ी, लेकिन किसी भी प्रकार का कोई संघर्ष न हुआ, क्योंकि पेशवा, माधवराव की मृत्युके कारण मराठे वापस लौट गये। अब शुजाउद्दौला ने रूहेलों से अपनी रकम मांगी परन्तु रूहेला सरदार ने रूपये देने से इन्कार कर दिया क्योंकि नवाब की सेना ने युद्ध तो किया ही नहीं था। इस पर नवाब क्रोधित हो उठा और उसने रूहेलखण्ड को विजय करने का निश्चय किया। उसने अंग्रेजों से रूहेलों के विरूद्ध सहायता मांगी और वचन दिया कि युद्ध का सारा खर्च वह स्वयं वहन करेगा और कम्पनी को 40 लाख रूपये भी देगा। वारेन हेस्टिंग्स इस पर तैयार हो गया और दोनों की संयुक्त सेनाओं ने रूहेलखण्ड पर आक्रमण करके उसे पराजित किया। रूहेल खण्ड को बलपूर्वक अवध का अंग बना दिया गया।

आलोचना

हेस्टिंग्स के इस आचरण की कड़ी आलोचना की गई है। रूहेलों ने कम्पनी का कुछ नहीं बिगाड़ा था उसके विरूद्ध कम्पनी की सेना का प्रयोग अन्यायपूर्ण था। बर्क के अनुसार एक स्वतन्त्र लोगों को नवाब के अधीन करने का कोई तर्क नहीं था। मैकाले ने भी इस कठोर आचरण की निन्दा की है, कि कम्पनी के सैनिकों के सन्मुख रूहेला ग्राम लूटे गये, बच्चे मार डाले गये तथा स्त्रियों के साथ बलात्कार किया गया। इसी प्रकार अन्य लोगों ने इस समस्त घटना की निन्दा की है। बहुत से रूहेलों को देश से निकाल दिया गया। तथा हाफिज रहमत खाँ के परिवार के साथ दुर्व्यवहार किया गया। दूसरी और वारेन हेस्टिंग के पक्षपाती जैसे सर जान स्टची उसके आचरण के पक्ष में यह तर्क देते हैं, "बनारस की सन्धि करते समय हेस्टिंग्स का विचार था, रूहेलों के विरूद्ध नवाब की सहायता करने का अवसर नहीं आएगा, दूसरी और कुछ का मानना है कि वारेन हेस्टिंग्स का रूहेला युद्ध में सम्मिलित होने के पीछे न केवल धन लोलुपता थी, अपितु यह भावना भी थी कि वह रूहेलखण्ड को कम्पनी के प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था। हाऊस ऑफ कामन्स में हेस्टिंग्स ने इसे, एक रक्षात्मक युद्ध की संज्ञा दी है।

प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध

इधर वारेन हेस्टिंग्स ने अवध के नवाब के साथ सहायक सन्धि करके विशेष सफलता प्राप्त कर ली थी तो उधर मद्रास परिषद ने कर्नाटक तथा उत्तरी सरकार के क्षेत्रों पर अपना प्रभाव जमा लिया था। बम्बई परिषद के सदस्य मराठों की उपस्थिति के कारण कुछ नहीं कर पा रहे थे। ये लोग सालसेट और बसीन की बन्दरगाहें लेना चाहते थे, पूना में भी ये राजनीतिक प्रभाव स्थापित करना चाहते थे, इसके लिए ये उचित अवसर की तलाश में थे।

1772 ई. में पेशवा माधव राव की मृत्यु हो गई, इसके पश्चात् 1773 में पेशवा नारायण राव की हत्या कर दी गई। इन घटनाओं के पश्चात् महाराष्ट्र में आन्तरिक झगड़े आरम्भ हो गये। नारायण राव के चाचा रघुनाथ राव ने नारायण राव के मरने के बाद जन्मे पुत्र माधवराव नारायण के अधिकार को चुनौती दी। परन्तु नाना फडनवीस के सम्मुख अपने आप को असहाय पाकर उसने कम्पनी की सहायता मांगी तथा 1775 में बम्बई सरकार से सूरत की सन्धि की। रघुनाथ राव बम्बई परिषद को एक कठपुतली व्यक्ति मिल गया जैसा वे चाहते थे तथा उन्हें आशा थी की पुना में उसी प्रकार का शासन स्थापित हो जाएगा, जैसा बंगाल में क्लाईव ने दोहरे शासन के रूप में किया था। सूरत की सन्धि के अनुसार रघुनाथ राव को पेशवा बनना था। तथा बदले में कम्पनी को सालसेट तथा बसीन नगर मिलने थे, कम्पनी की सेना की सहायता से रघुनाथ राव पूना की ओर बढ़ा तथा मई 1775 में अर्रात के स्थान पर अनिर्णायक युद्ध हुआ।

कलकत्ता परिषद जो उच्चतम परिषद थी, को सुरत की सन्धि की प्रतिलिपी उस समय मिली जब युद्ध प्रारम्भ हो चुका था, कलकत्ता परिषद ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया तथा इस युद्ध को अन्यायपूर्ण घोषित कर दिया। उन्होंने कलकत्ता से कर्नल अपटन को पूना भेजा जिसने मार्च 1776 में पूरन्धर की सन्धि की। सन्धि से दोनों दलों में शान्ति स्थापित हो गई। परन्तु लण्डन स्थित डायरेक्टरों ने सुरत की सन्धि को स्वीकृति दे दी। तथा पुरन्तधर की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। 1775 में अमेरिका के स्वतन्त्रता युद्ध होने के कारण अंग्रेज तथा फ्रांसीसी पुनः एक दूसरे के विरूद्ध हो गये। एक फ्रांसीसी नेता अपनी सेना लेकर पुना पहुँच गया। वारेन हेस्टिंग्स ने तुरन्त गार्ड के नेतृत्व में बम्बई की सहायता के लिए सेना भेज दी।

परन्तु बम्बई से भेजी गई सेना बड़गाँव के स्थान पर पेशवा की सेना से मात खा गई तथा जनवरी 1779 में बड़गाँव की सन्धि की, इसके अनुसार अंग्रेजों को 1773 के पश्चात् सभी विजित प्रदेश लौटाने का वचन दिया, यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बहुत अपमानजनक थी। वारेन हेस्टिंग्स ने युद्ध जारी रखा तथा दो सैनिक दल भेजे। एक दल कैप्टन पोफम के अधीन ग्वालियर पर आक्रमण करने के लिये और दूसरा गाडर्ड के अधीन पुना के विरूद्ध। जनरत गाडर्ड ने मध्य भारत से गुजरते हुए फरवरी 1780 में अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। उसने गुजरात को भी रौंद डाला तथा बड़ौदा के गाथकवाड़ जो अब तक तटस्थ था, अपनी ओर मिला लिया। परन्तु उसका पूना पर आक्रमण करना विफल रहा तथा उसे वापिस लौटना पड़ा। इधर पोफम के ग्वालियर की सेना को कई छोटी–छोटी झड़पों में हराया तथा अगस्त 1780 में ग्वालियर दुर्ग जीत लिया। इस विजय से अंग्रेजों की खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गई।

इसके पश्चात् सिंधिया ने अंग्रेजों तथा मराठों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाई और मई 1782 में दोनों पक्षों के बीच सालबाई के स्थान पर सन्धि पर हस्ताक्षर किए गए। इससे दोनों ने एक दूसरे के जीते हुए क्षेत्र छोड़ दिए। केवल सालसेट और एलिफेन्टा द्वीप अंग्रेजों के पास रहे। अंग्रेजों ने राधोबा का साथ छोड़ दिया। पेशवा ने राधोबा को पेंशन दे दी और अंग्रेजों में माधवराव नारायण को पेशवा मान लिया।

द्वितीय ऐंग्लों–मैसूर युद्ध 1780–84

अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम के फलस्वरूप फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में युद्ध छिड़ गया। वारेन हेस्टिंग्स ने सभी फ्रांसीसी बस्तियों को अपने अधीन करने का निश्चय किया। उसने मालाबार तट पर स्थित भाही बन्दरगाह को जीत लिया, जिसे हैदर अली अपने अधीन समझता था। वारेन हेस्टिंग्स ने यह तर्क दिया कि भाही के द्वारा हैदर अली को फ्रांसीसी सहायता पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने अपनी सेना हैदर अली के क्षेत्र में बिना किसी अनुमति के उत्तरी सरकार में स्थित गन्टूर की विजय के लिए भेज दी थी।

हैदर अली ने मराठों तथा निजाम के साथ समझौता कर लिया तथा फ्रांसीसी सहायता का वचन ले लिया और फिर जुलाई 1780 ई. में कर्नाटक पर आक्रमण कर अरकाट पर विजय प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् उसने मनरों की सेना को परास्त कर दिया। इस प्रकार कम्पनी को मराठों और मैसूर दोनों से मात खानी पड़ी। जैसा सर अलफ्रेड लायल ने लिखा है, कि 1780 के ग्रीष्म काल में कम्पनी की साख अपने न्युनतम स्तर पर थी। परन्तु वारेन हेस्टिंग्स ने स्थिति को सम्भाल लिया। सर आयरकुट के अधीन कलकत्ता से भेजी गई सेना ने हैदर अली को कई स्थानों पर पराजित किया, यद्यपि जनरल बुसी ने हैदर अली की सहायता के लिए 3000 सैनिक भेजे थे। इधर अंग्रेजों ने सिंधिया से समझौता कर लिया और इस प्रकार मराठे हैदर अली से

अलग हो गये। हैदर अली की सहायतार्थ एडमिरल सफरिन जो काम से भेजा गया था वापिस चला गया। इस प्रकार 1784 में मंगलौर की सन्धि पर हस्ताक्षर के साथ युद्ध बन्द हो गया, इस सन्धि के अनुसार, हैदर अली तथा अंग्रेजों को एक दूसरे के विजित प्रदेशों को लौटाना था।

इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स ने भारत में गवर्नर जनरल के रूप में कम्पनी की बहुमूल्य सेवाएँ की। उसने न केवल शासन प्रबन्ध में नाना प्रकार के सुधार किए बल्कि कम्पनी के प्रदेशों की भयानक खतरों से रक्षा भी की। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार "उसे भारत के इतिहास में सदा के लिए कम्पनी के प्रदेशों के रक्षक तथा उसके वास्तविक हितों के प्रोत्साहक के रूप में याद किया जायेगा।"

लार्ड वैलजली

1798 में लार्ड वैलजली भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। जिस समय वह भारत पहुंचा उस समय भारत में कम्पनी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय और डावांडोल थी। भूतपूर्व दो गर्वनर जनरलों के तटस्थता की नीति के कारण देशी राज्यों का पारस्परिक संघर्ष बढ़ता जा रहा था। हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों के विरूद्ध हो गया था, क्योंकि सरजान शोर ने उसकी मराठों के विरूद्ध युद्ध मे कोई सहायता नहीं की थी। उसने कई फ्रांसीसियों को अपनी सेना में ले लिया था तथा उनकी देख–रेख में अपनी सेना का पुर्नःगठन कर रहा था। पेशवा, भौंसले, होल्कर और सिन्धिया जैसे योग्य नेताओं के नेतृत्व में मराठों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। सिन्धिया ने तो फ्रांसीसी अफसर पेरों की देख–रेख में एक शक्तिशाली सेना स्थापित कर ली थी। उसने दिल्ली के सम्राट को बन्दी बना कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया था। मैसूर का शासक टीपू अपनी हार का बदला लेने के लिए मारिशिस के फ्रांसीसी गवर्नर के साथ साठ–गाठ कर रहा था। उत्तर पश्चिम की ओर से काबुल का शासक जमान शाह भारत पर आक्रमण करने की फिराक में था। सबसे बड़ा भय उस समय नैपोलियन का था, उसने आगे बढ़कर मिस्र पर अधिकार कर लिया था और भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था।

ऐसी स्थिति में भारत आते ही वैलजली ने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया। अपनी नीति के अनुकूल उसने दो मुख्य लक्ष्य बनाए। उसका सर्वप्रथम उद्देश्य भारत में कम्पनी की सत्ता को सर्वोपरि बनाना था और अन्य देशी–राज्यों को कम्पनी का संरक्षण स्वीकार करने के लिए बाध्य करना था। उसका दूसरा उद्देश्य फ्रांसीसी प्रभाव को मुक्त करना था। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वैलजली ने जो नीति अपनाई उसे सहायक सन्धि के नाम से जाना जाता है।

सहायक सन्धि प्रणाली

वैलजली ने भारतीय राज्यों को अंग्रेजी राजनैतिक परिधि में लाने के लिए सहायक सन्धि प्रणाली का प्रयोग किया। इस प्रणाली ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रसार में विशेष भूमिका निभाई। वास्तव में वैलजली ने सहायक सन्धि प्रणाली का अविष्कार नहीं किया। इस प्रणाली का अस्तितव तो पहले ही था तथा वह शनैःशनैः विकसित हुई। सम्भवतः डुप्ले प्रथम यूरोपियन था, जिसने अपनी सेना किराये पर भारतीय राजाओं को दी थी। अंग्रेजों ने भी यह प्रणाली अपनाई। क्लाईव के काल से यह प्रणाली लगभग सभी गवर्नर जनरलों ने अपनाई थी। वैलजली की विशेषता केवल यह थी कि इसने इसका विकास करके अपने सम्पर्क में आने वाले सभी देशी राजाओं के सम्बन्धों में इसका प्रयोग किया। प्रथम सहायक सन्धि 1765 में अवध में की गई जब कम्पनी ने एक निश्चित धन के बदले उसकी सीमाओं की रक्षा करने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त अवध ने एक अंग्रेज रेजीडेन्ट लखनऊ में रखना स्वीकार कर लिया। 1787 में सबसे पहली बार कार्नवालिस ने कर्नाटक के नवाब पर यह शर्त लागू की थी कि वह किसी बाह्य शक्ति से अंग्रेजों की अनुमति के बिना कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा और सरजार शोर ने इस शर्त को अवध के नवाब पर लागू किया। वैलजली ने इसमें कुछ अन्य शर्तें भी सम्मिलित की और मुख्यतया उसने मांग की कि अंग्रेजों की सहायता के बदले में सन्धि करने वाला भारतीय नरेश राज्य की भूमि का कुछ निश्चित भाग स्थायी रूप से कम्पनी को देगा और इस प्रकार उसने इस सन्धि को कम्पनी के साम्राज्य विस्तार का साधन बनाया। इस प्रकार वैलजली ने इस सन्धि को एक निश्चित रूप प्रदान किया, इसलिए वैलजली को इस सन्धि का जन्मदाता माना जाता है।

सहायक सन्धि की शर्तें

सहायक सन्धि कम्पनी और देशी राज्यों के बीच होती थी। इस सन्धि के अनुसार कम्पनी देशी राज्य को सैनिक सहायता देने का वचन देती थी और उनसे बदले में उसके निश्चित धन लेती थी। सहायक सन्धि की मुख्य पाँच शर्तें थी।

1. इस सन्धि को स्वीकार करने वाले देशी नरेश कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार करें तथा उसकी अनुमति के बिना दूसरे राज्य से युद्ध व सन्धि न करें।
2. कम्पनी अनुमति के बिना अंग्रेजों को छोड़कर किसी यूरोपिय को अपने यहां नौकरी न दे। इस शर्त का उद्देश्य देशी राज्यों पर फ्रांसीसियों का प्रभाव कम करना था।
3. अपने राज्य में एक अंग्रेजी फौज रखे और उसका खर्च दे अथवा अपने राज्य का कुछ इलाका कम्पनी को दे।
4. अपने राज्य में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखे और शासन सम्बन्धी बातों में उससे परामर्श ले।
5. इन सबके बदले कम्पनी उस राज्य के आन्तरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी तथा आन्तरिक विद्रोह व बाह्य आक्रमणों से कम्पनी उस राज्य की रक्षा करेगी।

सहायक सन्धि के लाभ

1. सहायक सन्धि प्रणाली साम्राज्य के निर्माण के कार्य में एक भेद रखने वाले शत्रु की भूमिका निभाने लगी। इससे भारतीय राज्य नीरस हो गये क्योंकि अब उन्हें कम्पनी का संरक्षण प्राप्त था।
2. इससे कम्पनी को भारतीय राज्यों के व्यय पर एक बड़ी सेना मिल गई।
3. भारतीय राजाओं की राजधानियों में कम्पनी की सेना रखने में कम्पनी का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नियन्त्रण हो गया। इससे दूसरी विदेशी शक्तियों को भी बोलने का अवसर नहीं मिला।
4. इस सहायक सन्धि से कम्पनी की सेना उसकी राजनैतिक सीमाओं से बहुत आगे चले जाने में सफल हो गई। इस प्रकार युद्ध का भार कम्पनी के वित्तिय साधनों पर नहीं पड़ता था और युद्ध क्षेत्र भी प्रायः कम्पनी के प्रदेशों से दूर ही रहता था।
5. इस प्रणाली से कम्पनी भारत में फ्रांसीसी के प्रभाव को समाप्त करने में सफल रही क्योंकि इस सन्धि के अनुसार कोई भी यूरोपिय नागरिक कम्पनी की अनुमति के बिना किसी सम्बन्धित राज्य में सेवा नहीं कर सकता था।
6. कम्पनी भारतीय राजाओं के आपसी विवादों में मध्यस्थ बन गई क्योंकि विदेशी सम्बन्ध कम्पनी के अधीन हो गये थे।
7. इन राज्यों में स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट अत्यन्त प्रभावशाली हो गये। तथा आगे चलकर इन राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे।
8. इससे कम्पनी का साम्राज्य फैल गया। निजाम ने 1792 तथा 1799 में जो प्रदेश मैसूर से प्राप्त किए थे, वे सभी 1800 ई. में कम्पनी को देने पड़े। इसी प्रकार अवध को 1801 में रूहेलखण्ड तथा दोआब के दक्षिणी भाग, जो उसके आधे राज्य के बराबर थे, कम्पनी को देने पड़े।

सहायक सन्धि की देशी राज्यों को हानि

1. भारतीय राज्य निशस्त्र हो गये तथा विदेशी सम्बन्धों को कम्पनी के अधीन स्वीकार करने से अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे।
2. अंग्रेज रेजीडेन्टों ने राज्य के प्रशासन में अधिक हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।
3. सहायक सन्धि ने प्रत्येक निर्बल राजा की रक्षा की और इस प्रकार वहां की जनता को अपनी अवस्था सुधारने के अधिकार से वंचित रखा। मुनरों के शब्दों में "भारत में जो बुरी सरकार के विरूद्ध साधारण उपचार–राजमहल की क्रान्ति अथवा विदेशी आक्रमण होते थे, वे सब अंग्रेजी सेना कि उपस्थिति के कारण समाप्त हो गये"।

4. सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य शीर्घ ही दिवालिया हो गये। कम्पनी ने प्रायः राज्य की आय का 1/3 भाग आर्थिक सहायता के रूप में राज्यों से ले लिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वैलजली की सहायक सन्धि से कम्पनी को चाहे जितना लाभ हुआ हो, परन्तु देशी नरेश, और उनकी प्रजा का घोर अनिष्ट हुआ।

सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य

हैदराबाद (1799 ई. तथा 1800 ई.) में, मैसूर (1799 ई.), तंजौर (1799 ई.), अवध (1801 ई.), पेशवा (1801 ई.), बराड़ के भौंसले (1803 ई.), सिन्धिया (1804 ई.), जोधपुर, जयपुर, मच्छेड़ी बुन्दी तथा भरतपुर है।

वैलजली के देशी राज्यों के साथ सम्बन्ध

वैलजली ने अपने सात वर्ष के शासन काल के दौरान अपनी सहायक सन्धि प्रणाली को माध्यम बना कर अधिक से अधिक देशी रियासतों को कम्पनी का मित्र बनाने की नीति अपनाई। परन्तु निजाम, मराठे तथा टीपू ने अंग्रेजों की शर्तों के अनुसार मित्रता करने से इन्कार कर दिया। इसलिए वैलजली ने उसके साथ युद्ध किया।

वैलजली तथा हैदराबाद का निजाम

लार्ड वैलजली ने निजाम हैदराबाद को सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया। उसे मराठों और हैदराबाद के शासक टीपू सुल्तान से हमेशा भय लगा रहता था। इसी भय से बाध्य होकर उसने 1798 ई. में अंग्रेजों के साथ सहायक सन्धि कर ली। उसके राज्य में एक ब्रिटिश सेना तैनात की गई। निजाम ने सेना के व्यय के लिए 24 लाख रू. वार्षिक देना स्वीकार कर लिया। यहाँ एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखा गया। निजाम ने फ्रांसीसी अफसरों और सैनिकों को निकाल दिया। अंग्रेजों ने वचन दिया कि वे निजाम की मराठों से रक्षा करेंगे तथा मराठो के बीच झगड़ों का निर्णय भी अंग्रेज करेंगे। इस प्रकार हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया तथा उनका मित्र बन गया। उसने तीसरे और चौथे मैसूर युद्ध में अंग्रेजों का साथ दिया और विजय के बाद उसे मैसूर राज्य के कुछ प्रदेश मिले थे। लेकिन 1800 ई. में वैलजली के निजाम के साथ एक और सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार सहायक सेना की संख्या बढ़ा दी गई और उसके खर्च के लिए मैसूर से मिले हुए प्रदेश वापस ले लिए।

वैलजली तथा मैसूर

मैसूर का शासक टीपू सुल्तान अंग्रेजों के लिए एक चुनौती बना हुआ था मुनरों ने उसके विषय में लिखा है "नवीन पद्धतियों के लिए अचल उत्साह तथा प्रत्येक कार्य को स्वयं आरम्भ करने की इच्छा उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता थी।

टीपू अंग्रेजों से मैसूर के तीसरे युद्ध में पराजित हो गया था इस अपमानजनक हार का बदला लेने के लिये वह फ्रांसीसियों तथा काबुल के जमानशाह से सांठ–गांठ कर रहा था। अतः लार्ड वैलजली ने हैदराबाद पर अंग्रेजी प्रभाव स्थापित करने के पश्चात मैसूर की ओर ध्यान दिया। उसने टीपू को सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य करना चाहा फलतः दोनों के बीच युद्ध छिड गया। टीपू पराजित हुआ तथा युद्ध में मारा गया। वैलजली ने उसके राज्य के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने कनारा, कोयम्बटूर, श्रंगापटन आदि मैसूर के प्रदेश अपने राज्य में सम्मिलित कर लिए। मैसूर की राज गद्दी पर वहाँ के प्राचीन हिन्दू राजवंश के एक नाबालिग लड़के कृष्ण राव को बैठा दिया गया। वैलजली ने इस नये हिन्दू राज्य पर भी सहायक सन्धि लाद दी। इस प्रकार मैसूर राज्य पूर्ण रूप से कम्पनी के अधीन आ गया।

अवध के साथ सम्बन्ध

हैदराबाद तथा मैसूर के पश्चात् वैलजली ने अपनी सहायक सन्धि का प्रयोग अवध पर किया। अवध का नवाब इन दिनों शत्रुओ से घिरा हुआ था। वहां की शासन व्यवस्था लचर हो चली थी। दूसरी ओर नवाब को सिखों तथा मराठों के आक्रमणों का भी भय था। हालांकि नवाब सर जान शोर के समय से ही सहायक सन्धि की परिधि में था, फिर भी वैलजली ने नवाब शक्ति को और अधिक दुर्बल करने तथा उसके कुछ प्रदेश ब्रिटिश राज्य में मिलाने का निश्चय किया। जब नवाब ने उसकी शर्तें

मानने में संकोच किया तो उसने लखनऊ की ओर एक ब्रिटिश सेना भेज दी। अन्त में विवश होकर नवाब ने नवम्बर 1801 में सहायक सन्धि की शर्तों को मान लिया। नई सन्धि के अनुसार नवाब की सेना भंग कर दी गई और वहां अंग्रेजी सेना रखी गई। अवध में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट नियुक्त किया गया जो राज्य के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने लगा। ब्रिटिश सेना के व्यय के बदले कम्पनी ने नवाब से रूहेलखण्ड तथा दक्षिण दोआब के प्रदेश ले लिए। इस प्रकार अवध पूरी तरह कम्पनी के संरक्षण में आ गया।

वैलजली तथा मराठे

वैलजली ने सहायक सन्धि का प्रयोग मराठों पर भी किया। 1802 में पेशवा बाजीराव होल्कर के हाथों पराजित हो गया। और वह भाग कर अंग्रेजों की शरण में चला गया। उसने अंग्रेजों से बसीन की सन्धि कर ली। इस सन्धि की सभी शर्तें सहायक सन्धि की ही थी। इस प्रकार मराठा संघ का मुखिया अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। परन्तु ग्वालियर के सिन्धिया तथा नागपुर के भौंसले ने इसे मराठों का अपमान समझा और वे बाजीराव के विरूद्ध हो गये। शीघ्र ही दोनों में युद्ध छिड़ गया। पेशवा बाजीराव ने अंग्रेजों की सहायता से सिन्धिया और भौंसले को पराजित कर दिया। अब अंग्रेजों ने उनको सन्धि करने के लिये विवश किया। सिन्धिया के साथ अंग्रेजों ने सुरजी अर्जन गाँव की सन्धि की इसके अनुसार उसने दक्षिण प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया। राजपूताना का भी एक बहुत बड़ा भाग मराठा सरदारों के पास से निकलकर अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। शीर्घ ही इन दोनों ने सहायक सन्धि भी स्वीकार कर ली तथा अपने राज्य में एक अंग्रेजी सेना तथा अंग्रेज रेजीडेन्ट भी रख लिया। इस प्रकार वैलजली ने शक्तिशाली मराठों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया।

फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त

वैलजली ने सहायक सन्धियों की सहायता से अपने संरक्षित राज्यों में फ्रांसीसियों की नियुक्ति पर रोक लगा दी। यही नहीं नेपोलियन के नेतृत्व में बढ़ती हुई फ्रांसीसी सेना के विरूद्ध वैलजली ने एक अंग्रेजी सेना भी भेजी लेकिन नेपोलियन पहले ही वहाँ से जा चुका था। वैलजली ने ईरान में फ्रांसीसियों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये वहाँ के शाही दरबार में एक दूत मण्डल भेजा जिसके फलस्वरूप वहाँ फ्रांसीसियों के साथ–साथ अंग्रेजी प्रभाव भी बढ़ने लगा। फ्रांसीसियों पर काबु पाने के लिये वैलजली ने सबसे सराहनीय कार्य यह किया कि उसने इंग्लैण्ड और फ्रांस में सन्धि हो जाने पर भी भारत में फ्रांसीसी बस्तियों पर अपना अधिकार बनाए रखा, जबकि सन्धि के अनुसार दोनों देशों ने एक दूसरे के विजित प्रदेश लौटा देने का वचन दिया था। इस प्रकार फ्रांसीसियों के प्रभाव का अन्त करके वैलजली के भारतीय राज्य को एक बहुत बड़े खतरे से सुरक्षित कर लिया।

लार्ड हेस्टिंग्स

लार्ड हेस्टिंग्स की नियुक्ति गवर्नर जनरल के रूप में 1813 ई. में हुई। उसने वारेन हेस्टिंग्स द्वारा शुरू किये गये तथा लार्ड वैलजली के द्वारा जारी किए गये कार्यों को पूरा किया। वह भारत में इस दृढ़ संकल्प के साथ आया था कि वह देश के कार्यों में हस्तक्षेप न करने की नीति का पालन करेगा। किन्तु बाद में उसने अनुभव किया कि देश के हालात ऐसे है कि उस नीति पर चलना सम्भव नहीं है।

जिस समय लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन कर भारत आया उस समय कम्पनी की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। परन्तु इससे पहले के गवर्नर जनरलों के समय कम्पनी ने तटस्थता तथा अहस्तक्षेप की नीति अपनाई इसके परिणामस्वरूप अशान्ति का प्रकोप सर्वत्र हो गया और देशी राज्यों को फिर गर्दन उठाने का मौका मिल गया। पिंडारियों का उपद्रव बहुत बढ़ गया था। मराठे भी अपने पड़ोसी राज्यों में लूट मार करने में लगे हुए थे। उत्तर में नेपाल में गोरखे अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। इन परिस्थितियों में लार्ड हेस्टिंग्स ने अग्रगामी तथा साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया।

नेपाल से युद्ध

लार्ड हेस्टिंग्स का प्रथम युद्ध नेपाल के गोरखों के साथ हुआ। गोरखों ने 1768 में नेपाल को विजय किया और शीघ्र ही एक शक्तिशाली राज्य बना लिया। जब उत्तर में उन्हें चीनियों ने आगे बढ़ने से रोका तो बंगाल तथा अवध की अनिश्चित सीमाओं

का लाभ उठाकर दक्षिण की ओर बढ़े। 1801 ई. में अंग्रेजों ने गोरखपुर और बस्ती जिले प्राप्त कर लिए तो दोनों राज्यों की सीमाएँ मिल गई। कम्पनी तथा नेपालियों का झगड़ा तब हुआ जग नेपालियों ने बस्ती के उत्तर से बटवाल तथा पूर्व में शिवराज जिलों पर अधिकार कर लिया। लार्ड हेस्टिंग्स ने आते ही इन दोनों स्थानों पर फिर अधिकार कर लिया।

गोरखों ने इस कारवाई को आक्रमण माना तथा मई 1814 ई. में बटवाल जिले की तीन अंग्रेज पुलिस चौकियों पर आक्रमण कर दिया। हेस्टिंग्स ने तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। सतलुज से कोसी नदी तक उनके विरूद्ध चार स्थानों पर से आक्रमण करने की योजना बनाई। वह स्वयं मुख्य सेनापति था तथा उसके पास 34000 सैनिक थे। गोरखों के पास कुल 12000 हजार सेना थी। अंग्रेजों के 1814–1815 के अभियान पूर्णतय विफल रहे। जनरल गलिसपाई का कालमं के दुर्ग पर आक्रमण विफल रहा तथा वह स्वय वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकार मेजर मार्डिनल भी कालमं दुर्ग को जीतने में असफल रहा। इससे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। परन्तु अंग्रेज हताश नहीं हुए। कर्नल निकलस तथा गार्डनर ने कुमाऊँ की पहाड़ियों में स्थित अल्मोड़ा पर अप्रैल 1815 में, तथा आक्टर लोनी ने मालाओं नगर को गोरखों से छीन लिया।

फिर भी गौरखों ने बड़ी वीरता से अंग्रेजों से मुकाबला किया। बल से जब विजय प्राप्त नहीं हो सकी तब अंग्रेजों ने छल पूर्वक कुछ गोरखों को मिलाने का प्रयास किया। गोरखों के सेनापति को बहुत प्रयास करने पर भी अंग्रेज अपनी तरफ करने में असफल रहे। छापामार राज पद्धति द्वारा गोरखों ने अंग्रेजों को कई स्थानो पर पराजित किया। पहाड़ी प्रदेशों में मार्गों की कठिनाई के कारण अंग्रेज आगे बढ़ने में असमर्थ रहे तथा उनकी सेनाएँ पीछे हटने लगी। धन का लोभ देकर अंग्रेजों ने गोरखों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया तथा विवश होकर नेपाल के राजा ने सन्धि करना स्वीकार किया।

सुगौली की सन्धि

मार्च 1816 ई. में अंग्रेजो और गोरखों के मध्य सुगौली के स्थान पर सन्धि हुई इसके अनुसार नेपाल सरकार ने अंग्रेजों को गढ़वाल, कुमाऊँ, शिमला, नैनीताल तथा अल्मोड़ा के प्रदेश दिये। तथा काठमाण्डू में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी। एक तो उन्हें नेपाल के कुछ प्रसिद्ध प्रदेश प्राप्त हुए। दूसरे अंग्रेजों ने गोरखों से मित्रता स्थापित कर ली जो बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। इसके पश्चात अंग्रेजों ने अलग से गोरखा क्षेत्र का निर्माण किया जिन्होंने 1859 ई. में अंग्रेजों की बहुत मदद की।

पिण्डारियों का दमन

पिण्डारियों की कोई जाति न थी, न ही उनकी उत्पत्ति का ठीक–ठीक से पता चलता। वे प्रधानतः मध्य प्रदेश तथा राजपुताना में निवास करते थे। और आस पड़ोस के राज्यों पर अचानक आक्रमण करके लूटपाट करना ही उनका पेशा बन गया था। पेशवा बाजीराव ने सर्वप्रथम इनका प्रयोग अनियमित घुड़सवार सेना के रूप में किया था। बाद में उनका सम्बन्ध मराठा सरदार सिन्धिया तथा हौल्कर से हो गया। समय–समय पर वे मराठों की सहायता करते थे। इसी कारण मराठा सरदार उनको संरक्षण प्रदान करते थे। परन्तु जैसे–जैसे मराठों की शक्ति घटती चली गई वे स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने लगे, उनका मुख्य पेशा लूटमार हो गया। अठारहवीं शताब्दी की राजनैतिक अस्थिरता के कारण मध्य भारत तथा अंग्रेजों के राज्य में उनका उपद्रव और भी बढ़ गया। उनकी संख्या में भी वृद्धि हो गई थी, वे टिड्डी दल की तरह इधर–उधर घूमने लगे तथा निडरता पूर्वक, मध्य भारत, राजपुताना, मालवा तथा गुजरात में छापा मारने लगे। सम्पूर्ण मध्य भारत उनके अत्याचारों से पीड़ित था। ये गांव व नगरों को जला देते थे तथा नागरिकों पर अमानुषिक अत्याचार करते थे। 1812 ई. में पिण्डारियों ने बुन्देल खण्ड को 1815 में निजाम के राज्य को 1816 में उत्तरी सरकार को बुरी तरह लूटा। क्योंकि बुन्देलखण्ड तथा उत्तरी सरकार कम्पनी राज्य में थे तथा निजाम को सहायक सन्धि के अनुसार कम्पनी का संरक्षण प्राप्त था। अतः लार्ड हेस्टिंग्स ने पिण्डारियों का दमन करने का निश्चय किया।

हेस्टिंग्स ने बड़ी सावधानी और सर्तकता से तैयारियाँ की। उसने लगभग एक लाख सैनिकों की सेना इस कार्य के लिये तैयार की और उसे दो भागों में बांट दिया। युद्ध योजना बनाई गई कि एक सेना उत्तर की ओर, तथा दूसरी दक्षिण की ओर चले और चारों ओर से पिण्डारियों को घेर लिया जाए, जिससे वे भाग न सकें। इस प्रकार चारों ओर से पिण्डारियों को घेर कर उन

पर आक्रमण किया गया। असंख्य पिण्डारी मार डाले गये और जो बचे थे वे भाग खड़े हुए। उनके नेताओं ने आत्म समर्पण कर दिया और उन्हें जागीरें दे दी गई। जहाँ वे शान्ति का जीवन व्यतीत करने लगे। पिण्डारियों के नेता अमीर खाँ ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली तथा करीम खाँ ने आत्म समर्पण कर दिया, वसील मुहमद को बन्दी बना लिया गया उसने आत्म हत्या कर ली। उनका वीर नेता चालु जंगलों की ओर भाग गया, जहाँ उसे एक चीते ने मार डाला। इस प्रकार हेस्टिंग्स ने जनता को पिण्डारियों के अभिशाप से मुक्त करवाया।

पठानों का दमन

पिण्डारियों की तरह पठान लुटेरों का भी एक संगठित समूह था। उनके नेता अमीर खाँ तथा मुहमद शाह खाँ थे। उनका लूटमार का क्षेत्र मुख्यतः राजपुताना था। वे किसी न किसी भारतीय रजवाड़े के साथ सम्बन्धित रहते थे तथा उनसे धन लेकर उनके पारिवारिक झगड़ों में हस्तक्षेप किया करते थे। सम्पूर्ण राजस्थान में इन पठानों का आतंक छाया हुआ था।

इस समय अंग्रेज भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करने में लगे हुए थे, अतः पठानों के साथ उनका झगड़ा होना अनिवार्य था। लेकिन पठानों के साथ अंग्रेजों ने कूटनीति से काम लिया। अंग्रेज रेजीडेण्ट सर चार्ल मेटकॉफ ने पठान नेता अमीर खाँ से बातचीत आरम्भ की और 7 नवम्बर 1817 को दोनों की बीच एक सन्धि हो गई। सन्धि के अनुसार अमीर खाँ ने अपनी सेना समाप्त कर दी। जो भूमि उसे होल्कर राज्य से प्राप्त हुई थी, अंग्रेजों ने उसी के पास रहने दी। और उसे टॉक का नवाब स्वीकार कर लिया।

राजपूत रियासतों के साथ सम्बन्ध

लार्ड हेस्टिंग्स ने राजपुताना तथा मध्य भारत के छोटे--छोटे भाग पर अंग्रेजी प्रभुत्ता की स्थापना की। अठारहवीं शताब्दी में सारा राजस्थान पारस्परिक शत्रु, गृह कलह, सामंतवादी संघर्ष में उलझा हुआ था और चारों तरफ अशान्ति फैली हुई थी, ऐसी स्थिति में राजपूत राज्यों कों अंग्रेजी साम्राज्य वाद का शिकार होना स्वाभाविक था। लार्ड हेस्टिंग्स ने आते ही राजपूताना पर अंग्रेजी प्रभाव स्थापित करने का निश्चय किया। इसके लिये उसने 1817 से 1828 ई. तक कोटा, उदयपुर, बुन्दी, विशनगढ़, बीकानेर, जयपुर, बसवार, जयसलमेर तथा शिरोही आदि के शासकों को कम्पनी के साथ सन्धि करने को राजी कर लिया। इन सन्धियों के अनुसार राजपूत राज्यों की रक्षा का भार कम्पनी के जिम्मे रहा और उसकी विदेशी नीति पर कम्पनी का नियन्त्रण कायम रहा। इस प्रकार राजपूत राज्य अंग्रेजों के अधीन आ गये।

हेस्टिंग्स की मराठा नीति

हेस्टिंग्स का उद्देश्य भारत में अंग्रेजों को सर्वश्रेष्ठ शक्ति बनाना था। उसके लिए मराठों का दमन आवश्यक था। इस समय मराठों के प्रदेशों में अव्यवस्था फैली थी इससे उसका कार्य और भी सरल हो गया। बरार का शासक भौंसले इनमें सबसे निर्बल था, राधोजी भौंसले की 22 मार्च 1816 में मृत्यु हो गई, उसके पश्चात उसका पुत्र परशुजी गद्दी पद बैठा, जो बहुत ही दुर्बल था। राजमाता बुधाबाई तथा राजा के चचेर भाई अप्पाजी में राजगद्दी को लेकर झगड़ा था। क्योंकी अप्पाजी अपने आप को परशुजी का उत्तराधिकारी मानता था। अप्पा साहिब अंग्रेजों की सहायता चाहते थे। इसके फलस्वरूप उसने अंग्रेजों से 17 मई 1716 को नागपुर की सन्धि की जिसके अनुसार 6 पैदल बटालियने एक घुड़सवार रेजीमेण्ट तथा एक तोपखाना नागपुर में रखा दिया गया। अप्पाजी ने इसके व्यय के लिए 7½ लाख रूपये वार्षिक देना स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त भौंसल के विदेशी मामले भी कम्पनी के अधीन आ गये। मेल्कम के अनुसार यह अंग्रेजों के लिये बहुत भाग्यशाली घटना थी और इससे मराठा संघ पर घातक प्रहार हुआ।

पेशवा के साथ सन्धि

पेशवा ने अंग्रेजों के साथ पहले ही बसी की सन्धि 1802 में की थी। लेकिन पेशवा बाजीराव का अंग्रेजों की अधीनता बहुत खलती थी और उस पर अंग्रेजी दबाव दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था। कम्पनी ने पेशवा को 6 धाराओं वाले एक प्रतिज्ञा पत्र का पुनः हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया, जिसके अनुसार दक्षिणी जागीरदारों को उनकी जागीरें पुनः दे दी गई।

1814 ई. में पेशवा ने बड़ोदा के गायकवाड़ से जो उसके अधीन था, कर के रूप में लगभग एक करोड़ रूपये की मांग की। कम्पनी के कहने पर गायकवाड़ ने अपना दूत गंगाधर शास्त्री पूना भेजा, लौटते समय नासिक के स्थान पर पेशवा के प्रधानमंत्री त्रिकम्बजी के कहने पर उसका वध कर दिया गया। एलफिन्टन जो अंग्रेज रेजीडेण्ट थे ने त्रिकम्बजी को सौंपने की मांग की। कुछ समय के पश्चात् पेशवा ने त्रिकम्बजी जी को पकड़कर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। त्रिकम्बजी जी अक्तुबर 1816 में थाना जेल से भाग निकले। उस समय लार्ड हेस्टिंग्स नेपाल युद्ध से निवृत हो गया था उसने एलफिन्सटन को लिखा कि वह पेशवा के एक निश्चित समय के अन्दर–अन्दर त्रिकम्बजी को पुनः लौटाने की मांग करें। यदि पेशवा विलम्ब करे तो तुरन्त उसे शत्रु घोषित करके युद्ध कर दे। 7 मई 1817 को एलफिन्सटन ने पेशवा से कहा कि एक मास के भीतर त्रिकम्बजी को पेश करो तथा रायगढ़ सिंहगढ़ तथा पुरन्धर के दुर्ग जमानत के रूप में हमारे हवाले कर दो। पेशवा इस विषय में सोच ही रहा था कि कर्नल स्मिथ ने पूना को घेर लिया तथा दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया। 13 जून 1817 में पेशवा ने पूर्णतया हथियार डाल दिये तथा एक नई सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार–

1. मराठा संघ समाप्त हो गया।
2. पेशवा अंग्रेज रेजीडेण्ट के माध्यम से ही किसी दूसरी शक्ति के साथ सम्बन्ध रख सकता था।
3. पेशवा ने गायकवाड़ से अपनी 4 लाख रूपये वार्षिक पेंशन की माँग छोड़ दी।
4. पेशवा ने अहमद नगर के दुर्ग, बुंदेलखण्ड तथा शेष भारत के अधिकार कम्पनी को दे दिये।
5. पेशवा ने यह भी स्वीकार किया कि कम्पनी अगर चाहे तो पूना में भी अपनी सेना रख सकती है। तथा उसके क्षेत्र में से कम्पनी अपनी सेना भेज सकती है।

सिन्धिया से सन्धि (5 नवम्बर 1817 ई.)

सितम्बर 1817 में लार्ड हेस्टिंग्स एक विशाल सेना लेकर कानपुर पहुंचा। उसने सिन्धिया को युद्ध करने या सन्धि पर हस्ताक्षर करने को कहा। अन्त में सिन्धिया ने मजबूर होकर एक अत्यन्त लज्जाजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े, जिसके अनुसार –

1. सिन्धिया ने 5000 सैनिक पिण्डारियों के विरूद्ध सहायता देना स्वीकार किया।
2. सिन्धिया अपनी सेना की संख्या नहीं बढ़ायेगा तथा पिण्डारियों के विरूद्ध उसे जो कार्य दिया जायेगा करेगा।
3. पिण्डारियों के विरूद्ध अभियान के दिनों में अमीरगढ़ तथा हिन्दया के दुर्गों में अंग्रेजी सेना रहेगी।
4. पिण्डारियों को दी गई भूमि उसके वास्तविक स्वामियों को लौटा दी जायगी।

यद्यपि बाह्य रूप से सिन्धिया अब भी स्वाधीन लगता था तथा उसके सम्बन्ध कम्पनी के केवल 'मित्रवत' ही थे, परन्तु वास्तव में उसकी स्थिति दायनीय हो गई थी। जून 1818 ई. में सिन्धिया को एक नई सन्धि मानने के लिए मजबूर किया गया। उसने अजमेर अंग्रेजों को तथा इस्लाम नगर का प्रदेश कम्पनी की आज्ञा पर भोपाल के नवाब को दे दिया। सिन्धिया ने अपने यहाँ एक अंग्रेज रेजीडेण्ट भी रख लिया। अब वह नाममात्र का स्वतन्त्र था।

नागपुर के अप्पा साहिब जो परशु जी भौंसले की हत्या कर के गद्दी पर बैठ गये थे, ने 26 नवम्बर 1817 को युद्ध की घोषण कर दी परन्तु सीता बर्डी के स्थान पर हार खाई।

इन्दौर से आई होल्कर की सेना भी महीदपुर के स्थान पर हार गई तथा उसे भी विवश होकर जनवरी 1818 ई. में मन्दपौर की सन्धि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उसने अपने राज्य का लगभग तीसरा भाग अंग्रेज कम्पनी को देना पड़ा। उसने अपने यहाँ एक सहायक सेना तथा अंग्रेज रेजीडेण्ट भी रखना स्वीकार किया।

इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्स ने अपनी कूटनीति सूझ–बूझ तथा युद्धों से मराठा शक्ति को नष्ट कर दिया तथा एक विस्तृत प्रदेश भी अंग्रेज को मिल गया।

हेस्टिंग्स का मूल्यांकन

लार्ड हेस्टिंग्स का नाम भारत के प्रमुख गवर्नर जनरलों में आता है। उसकी गणना भारत के ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माताओं में

की जाती है। भारत में आने के समय वह 60 वर्ष का था। परन्तु फिर भी वह अत्यन्त साहसी था, भारत में वह कम्पनी को सर्वोच्च शक्ति का रूप देने के निश्चित उद्देश्य से आया था और इस उद्देश्य की प्राप्ति से उसने पूर्ण सफलता प्राप्त की। वैलजली द्वारा छोड़े गए अधूर कार्यों को उसने पूरा किया। जनताको सुख और शान्ति प्रदान की। कई युद्ध में उसने सेना का नेतृत्व भी किया। उसने 28 युद्ध लड़े तथा 120 दुर्ग जीते। वह वैलजली की नीति का कड़ा आलोचक था, परन्तु वैलजली के कार्यों को पुरा करने का श्रेय उसे ही मिला। जो राज्य कम्पनी की बराबरी करना चाहते थे, वे सब परास्त कर दिए गए तथा भारत में कम्पनी की सर्वश्रेष्ठता पूर्णतया स्थापित हो गई। इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्स का कार्यकाल एक विशेष महत्त्व रखता है।

लार्ड डलहौजी

जनवरी 1848 में डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल होकर आया तथा 1856 तक वह इस पद पर आसीन रहा। वह एक घोर साम्राज्यवादी था। तथा अपने आठ वर्षों के शासन काल में अग्रगामी नीति का अनुसरण करता रहा। ब्रिटिश साम्राजय का विसतार उसका मुख्य ध्येय था और उसमें इसको खूब सफलता मिली। उसका लक्ष्य भारत में एक विस्तृत, सुसंगठित राज्य की स्थापना करना था।

अपनी साम्राज्यवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिये डलहौजी ने तीन उपायों का आश्रय लिया। प्रथम उपाय युद्ध था। उसने पंजाब और बर्मा पर आक्रमण कर और युद्ध में उन्हें पराजित करके ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया। द्वितीय उसने कुशासन और भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर कई राज्यों को कम्पनी के राज्य में मिला लिया। अवध के राज्य को इसी प्रकार कम्पनी में मिलाया था। कम्पनी के राज्य के विस्तार का तीसरा उपाय गोद लेने की प्रथा को खत्म करना अथवा लैप्स का सिद्धान्त था। इसको इस्तेमाल करके सतारा, जयपुर, झांसी, बलात, सम्भलपुर, उदयपुर, नागपुर आदि राज्यों को कम्पनी में मिला लिया।

लैप्स का सिद्धान्त या लैप्स की नीति

लैप्स के सिद्धान्त से हमारा मतलब उस सिद्धान्त से है जिसे विशेष रूप से लार्ड डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने के लिए लागू किया। इस सिद्धान्त के अनुसार जब किसी आश्रित देशी राज्य के शासक की बिना पुत्र के मृत्यु हो जाती थी तो उसे गोद लिये पुत्र को राज सिंहासन प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार की अनुमति लेनी पड़ती थी। लार्ड डलहौजी ने इस नीति में फेर बदल कर यह नीति बनायी कि गोद लिये पुत्र का सिंहासन पर अधिकार स्वीकार न किया जाए तथा उसके इस सिद्धान्त को सख्ती से लागू करते हुए अनेक देशी राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

यह नीति कोई नवीन नहीं थी और न ही डलहौजी इसका अविष्कारक था। इसका प्रयोग पहले भी कई बार किया जा चुका था। 1834 ई. में कम्पनी के डायरेक्टरों ने लिखा था कि पुत्रहीन होने पर भारतीय राजाओं अथवा नवाबों को गोद लेने की आज्ञा सदा न दी जाये। 1841 ई. में डायरेक्टरों ने फिर लिखा कि प्रदेश अथवा राजस्व प्राप्ति का कोई भी अवसर हाथ से न जाने दिया जाये। लैप्स की नीति पर आचरण विलियम बैन्टिक और आकलेण्ड आदि के समय में भी हुआ था। इस सिद्धान्त पर चलते लार्ड डलहौजी के पहले के गवर्नर जनरलों ने वास्तविक पुत्र न होने पर देशी राजाओं के राज्यों को मिलाने का कोई विशेष प्रयत्न न किया।

लैप्स के सिद्धान्त द्वारा मिलाए गए प्रदेश

सतारा – सतारा के शासक का अपना कोई पुत्र नहीं था, परन्तु 1848 ई. में अपनी मृत्यु से पहले उसने एक पुत्र को गोद ले लिया था। फिर भी लार्ड डलहौजी ने 1848 ई. में इस राज्य को अंग्रेजी साम्राज्य में इस आधार पर मिला लिया कि राजा ने पुत्र गोद लेते समय अंग्रेजों की अनुमति नहीं ली थी।

झांसी (1853 ई.) – झांसी का शासक पेशवा बाजीराव के अधीन था। बाजीराव द्वितीय की पराजय के पश्चात् यह प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। परन्तु 1817 ई. में लार्ड हेस्टिंग्स ने झाँसी का यह प्रदेश एक शासक राव रामचन्द्र को सौंप दिया। 1853 में इस देश का अन्तिम शासक राव गंगाधर की मृत्यु हो जाने के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने उसके दत्तक पुत्र

आनन्द राव को मान्यता देने से इन्कार कर दिया और झाँसी को 1853 ई. में अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। राव गंगाधर ने एक पत्र द्वारा अंग्रेजों से पुत्र गोद लेने की अनुमति मांगी थी परन्तु लार्ड डलहौजी ने स्वीकृति देने से इन्कार कर दिया था। इस पर झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई क्रुद्ध होकर बदला लेने की तैयारी में जुट गई।

नागपुर 1854 ई. – लैप्स के सिद्धान्त के अनुसार मिलाए गये राज्यों में नागपुर सबसे बड़ा राज्य था। इस अकेले राज्य का क्षेत्रफल 80,000 हजार वर्ग मील था। इसे भी अंग्रेजों ने लार्ड हैस्टिंग्स के कार्यकाल में मराठों के चौथे युद्ध में विजित किया था। परन्तु 1878 ई. में इसे भौंसले वंश के एक सदस्य को सौंप दिया। 1853 ई. में इस वंश के अन्तिम शासक की मृत्यु हो गई उसका न तो अपना पुत्र था और ना ही मृत्यु से पहले गोद लिया था। परन्तु अपनी पत्नी को मृत्यु से पहले गोद लेने के लिये कह दिया था। लार्ड डलहौजी ने इसे मानने से इन्कार कर दिया और 1854 में नागपुर को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।

इन राज्यों के अतिरिक्त जैतपुर 1849, सम्भलपुर 1849 ई., बधार 1850 ई., उदयपुर 1851 ई. जो इतने महत्त्वपूर्ण नहीं थे, को भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

आलोचना

लैप्स की नीति के आलोचकों ने भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं –

1. **पक्ष का तर्क** – विलियम हण्टर जैसे इतिहासकारों ने डलहौजी की इस नीति की बड़ी प्रशंसा की है, उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि इस सिद्धान्त द्वारा देशी राज्यों को ब्रिटिश राज्य में शामिल करना किसी भी प्रकार से अन्यायपूर्ण नहीं था।
   (1) डलहौजी ने देशी शासकों को धार्मिक रीति रिवाजों से लिए गये पुत्र गोद लेने की मनाही न कि, उसने तो केवल गोद पुत्रों के राजगद्दी पर अधिकार अस्वीकार किया।
   (2) यह सिद्धान्त पहले से ही चला आ रहा था, डलहौजी ने तो केवल इसे व्यापक रूप दिया था। अतः उसके लिये उसे ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता।
   (3) देशी राजा प्रायः भोग विलास में व्यस्त रहते थे तथा प्रजा की भलाई की ओर ध्यान नहीं देते थे। उनके राज्यों में ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित हो जाने से वहाँ कुशल प्रशासन स्थापित हो गया। तथा लोगों की भलाई के कार्य किए जाने लगे।
   (4) यह सिद्धान्त केवल आश्रित राज्यों पर ही लागू होता था, जिन्हें कभी अंग्रेजों ने स्थापित किया था। इस बात से उन्हें यह अधिकार मिल जाता था कि वे जब चाहे इन्हें अपने राज्य का अंग बना ले।
   (5) डलहौजी ने देशी राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित करते समय स्वर्गीय राजाओं की विधवा रानियों तथा उनके परिवार के लिए उचित पेंशन दी।
   (6) ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा तथा स्थाई शान्ति के लिए डलहौजी इन राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करना आवश्यक समझता था।

2. **विपक्ष में तर्क** – कुछ इतिहासकारों ने लैप्स की नीति की कड़ी आलोचना की है। उनमें स्लीमैन, ओटम और केथ प्रमुख हैं उन्होंने इस नीति के विपक्ष में ये तर्क प्रस्तुत किए हैं –
   (1) डलहौजी के इस सिद्धान्त द्वारा देशी शासकों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाई। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक हिन्दू शासक के यहाँ पुत्र होना आवश्यक समझा जाता था। जिस किसी को पुत्र नहीं होता था, वह अपने किसी सम्बन्धी के पुत्र को गोद लेता था। इसका कारण यह था कि मृत्यु के पश्चात् अन्तिम संस्कार पुत्र ही करता था।
   (2) भारत में राज्य राजा की निजी सम्पत्ति मानी जाती थी। वह जिसे चाहे अपना राज्य सौंप सकता था। अतः डलहौजी द्वारा उनसे यह अधिकार छीन लेना न्याय संगत नहीं था।

(3) यद्यपि देशी शासक कुशल शासन प्रबन्धक नहीं थे, तथापि वे लोगों में अधिक प्रिय थे। इसलिए राज्यों के लोगों की इच्छा के विरूद्ध ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाना अन्यायपूर्ण था।

(4) यह कहना ठीक नहीं है कि डलहौजी ने इस सिद्धान्त को आश्रित राज्यों पर ही लागू किया। अंग्रेज आश्रित राज्यों ब्रिटिश रक्षा में मित्र राज्यों में कोई भेद नहीं समझते थे। और डलहौजी ने दोनों प्रकार के राज्यों को ब्रिटिश सरकार के अधीन समझते हुए इस सिद्धान्त को लागू किया।

(5) डलहौजी उच्चकोटि का साम्राज्यवादी था और उसने अपनी साम्राज्यवादी लालसा की पूर्ति के लिये ही इस नीति का आश्रय लिया।

लार्ड डलहौजी के सुधार

लार्ड डलहौजी का शासनकाल केवल उसकी साम्राज्यवादी नीति के लिये ही नहीं अपितु नाना प्रकार के आन्तरिक सुधारों के लिये भी जाना जाता है। उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने के साथ–साथ लोगों के नैतिक विकास के लिये महत्त्वपूर्ण सुधार किए। उसके प्रमुख सुधारों का विवरण इस प्रकार है –

प्रशासनिक सुधार

1. सर्वप्रथम लार्ड डलहौजी ने बंगाल के प्रबन्ध के लिये एक नया लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त किया। इससे पहले भारत के गवर्नर जनरत ही बंगाल के कार्य को सम्भालता था, क्योंकि अब अंग्रेज साम्राज्य का विस्तार होने से गवर्नर जनरल का कार्य बहुत बढ़ गया था, इसलिए उसे बंगाल का कार्य सम्भालने से मुक्त कर दिया गया।
2. नवविजित प्रदेशों की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता थी इसलिए इन प्रान्तों में "नान रेगुलेशन प्रणाली" को लागू किया गया। इस प्रणाली के अनुसार पंजाब, मध्य प्रदेश, अवध आदि नये जीते हुए प्रदेशों का प्रबन्ध चीफ कमिश्नरों को सौंप दिया, जो गवर्नर जनरल व उसको कौंसिल के प्रति सीधे उत्तरदायी होते थे। इन कमिश्नरों को अनेक सैनिक तथा असैनिक अधिकार प्राप्त थे। इसके अलावा इन्हें वैधानिक, प्रबन्धक व न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त थी। इस प्रबन्ध से एक तो धन की बचत हुई और दूसरे प्रबन्ध व्यवस्था की ओर अधिक अच्छी प्रकार से ध्यान दिया जा सका। बंगाल, बम्बई और मद्रास को गवर्नर के अधीन ही रहने दिया गया और उन्हें रेगुलेशन प्रान्तों का नाम दिया गया।
3. केन्द्रीय सरकार के विभिन्न कार्यों को अलग–अलग वर्गों में बांटकर उन्हें भिन्न–भिन्न विभागों के हवाले कर दिया गया। इस विभाजन के द्वारा काम पहले से कहीं सुचारू रूप से होने लगा।
4. प्रान्तों को आगे अनेक जिलों में बांट दिया गया जिन्हें प्रशासन के लिये डिप्टी कमिश्नर के अधीन रख दिया गया। इन अधिकारियों को, प्रशासन, न्याय तथा राजस्व सम्बन्धी विस्तृत अधिकार सौंप दिए गए। शक्ति के इस केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप लोगों को अनेक कष्ट सहन करने पड़े।
5. अंग्रेजी साम्राज्य अब काफी विस्तृत हो चुका, इसलिये शिमला जेसे केन्द्रीय स्थान को गर्मियों की राजधानी बना दिया गया।

सैनिक सुधार

लार्ड डलहौजी की विलीनीकरण नीति के फलस्वरूप अंग्रेजी साम्राज्य का खूब विस्तार हो चुका था। पश्चिम में उसकी सीमा अफगानिस्तान से जा लगी थी। इसलिए लार्ड डलहौजी ने सैनिक सुधारों की आवश्यकता को अनुभव किया। बदली हुई परिस्थिति की मांग को पूरा करने के लिए उसने अनेक सैनिक सुधार किए।

1. उसने सेना को बंगाल से बदल कर धीरे–धीरे पश्चिम की ओर ले जाना आरम्भ कर दिया।
2. बंगाल के तोपखाना कार्यालय को कलकत्ता से बदल कर मेरठ भेज दिया गया।
3. सेना का मुख्य कार्यालय भी धीरे–धीरे कलकत्ता से शिमला लाया गया।

4. भारतीय सेना से होने वाले विद्रोह को रोकने के लिए उसने छोटी--छोटी टुकड़ियों में विभाजित कर दिया गया और उन टुकड़ियों को एक दूसरे से अलग रखा गया।
5. भारतीय सैनिकों की प्रतिक्रिया को रोकने के लिए गोरखों की भर्ती करके अनेक दस्ते तैयार किये गये।
6. इसी कार्य के लिए पंजाब के एक अनियमित सेना संगठित की गई जिसे सीधा पंजाब सरकार के नियंत्रण में रखा गया।
7. डलहौजी का विश्वास था कि गोरखा सैनिक ब्रिटिश सरकार के प्रति अधिक वफादार है। अतः उसने गोरखा सैनिकों के कुछ दस्ते और भर्ती करके उनकी संख्या में वृद्धि कर दी। 1857 के विद्रोह में गोरखे अंग्रेजों के लिए बड़े सहायक सिद्ध हुए।

रेल

लार्ड डलहौजी को भारतीय रेलवे का पिता कहा जाता है। उसके शासनकाल में ही भारत में पहली बार रेल गाड़िया चलीं। 1853 में उसने अपना प्रसिद्ध रेलवे मिनर तैयार किया, जिसमें समस्त भारत में रेलों का विस्तार करने की योजना बनाई गई। सबसे पहले रेलवे लाईन 1853 ई. में बम्बई से थाणे तक बनाई गई 1854 में कलकत्ता से रानीगंज तक की रेलवे लाईन का निर्माण हुआ। 1856 ई. तक भारत के विभिन्न भागों में बहुत सी रेलवे लाईन स्थापित हो चुकी थी। लार्ड डलहौजी द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार इसके पश्चात रेलों का विस्तार हुआ। लार्ड डलहौजी ने तीन मुख्य उद्देश्यों को सामने रखकर भारत में रेलों का प्रसार किया। सर्वप्रथम उसकी सहायता से सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना आसान हो जाये। दूसरे भारतीय साम्राज्य पर जो अब काफी विस्तृत हो गया था राज्य करना आसान हो जाएगा। तीसरे रेलवे लाईन बिछाने का ठेका अंग्रेज पूंजीपतियों को देने से उसकी अपनी जाति व देश को काफी आर्थिक लाभ होगा। लेकिन चाहे लार्ड डलहौजी के रेलवे प्रचलन के कोई उद्देश्य रहे हों। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसका भारतीय जनता को भी काफी लाभ रहा। उनके लिये यात्र करना आसान हो गया, व्यापार में काफी वृद्धि हुई और भारत में राष्ट्रीयता की भावना फैलने में काफी सहयोग मिला।

डाक तथा तार

लार्ड डलहौजी के कार्यकाल में भी भारत में बड़े नगरों में आधुनिक ढंग के डाकघर व तार घर बनाए गये। लार्ड डलहौजी से पहले डाक का कोई ठीक प्रबन्ध नहीं था। डाक की सेवा की फीस खत भेजन वाले से नहीं वरन् पाने वाले से नकद दामों में ली जाती थी। केवल यही नहीं डाक फीस भी एक जैसी नहीं वरन् दूरी पर निर्भर करती थी। ऐसे प्रबन्ध से लोगों को काफी असुविधा होती थी। लार्ड डलहौजी ने इन त्रुटियों को दूर किया इससे टिकटें लगाने की रीति को चलाया और सारे देश में एक जैसी डाक फीस निश्चित की। यह फीस पत्र भेजने वाले से टिकटों के रूप में ली जाती थी।

लार्ड डलहौजी के काल में सबसे पहले तार की लाईन बिछाई गई तार की सहायता से कलकत्ता को पेशावर के साथ बम्बई को मद्रास के साथ तथा अन्य महत्वपूर्ण नगरों को आपस में मिला दिया गया। 1857 के विद्रोह के समय इस तार विभाग ने ब्रिटिश सरकार की विशेष सहायता की।

सार्वजनिक निर्माण विभाग

लार्ड डलहौजी से पहले सार्वजनिक कार्यों का निर्माण विभाग एक सैनिक बोर्ड के अधीन था जिसका यह परिणाम था केवल वही कार्य किए जाते थे जिनका सम्बन्ध सैनिक मामलों से होता था। इस विधि से जन साधारण के भलाई के कार्यों की प्राय अवहेलना ही की जाती थी। लार्ड डलहौजी ने एक पृथक सार्वजनिक निर्माण विभाग खोला। इस विभाग के प्रयत्नों के फलस्वरूप जन साधारण की भलाई के लिए अनेक नहरों सड़कों और पुलों आदि का निर्माण होने लगा। कलकता से पेशावर तक एक जरनैली सड़क (Grand Trunk Road) का निर्माण किया गया जो थौड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज भी कायम है। गंगा नदी से सुप्रसिद्ध गंगा नहर निकाली गई और पंजाब में बारी दोआब नहर का काम प्रारम्भ किया गया। सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए अच्छे इन्जिनियर मिल सके इस उद्देश्य से रूड़की इंजीनियरिंग कालेज खोला गया जो अब भी कायम है।

व्यापारिक सुधार

लार्ड डलहौजी ने अनेक व्यपारिक सुधार भी किए परन्तु वे अधिकतर अंग्रेज पूंजीपतियों तथा व्यापारियों के हित को ध्यान में रखकर किए गए। उसने अंग्रेज व्यापारियों के हितों को ध्यान में रखते हुए खुले व्यापार की नीति का अनुसरण किया और व्यापार पर लगे हुए सभी प्रतिबन्ध उठा लिये। बन्दरगाहों पर बाहर से आने वाले माल पर लिए जाने वाले चुंगी और अनेक प्रकार के अन्य कर बन्द कर दिये गये। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि इंग्लैण्ड में से आकर माल यहां सस्ता बिकने लगा और यहां का हाथ से बना हुआ माल उसका मुकाबला न कर सका। इस प्रकार भारतीय घरेलू दस्तकारी फेल होने लगी।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार

शिक्षा के क्षेत्र में लार्ड डलहौजी के काल में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। 1854 में बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल में प्रधान सर चार्ल्स बुड की ओर से एक महत्त्वपूर्ण पत्र प्राप्त हुआ जो साधारणतः 'वुड डिस्पैच के नाम से प्रसिद्ध है। इस पत्र में निम्नलिखित सिफारिशें की गई।

1. लन्दन विश्वविद्यालय के नमुने पर सभी प्रेजीडेंसियों में विश्वविद्यालय खोले जायें। आरम्भ में उनका कार्य केवल परिक्षाएं लेना ही हो न कि अध्यापन।
2. इस विश्वविद्यालय के अधीन कालेज खोले जायें यहा इण्टर या डिग्री तक की पढ़ाई कराई जाये।
3. प्रत्येक प्रान्त में एक शिक्षा विभाग खोला जाये।
4. हाई स्कूल और एंग्लों वर्नाकूलर स्कूलों में शिक्षा का माध्यम प्रान्त की स्थानीय भाषा को बनाया जाए।
5. शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए ट्रेनिंग कालेज खोला जाये।
6. प्राइवेट संस्थाओं को स्वीकृति तथा अनुदान देंकर स्कूल खोलने का प्रोत्साहन दिया जाए।
7. शिक्षा को पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष रखा जाये।
8. प्रत्येक प्रान्त में डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रकसन नियुक्त किया जाए और उसकी सहायता के लिए इन्सपेक्टर नियुक्त किया जाए।

वुड का शिक्षा सम्बन्धी पत्र भारत में शिक्षा के विकास के लिए अति महत्त्वपूर्ण कदम माना जाता है। धीरे–धीरे इस पत्र में दिये गये सुझावों को कार्य रूप दिया गया। 1857 ई. में सबसे पहले कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में युनिवर्सिटियां खोली गई और भारत के विभिन्न भागों में अधिक संख्या में स्कूल तथा कालेज खोले गये। डलहौजी ने ही रूढ़की इंजीनियरिंग कालेज की स्थापना की। डलहौजी ने पहली बार महिलाओं का उच्च शिक्षा कालेज खोला।

इस प्रकार भारत की आधुनिक शिक्षा की उत्पत्ति का श्रेय लार्ड डलहौजी को शासनकाल में ही प्राप्त है।

अध्याय-12

ब्रिटिश काल में पश्चिमी शिक्षा का विकास

(Development of Western Education During British Era)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुख्य काम व्यापार करना था। बाद में कम्पनी राज्य की स्थापना के कार्य में व्यस्त रही। इस कारण शिक्षा की और कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। फिर भी इस काल में शिक्षा की दिशा में ईसाई धर्म प्रचारकों ने कुछ कार्य अवश्य किया। इन धर्म प्रचारकों ने कलकत्ता और मद्रास में कुछ इलाकों में शिक्षा कार्य आरम्भ किया।

बंगाल में अंग्रेजी आधिपत्य की स्थापना होने के पश्चात् दो बातों ने भारत में शिक्षा प्रचार के लिये कम्पनी सरकार को प्रेरित किया। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुछ पदाधिकारियों ने भारतीय साहित्य का अध्ययन किया इस कार्य ने भारतीय जनता को भी उत्साहित किया। इस क्षेत्र में वारेन हेस्टिंग्स का योगदान महत्वपूर्ण है उसने कलकत्ता में इस्लाम धर्म के साहित्य के अध्ययन के लिये 1781 में एक कॉलेज की स्थापना की। 1791 में बनारस में कम्पनी के रेजीडेण्ट जीवायन डकन ने एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। सरकार की अपनी आवश्यकताओं ने भी शिक्षा की ओर ध्यान देने पर विवश किया। जैसे–जैसे कम्पनी का क्षेत्र बढ़ता गया भारतीय कर्मचारियों की भी प्रशासन में सहायता के लिये आवश्यकता बढ़ती गई। अतः अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षों में अंग्रेजी पढ़े–लिखे भारतीयों को तैयार करना आवश्यक हो गया। इस समय शिक्षा विकास की समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने में राजाराम मोहनराय ने भी योगदान दिया।

1813 को चार्टर एक्ट और भारतीय शिक्षा

1813 ई. में भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। इस वर्ष ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक नया चार्टर प्रदान किया। इस चार्टर एक्ट में एक धारा निश्चित की गई की जनता को शिक्षित करना कम्पनी का कर्त्तव्य है। इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी प्रथम बार शिक्षा के लिये उत्तरदायी बनाई गई। इसके द्वारा भारत में शिक्षा के प्रसार के लिये एक लाख रूपया खर्च करने की व्यवस्था की गई। यद्यपि यह धन भारत की विशाल जनता को शिक्षित बनाने के लिये पर्याप्त नहीं था। यह धन प्रतिवर्ष एकत्रित होता रहा। इसका मुख्य कारण था कि कम्पनी के अधिकारी एक मत नहीं थे कि भारत में शिक्षा का माध्यम क्या हो! अधिकांश अंग्रेज भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर का मत था कि भारतीयों को अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा दी जाए। राजा राम मोहन राय और उसके कुछ साथी भारत में अंग्रेजी शिक्षा जारी करने के प्रबल समर्थक थे। 1817 ई. में राजाराम मोहन राय, राधाकान्त देव और डेविड हेयर के प्रयत्न से कलकत्ता में एक कालेज खोला गया राजाराम मोहन राय का विचार था अंग्रेजी राज्य में उच्च पदों तक पहुंचने के लिये अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है।

इस प्रकार इस समय भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में दोनों ही विचारधाराएं प्रचलित रही। जो लोग अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन करते थे उन्हें आंग्लवादी (Anlicirt) तथा जो भारतीय ग्रंथों की शिक्षा के पक्ष पाती थे उन्हें प्राच्यवादी (Orientalist) कहा जाता था। लार्ड विलियम बैंटिक के गवर्नर जनरल बनने के समय तक आंग्लवादियों और प्राच्यवादियों में खूब वाद–विवाद होता रहा। गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक आंग्ल शिक्षा के समर्थक थे। 1833 के चार्टर के अधिनियम द्वारा शिक्षा की समस्या पुनः सामने आई। 1833 के चार्टर एक्ट में भारत में शिक्षा पर व्यय की जाने वाली राशि दस लाख रूपये प्रतिवर्ष कर दी गई। इसका तात्पर्य यह था कि कम्पनी के संचालक भारतीय शिक्षा को अब अत्यन्त आवश्यक समझने लगे थे कि भारत में इस दिशा में कोई प्रभावकारी कदम उठाया जाए।

लार्ड मैकाले की योजना

लार्ड मैकाले भारत में गवर्नर जनरल की कौंसिल का कानून सदस्य था जब वह भारत पहुँचा उस समय आंग्लवादी और प्राच्यवादियों में घोर विवाद था। सार्वजनिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो कमेटी बनाई गई थी उसमें अभी तक प्राच्यवादी की प्रधानता थी। मैकाले को जनरल कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। जब अन्तिम निर्णय का समय आया तो दोनों पक्षों के बराबर मत पाये गये। इस पर कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी भाषा के पक्ष में अपना निर्णायक मत दिया। इस निर्णय का सार यह था कि शिक्षा पर सरकार जो पैसा खर्च करे वह अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विद्या पर हो। 7 मार्च 1836 को भारत सरकार ने प्रस्ताव पास किया कि "ब्रिटिश सरकार का बड़ा उद्देश्य भारतीयों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान को प्रोत्साहन देना होना चाहिए। और शिक्षा के लिए निर्धारित धन राशि का सर्वोतम उपयोग अंग्रेजी शिक्षण पर किया जाए।" मैकाले का मत था कि अंग्रेजी राज्य की नींव सुदृढ़ करने के लिए भारतीयों से सहायता लेना आवश्यक है। उन्हें सरकार के निम्न पदों पर नियुक्त करना चाहिए और इसके लिए उन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान देना आवश्यक है।

इस प्रकार भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रसार करने में मैकाले की कोई निःस्वार्थ भावना नहीं थी। वरन् वह अपने देश के हित के लिए ही अंग्रेजी भाषा को भारत में प्रचलित करना चाहता था। वह अपने उद्देश्य में काफी सफल रहा। उसका परामर्श मानकर ही ब्रिटिश सरकार ने 1835 में शिक्षा सम्बन्धी नियम लागू किया था जिसके द्वारा भारतीयों को शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी घोषित कर दिया गया।

1835 के पश्चात भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार होने लगा। शिक्षा प्रचार के सम्बन्ध में निर्णय के पश्चात कम्पनी ने नई पाठशालायें खोलनी शुरू कर दी। 1836 ई. में तेईस राजकीय पाठशालाओं की स्थापना की गई 1853 तक हल्का बन्दी पाठशालाओं की योजना कार्यान्वित की गई। इस योजना द्वारा कुछ ग्रामों के मण्डल बना कर वहां शिक्षा की व्यवस्थ की गई तथा ग्राम की जमींदार आय का एक प्रतिशत इन पाठशालाओं पर व्यय करता था। इस प्रकार शिक्षित वर्ग संख्या में वृद्धि होने लगी। इस समय 1835 ई. कलकत्ते में एक मेडिकल कालेज की स्थापना की गई। रूड़की में एक इंजीनियरिंग कालेज खोला गया। 1852 में मद्रास में विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

वुड्स डिस्पैच

सर चार्ल्सवुड 1852 से 55 तक बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष थे। उसने 1854 में भारत की भावी शिक्षा के लिए एक वृहद योजना बनाई जिसमें अखिल भारतीय आधार पर शिक्षा की नियामक पद्धति की गठन किया गया। इसे प्रायः भारतीय शिक्षा का "मैग्नाकार्टा" कहा जाता है। इनकी सिफारिशें निम्नलिखित थी –

1. लन्दन विश्वविद्यालय के नमुने पर सभी प्रेजीडेंसियों में विश्वविद्यालय खोले जायें। आरम्भ में उनका कार्य केवल परिक्षाएं लेना ही हो न कि अध्यापन।
2. इस विश्वविद्यालय के अधीन कालेज खोले जायें यहा इण्टर या डिग्री तक की पढ़ाई कराई जाये।
3. प्रत्येक प्रान्त में एक शिक्षा विभाग खोला जाये।
4. हाई स्कूल और एंग्लों वर्नाकूलर स्कूलों में शिक्षा का माध्यम प्रान्त की स्थानीय भाषा को बनाया जाए।
5. शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए ट्रेनिंग कालेज खोला जाये।
6. प्राइवेट संस्थाओं को स्वी ति तथा अनुदान देकर स्कूल खोलने का प्रोत्साहन दिया जाए।
7. शिक्षा को पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष रखा जाये।
8. प्रत्येक प्रान्त में डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रकसन नियुक्त किया जाए और उसकी सहायता के लिए इन्सपेक्टर नियुक्त किया जाए।

इस प्रकार वुड्स की सिफारिशों के आधार पर शिक्षा प्रसार के लिए विभिन्न कदम उठाये गये।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन

अंग्रेजों के भारत आने यहां स्थाई रूप से जम जाने के कारण 18वीं शताब्दी में भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन

का काफी पतन हुआ। इस युग में भारत की वैभवशाली सभ्यता की सजीवता का अन्त हो चुका था। भारतीय नवयुवकों को खास कर अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण अपनी सभ्यता और संस्कृति में विश्वास नहीं रहा था। भारतीय अध्यात्मिक विचार लुप्त हो गये थे और पश्चिम के भौतिकवाद का प्रभाव बढ़ रहा था भारतीय सामाजिक जीवन में अनेक बुराईयां घर कर चुकी थी और उन्होंने सामाजिक जीवन को खोखला कर दिया था। इस सबके फलस्वरूप 19वीं शताब्दी में भारत में पुर्नजागृति उत्पन्न हुई और भारत में कई धार्मिक सामाजिक आन्दोलन हुए। इन सबका उद्देश्य प्राचीन संस्कृति का पुनरूत्थान करना धर्म में सुधार करना, सामाजिक बुराईयों को दूर करना और भारत में नवयुग का निर्माण करना था। इन आन्दोलनों का विवरण इस प्रकार है।

ब्रह्म समाज

इस आन्दोलन के प्रवर्तक राजा राम मोहन राय थे। उनका जन्म 1772 ई. में बंगाल के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे बचपन से मूर्ति पूजा, धार्मिक अन्धविश्वासों और बाह्य आडम्बरों के कट्टर विरोधी थे। वह हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी के बड़े विद्वान थे। उन्होंने हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, बुद्ध धर्म, और ईसाई धर्म के ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। उन पर ईसाई धर्म और पाश्चात्य शिक्षा का भी काफी प्रभाव पड़ा परन्तु ईसाई धर्म और पाश्चात्य शिक्षा के लाभदायक अंश ही ग्रहण किये। वे उनकी अन्धाधुन्ध नकल करने के पक्ष में नहीं थे। वे हिन्दु धर्म और हिन्दू समाज की कुरीतियों को देख कर बड़े दुखी हुए। अतः उन्होंने उन्हें दूर करने का निश्चय किया।

1805 से 1814 ई. तक उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी की। 1814 ई. में उन्होंने 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। इसका उद्देश्य धर्म की सत्यता का प्रचार करना और आध्यात्मिक विषयों पर स्वतन्त्रता पूर्व विचार करना था। उन्होंने हिन्दू धर्म की कुरीतियों को दूर करने के लिए 1828 में ब्रह्म समाज की नींव रखी। इस ईश्वरवाद और मानवतावाद ब्रह्म समाज के दो मुख्य सिद्धान्त थे। ब्रह्म समाज का यह सिद्धान्त है कि परमात्मा एक है और वह निराकार अनन्त और अनादि है।

ब्रह्म समाज सब मनुष्यों को एक समान समझता था। और उसने समाज में भ्रातृत्व का प्रचार किया। इसने सब धर्मों और उनके शास्त्रें में विश्वास पर जोर दिया। राजा राम मोहन राय का सब धर्मों की मौलिक एकता और सत्यता में विश्वास था। उनका कहना था कि सब धर्मों में सार हैऔर सब धर्मों और उपदेशों की शिक्षाओं के सत्य को ग्रहण करना चाहिये। उन्होंने किसी भी धर्म की आलोचना नहीं कि। और ना ही ईश्वर पूजा की किसी धार्मिक प्रणाली का विरोध किया। उनकी शिक्षाओं को देखते हुए मुसलमान उन्हें मुसलमान, ईसाई उन्हें ईसाई और हिन्दू उन्हें वेदान्ती समझते थे। परन्तु वे इन में से कोई नहीं थे।

ब्रह्म समाज ने 'संवाद कोमुदी' नामक पत्रिका को जारी किया। इसके द्वारा वह सार्वभौमिकता और प्रेम का प्रचार करती थी। राजा राम मोहन राय और उसके अनुयायी हिन्दू धर्म को नष्ट करने के पक्ष में नहीं थे। अपितु वे इसे उदार बनाना चाहते थे। उन्होंने लोगों को हिन्दू धर्म का वास्तविक ज्ञान कराया और उन्हें बताया कि हिन्दू धर्म सरल और युक्ति संगत है। उन्होंने भारतीय धर्म और सभ्यता को रूढ़ीवाद अन्धविश्वासों और आडम्बरों से बचाया।

राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों जैसे जाति प्रथा, छुआछूत, बहुविवाह, बालविवाह और सती प्रथा का विरोध किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप बाद में बाल विवाह और सती प्रथा गैर कानूनी घोषित कर दिये गये। वे प्रेस की स्वतन्त्रता के पक्ष में थे। स्त्री शिक्षा के लिए इस समाज का कार्य सराहनीय है।

1833 में राजा राम मोहन राय की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् ब्रह्म समाज का नेतृत्व राजचन्द्र विद्यारा वागीस ने सम्भाला। 1833 से 1841 तक इस समाज ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। 1843 ई. में इसके दो भाग हो गये। साधारण ब्रह्म समाज और आदि ब्रह्म समाज। पहली शाखा के नेता केशव चन्द लेन थे। यह दल इसाई मत के समीप था। केशव चन्द्र ने वैष्णों की शिक्षा पर जोर दिया और समाज सुधार के लिए बडे उत्साह से कार्य किया। उन्हीं के प्रयासों से 1872 ई. में विवाह एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा बाल विवाह की निन्दा की गई। दूसरे दल के निता देवेन्द्र नाथ टैगोर थे। वे हिन्दू धर्म के अधिक समीप थे। और उपनिषदों में विश्वास रखते थे। जाति प्रथा में उनका विश्वास नहीं था।

प्रार्थना समाज

बंगाल में ब्रह्म समाज के धार्मिक और सामाजिक सुधारों से प्रभावित होकर आत्माराम पाण्डुरंग ने दक्षिण भारत में धार्मिक और

सामाजिक सुधार सम्बन्धी कार्य करने के लिए 1853 ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना की। ब्रह्म समाज की भांति इस समाज ने भी सार्वभौमिक प्रेम मानव सेवा और विचार युक्त प्रार्थना पर बल दिया। धीरे–धीरे भंडारकर जस्टिस रानाडे और गोखले आदि महान व्यक्ति भी इसके अनुयायी बन गये। और उन्हें समाज सुधार के लिए अनेक कार्य किए। इस संस्था ने दक्षिण भारत में साधारण जनता के लिए बहुत प्रशंसनीय कार्य किये।

मजदूरों के लिए रात्रि स्कूल और लड़कियों की शिक्षा के लिए महिला सभाएं खोल गई। पण्ढूरपुर में इस सभा ने एक अनाथालय और मानसिक रोगों का एक अस्पताल खोला। दलित जातियों की सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवस्था को सुधारने के लिए दलित जाति संघ स्थापित किया। रानाडे के नेतृत्व में दक्षिण शिक्षा सभा कायम की गई जिसने युवकों को शिक्षित करने और उनके चरित्र को ऊँचा उठाने का कार्य किया भण्डारकर ने रानाडे की इस कार्य में बड़ी सहायता की। गोखले ने साधारण जनता के विचारों और चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए भारत सेवक संघ की स्थापना की।

आर्य समाज

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। उनका जन्म 1824 ई. में काठियावाड़ के एक गाँव टंकारा में अम्बारशंकर नामक ब्राह्मण के घर हुआ। उन्होंने एक अन्धे पर अतियोग्य सन्यासी स्वामी विरजानन्द को अपना गुरू बनाया और उनसे वेदों और व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात उन्होंने 1866 ई. में वेदों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। 1875 ई. में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज की नींव रखी। 1877 ई. में उनकी एक शाखा लाहौर में कायम की गई। तत्पश्चात् उन्होंने अन्य प्रान्तों में आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक एक पुस्तक लिखी जो इस मत की प्रसिद्ध पुस्तक है।

धार्मिक कार्य

आर्य समाज एक ईश्वरवाद में विश्वास रखता है। यह संस्था वेदों को ईश्वर कृत मानती है। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म को विश्वासों और आडम्बरों से मुक्त करने में सराहनीय कार्य किया। स्वामी जी भारत में वेदों का प्रचार कर वैदिक धर्म का डंका पुनः बजाना चाहते थे। वे मूर्ति पूजा, छुआछूत, जातपात और ऊँच–नीच की भावना के कट्टर विरोधी थे। उनका देवी देवताओं में विश्वार नहीं था। प्राचीन हिन्दू धर्म और सभ्यता की रक्षा और पुनरूत्थान करना ही आर्य समाज का एक मात्र उद्देश्य था।

सामाजिक कार्य

आर्य समाज के कार्यक्रम में सामाजिक सुधारों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आर्यसमाज ने जातपात का भेदभाव मिटाने पर बल दिया। आर्य समाज बाल और बेमेल विवाहों को अच्दा नहीं समझते थे। आर्य समाज विधवाओं को पुनः विवाह के पक्ष में था। इसने स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिए बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। आर्य समाज अछूतों का उद्धार करना चाहता था। इसने अस्पृश्यता को दूर करने में बड़ी सहायता की। आर्य समाज ने देश भर में समाज सेवी संस्थाओं का जाल सा बिछा दिया।

शिक्षा सम्बन्धी कार्य

आर्य समाज ने शिक्षा के प्रसार के लिए बहुत कार्य किया। लाहौर में 1886 ई. में डी.ए.वी. कालेज की स्थापना की गई।। देश के भिन्न–भिन्न स्थानों पर डी.ए.वी स्कूल और कॉलेज खोले गये। जहां बच्चों को आधुनिक शिक्षा दी जाती थी। दलित जाति के लोगों के लिए दिन स्कूल और रात्रि स्कूल खोले गये। लड़कियों की शिक्षा की ओर आर्य समाज ने विशेष ध्यान दिया। वैदिक शिक्षा के प्रखर के लिए गुरूकुल कायम किए गये। गुरूकुल कांगडी इसका प्रसिद्ध उदाहरण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्य समाज में धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनैतिक क्षेत्र में बड़े सराहनीय कार्य किए। 1892 ई. में आर्य समाज में फूट पड़ गई और इसके दो भाग हो गये। डी.ए.वी कॉलेज विभाग और गुरूकुल विभाग पहले विभाग के नेता महात्मा हंसराज और दूसरे के नेता स्वामी श्रद्धानन्द थे।

थियोसाफिकल सोसाइटी

इस सोसायटी की स्थापना 1875 ई. में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में एक रूसी महिला ब्लेवट्स्की और अमेरिका की सेना के कर्नल हेनरी स्टील आलकार ने की। स्वामी दयानन्द ने इन दोनों को भारत आने का निमन्त्रण दिया। उन्होंने 1883 ई. में मद्रास

प्रान्त में अड़यार में अपना मुख्य केन्द्र बनाया। उन्होंने लोगों को हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान कराया। और इसाईयत से दूर रहने का और धर्म में आये हुए अनेकों दोषों को दूर करने के लिए प्रेरित किया।

यह सोसाइटी सब धर्मों की मौलिक एकता में विश्वास रखती थी। इसके अनुसार सब धर्मों की शिक्षा और सार एक ही है इसका विचार है कि सत्य सब धर्मों में पाया जाता है। तथापि हिन्दू और बोद्ध धर्म में यह अधिक पाया जाता है। इसका एकेश्वार वाद में विश्वास है यह जातपात और काले गोरे के भेदभाव नहीं मानती।

इस सोसायटी को समस्त संसार ने विख्यात बनाने का श्रेय ऐनी बेसेन्ट को है जो भारत में 1893 में आकर बसी। उन्होंने भारत को अपनी मातृ भूमि बनाया। वे हिन्दू संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से उत्तम समझती थी। उन्होंने हिन्दू धर्म की प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल और सैन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस की स्थापना की। उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में भी बहुत काम किया। उन्होंने होम रूल लीग की स्थापना की और होमरूल आन्दोलन को आरम्भ किया।

इस सोसायटी ने धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में बहुत सराहनीय कार्य किया।

रामकृष्ण मिशन

राम कृष्ण मिशन की स्थापना 1886 ई. में स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में की। रामकृष्ण काली माता के उपासक थे। उनका विचार था कि सभी धर्म सच्चे हैं और एक ही स्थान पर पहुँचने का अलग साधन है। वे सभी धर्मों को एक ही सनातन धर्म का अंग मानते थे। उन्होंने किसी धर्म का खण्डन नहीं किया। वे भारतीय संस्कृति को अत्याधिक और पाश्चात्य संस्कृति को भौतिक मानते थे।

स्वामी राम कृष्ण की मृत्यु के पश्चात उनके शिष्य विवेकानन्द ने वेदान्त और परमहंस के अन्य आदर्शों को भारत और अन्य देशों में प्रचार करने के लिए 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। इसका मुख्य कार्यालय कलकत्ता के समीप बेलूट में था। इस मिशन ने लंका, बर्मा, मलाया, अमेरिका और यूरोप में कई शाखाएं कायम की। स्वामी विवेकानन्द 1893 ई. में शिकागों में होने वाले 'विश्व धर्म सम्मेलन' में भारत के प्रतिनिधि थे। उन्होंने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या ऐसे ढंग से की कि सब उसकी प्रशंसा करने लगे।

उन्होंने साफ शब्दों में इस बात की घोषण की कि हिन्दू धर्म और संस्कृति सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि वह अध्यात्मिकता पर टिकी हुई है। जबकि पश्चिमी सभ्यता का आधार भौतिकता है। उसके उपदेशों से प्रभावित होकर एक अमेरिकी विदूषी सिस्टर निवेदिता ने उन्हें अपना गुरू मान लिया। इस मिशन ने कई स्कूल और कॉलेज खोले।

रामकृष्ण मिशन के अनुयायी दो भागों में बंटे हुए है। कुछ संन्यासी है जो अविवाहित रहकर अपना जीवन, मानवता तथा ईश्वर की सेवा में लगा देते हैं। दूसरे वे लोग हैं जो गृहस्त जीवन व्यतीत करते हुए रामकृष्ण की शिक्षाओं का पालन करते है।

देव समाज

इस संस्था की स्थापना सत्यानन्द अग्निहोत्री ने 1887 ई. में लाहौर में की। इसके सदस्य परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते। इस संस्था ने शिक्षा के प्रसार, के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की।

मुसलमानों में सुधार आन्दोलन

मुगल साम्राज्य के पतन काल में मुसलमानों में गिरावट आनी शुरू हुई। इस्लाम धर्म और समाज में अनेक कुरीतियां आ गई मुसलमान भी हिन्दुओं की भाँति पीरों, फकीरों और कब्रों की पूजा करने लगे। शिक्षा के अभाव के कारण वे राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र में पिछड़े रहे। उनके समाज में बहु विवाह, बाल विवाह, पर्दा आदि कई कुरीतियां थी। 19वीं शताब्दी की नवीन जागृति उन पर भी पड़ा और कुछ सुधारकों ने इस्लाम धर्म में सुधार करने की सोची। यह सुधार धार्मिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के थे।

बहाबी आन्दोलन

इस आन्दोलन को चलाने वाले सैय्यद अहमद बरेलवी (1786–1831) थे। उन्होंने ईश्वर की एकता पर बल दिया और फकीरों

की पूजा का विरोध किया। वह मौलिक इस्लाम का प्रचार करना चाहते थे। वह पश्चिमी शिक्षा के विरोधी थे। वह मुसलमानों को हिन्दुओं के विरूद्ध उकसा कर भारत में मुस्लिम राज्य स्थापित करना चाहते थे। जब अंग्रेजों ने पंजाब राज्य को अपने राज्य में मिला लिया तो बहावियों ने उनके विरूद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया जिसे अंग्रेजों ने बल पूर्वक दबा दिया। बहावियों को अपने उद्देश्य में विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी। उन्होंने इस्लाम धर्म के कुछ दोषों को दूर अवश्य किया।

अलीगढ़ आन्दोलन

इस आन्दोलन का प्रारम्भ करने वाले सर सैय्यद अहमद खाँ (1857–1898) थे। वे मुसलमानों की सर्वांगीण उन्नति करना चाहते थे। मुसलमानों में जागृति पैदा करने का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने मुसलमानों को समझाया कि वे पश्चिमी शिक्षा साहित्य और विज्ञान के बिना उन्नति नहीं कर सकते। आरम्भ में उनका विरोध हुआ। परन्तु अन्त में वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हुए। उन्होंने मुसलमानों में शिक्षा के प्रसार के लिए 1875 ई. में अलीगढ़ में एक मुस्लि एंग्लों ओरियण्टल स्कूल प्रारम्भ किया जहां पाश्चात्य विषय तथा विज्ञान और मुस्लिम धर्म दोनों पढ़ाये जाते थे। शीर्घ ही अलीगढ़ मुस्लिम सम्प्रदाय के धार्मिक तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण का केन्द्र बन गया यही पौधा आगे चलकर 1920 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के वृक्ष के रूप में सामने आया।

सिक्खों में सुधार आन्दोलन

19वीं शताब्दी में सिक्खों में ऐसी संस्थाओं का निर्माण हुआ जिन्होंने सामाजिक और धार्मिक सुधार के कार्य को हाथ में लिया।

नामधारी तथा कूका आन्दोलन

इस आन्दोलन के प्रवर्तक बाबा राम सिंह थे। उन्होंने पश्चिमी रहन सहन और दहेज आदि बुराईयों के विरूद्ध आन्दोलन आरम्भ किया।

सिंह सभा आन्दोलन

सिंह सभा ने सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी सुधार किए। उन्होंने कई स्कूल कोलज और अनाथालय खोले।

चीफ खालसा दिवान

इसने शिक्षा के प्रचार के लिए अमृतसर खालसा कालेज की स्थापना की।

पारसी सुधार आन्दोलन

पारसी लोग भी इस नवीन सुधारवादी आन्दोलन से बच नहीं सके। 1851 ई. में कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त पारसियों ने रहनुमाएं मजदायस्नान सभा गठित की जिसका उद्देश्य पारसियों की सामाजिक अवस्था का पुनरूद्धार करना और पारसी धर्म की पुनः प्राचीन शुद्धता को प्राप्त करना था। इस आन्दोलन के नेता दादाभाई नौरोजी और आर.के. कामा थे। इस सभा के सन्देश को पारसियों तक पहुँचाने के लिए एक पत्रिका 'रास्ता गोफतार' चलाई गई। पारसी धर्म तथा कर्म काण्ड को सुधारा गया, तथा पारसी धर्म के नियम स्पष्ट किए गये। प्रयत्न यह किया गया कि पारसी स्त्रियों की दशा सुधारी जाये। पर्दा प्रथा समाप्त कर दी गई। विवाह की आयु बढ़ा दी गई और स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया।

अध्याय-13

कृषि व्यवस्था में परिवर्तन व नवीन भू लगान पद्धतियाँ
(Change in Agricultural System and New Taxation Policies)

भारत में प्राचीन समय से ही राज्य की आय का एक बहुत बड़ा भाग भूमि से ही प्राप्त होता रहा है। मुसलमानों से यह कृषक जो भाग राजा को देता था बलि कहा जाता था। यह प्रायः उपज का छटा भाग होता था। प्रजा से पैदावार का छटा भाग संग्रह करने का काम राज्य के कर्मचारी करते थे। भूमि का स्वामी कृषक होता था। राजा उसकी रक्षा करने के बदले में छटे भाग का अधिकारी समझा जाता था।

मुसलमानों के राज्य काल में बलि का नाम खिराज हो गया, परन्तु पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सामान्य रूप से भूमि का स्वामित्व कृषक के पास ही रहा। राज्य के कर्मचारी खिराज वसूल करके शाही खजाने में भेज देते थे। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के समय जमीन पर लगाये गये कर को किराया मान लिया गया। जिसका अभिप्राय यह होगा की सारी भूमि सरकार की बन गई और कृषक उसका किरायेदार बन गया।

केवल इस परिवर्तन से ही अंग्रेजों को सन्तोष नहीं हुआ। उनका यही ध्येय था कि भारतवर्ष से धन का अधिक से अधिक शोषण कैसे किया जाए। उस समय किसानों का हद से ज्यादा शोषण किया गया। सबसे पहले लार्ड होल्टग्स ने भूमि निलाम करके सबसे ऊँची बोली देने वाले व्यक्ति को लगान वसूली का ठेका दिया। यह ठेका पाँच वर्ष के लिए दिया जाने लगा। इस प्रबन्ध में अनेक दोष थे। इसलिए इसमें परिवर्तन किया गया और ठेका एक साल के लिए दिया जाने लगा। इस परिवर्तन का परिणाम और भी बुरा हुआ। हर वर्ष नये आदमी लगान वसूल करने में असमर्थ सिद्ध हुए इससे कृषकों और कम्पनी को हानि पहुंचती रही।

स्थाई बन्दोबस्त या स्थाई प्रबन्ध

गवर्नर जनरल कार्नवालिस के समय में एक सर्वथा नवीन पकृति का जन्म हुआ। जिसको भूमि का स्थाई प्रबन्ध या स्थाई बन्दोबस्त कहा जाता है। इसका उद्देश्य लगान व्यवस्था का स्थायित्व कायम करना था।

इस प्रबन्ध के द्वारा जमींदारों को स्थायी रूप से भूमि का स्वामी मान लिया गया। अर्थात भारत की भूमि जमींदारों की मान ली गई। जितना लगान उन्हें सरकार को देना था वह सदैव के लिए निश्चित कर दिया गया और उसमें कभी किसी भी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती थी। और जब एक जमींदार लोग यह निश्चित लगान सरकार को देते रहेगें तक तक उनकी भूमि उनसे छीनी नहीं जा सकती थी। परन्तु यदि लगान का कुछ हिस्सा नियमित रूप से न दे सकेंगे तो उनकी सारी भूमि उनसे छीन ली जायेगी। किसानों को जो लगान अपने जमींदारों को देना पड़ता था वह भी पट्टे द्वारा निश्चित किया जाता था। ओर बिना न्यायालय की स्वीकृति के उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती थी।

स्थाई बन्दोबस्त प्रचलित होने के कई कारण थे। इसका मनौविज्ञानिक कारण यह था कि लार्ड कार्लवालिस इंग्लैण्ड के जमींदार वर्ग के ताल्लुक रखता तथा वह किसानों को वश में रखने के लिए एक शक्तिशाली जमींदार श्रेणी का पक्षधर था। दूसरा कारण यहा था कि हर वर्ष लगान व्यवस्था की नई व्यवस्था करते–करते कम्पनी के अधिकारी थक गये थे। उससे आय बढ़ने के बजाए घटती जा रही थी। अतः भूमि की लगान व्यवस्था का स्थायी प्रबन्ध कर देना उचित माना गया।

स्थाई प्रबन्ध के गुण

स्थाई प्रबन्ध के साम्राज्यवादी सरकार को नई सुदृढ़ता प्रदान की उसको इस नई व्यवस्था के कई लाभ हुए –

1. प्रतिवर्ष लगान निश्चित करने के झंझटों से वह मुक्त हो गई
2. बार--बार भूमि प्रबन्ध करने में धन बहुत व्यय होता था। अब वह खर्च भी बच गया। इस पैसे को कम्पनी ने अपने साम्राज्य के प्रसार में लगाया।
3. अब कम्पनी को पहले ही यह ज्ञात हो गया की भूमि लगान से उसे कितनी आमदनी होगी। अतः अपनी आर्थिक योजना बनाने में उसे सुविधा हो गई।
4. स्थायी प्रबन्ध हो जाने से इस व्यवस्था में लगे हुए सरकारी कर्मचारियों की एक संख्या शासन सम्बन्धी अन्य कार्य करने के लिए मुक्त हो गई।
5. स्थाई प्रबन्ध से जमींदारों का एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया जो अंग्रेजों का स्वामीभक्त था। यह वर्ग आखिर एक कम्पनी का शुभचिन्तक बना रहा।
6. इस व्यवस्था से जमींदारों को भी बड़ा लाभ हुआ क्योंकि भूमि पर अब उनका ही नहीं उनकी संतान का अधिकार भी स्वीकृत हो गया।
7. जमींदार किसानों का शोषण करते थे। इसलिए उनके पास अधिक धन का संच हो गया तथा वे समृद्धिशाली हो गये।

स्थाई बन्दोबस्त के दोष

1. इस प्रणाली का सबसे बुरा प्रभाव कृषकों पर पड़ा कृषक लोग अब भूमि के स्वामितव से सर्वथा वंचित हो गये।
2. इस प्रणाली से जमींदार बहुत ही धनी हो गये धन की अधिकता से वे शहरों में बसने लगे और भोग विलास का जीवन व्यतीत करने लगे।
3. बड़े–बड़े जमींदारों ने अपनी जमीनें आगे कारिंदों के हवाले कर दी वे कृषि के प्रति उदासीन थे तथा कृषकों का शोषण करते थे इससे कृषि की अवनति हुई।
4. स्थाई प्रबन्ध का प्रभाव अन्य प्रान्तों पर भी पड़ा सरकार बंगाल के जमींदार पर तो लगान बढ़ा नहीं सकती थी। उसने यह क्षतिपूर्ति अन्य प्रान्तों में लगान बढ़ा कर की।
5. स्थाई प्रबन्ध से राष्ट्र को भी हानि उठानी पड़ी क्योंकि इस व्यवस्थ ने जमींदारों के एक ऐसे शक्तिशाली वर्ग को जन्म दिया और जो ब्रिटिश साम्राज्य का समर्थक बन गया। उसके कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन में अनेक कठिनाईयां उत्पन्न हो गई।

रैयतवाड़ी बन्दोबस्त

स्थाई प्रबन्ध के बाद भूमि व्यवस्था का एक नया सिलसिला बहुत इलाकों में शुरू हुआ। जिसको रैयतवाड़ी बन्दोबस्त कहते है। यह व्यवस्था सर्वप्रथम मद्रास में 1820 ई. में वहां के गवर्नर थामस मुनरो द्वारा शुरू की गई। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार जमीन का बन्दोबस्त सीधे किसानों के साथ करती थी। ताकि वह स्थाई और आरजी दोनों तरह के प्रबन्धों की बुराई से बचा जाए। रैयतवाड़ी बन्दोबस्त से लूट का सारा माल सरकार को मिलने लगा। बीच के जमींदारों के साथ हिस्सा नहीं बांटना पड़ा।

इस व्यवस्था के अर्न्तगत सरकार ने किसान के साथ जमीन का बन्दोबस्त इस प्रकार किया कि किसान किसी आदमी के पास इस जमीन को गिरवी रख देता था और दूसरा आदमी तीसरे आदमी को जमीन लगान पर दे देता था। इस प्रक्रिया से आगे चल कर एक ऐसा नया वर्ग पैदा हो गया। जो जमींदारों की तरह बिना मेहनत किए खेती करने वाले किसानों को जमीन बाँटता था। इस के अतिरिक्त सरकार ने जिनके साथ जमीन का प्रारम्भिक बन्दोबस्त किया था उसकी जमीनें धीरे–धीरे साहुकारों तथा अन्य लोगों ने छीन ली। ओर वे भी जमींदारों की तरह किसानों का शोषण करने लगे। इस प्रकार अधिकाधिक किसानों की जमीनें छिनती गई और वे कृषि मजदूरों की स्थिति में पहुंच गये।

महलवाड़ी बन्दोबस्त

इस पद्धति के अनुसार भूमि कर की ईकाई कृषक या खेत नहीं अपितु ग्राम अथवा महल होता था। भूमि समस्त ग्राम सभा की सम्मिलित रूप से होती थी। जिसकों भागीदारों को समूह कहते थे। ये लोग सम्मिलित रूप से भूमि कर देने के लिए उत्तरदायी होते थे। यद्यपि व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी था। यदि कोई व्यक्ति अपनी भूमि छोड़ देता था तो ग्राम समाज इस भूमि को सम्भाल लेता था। यह ग्राम समाज की सम्मिलित भूमि होती थी। जिसे शमालत कहते थे। यह व्यवस्था उत्तर पश्चिमी प्रान्त तथा पंजाब में लागू की गई।

अध्याय-14

1857 का विद्रोह
(Revolution of 1857)

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इतिहास निरन्तर साम्राज्य विस्तार और आर्थिक शोषण का इतिहास है। भारत में अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए अंग्रेजों ने भारतीयों का ही इस्तेमाल किया उन्होंने बहुत अधिक भारतीयों को अपनी सेना में भर्ती किया और उन्हीं की मदद से अंग्रेजी राज्य का विस्तार किया। लेकिन अंग्रेजों ने कभी भी इन भारतीय सैनिकों की सुख सुविधा का ख्याल नहीं रखा। इस कारण भारतीय सैनिकों का रोष समय–समय सैनिक विद्रोह के रूप में प्रकट होता रहा है। इनमें से कुछ इस प्रकार है। वेलीट 1805, बैरकपुर 1824, मच्छलीपट्टम, श्रीरंगपट्टम, हेदराबाद, फिरोजपुर 1842 बरेली 1816 1830–31 कोल।

1857 के विद्रोह का स्वरूप

1857 की क्रान्ति की वास्तविक प्रकृति क्या थी इस विषय में इतिहासकारों तथा उन व्यक्तियों में जिनका इससे सीधा सम्बन्ध है बड़ा मतभेद रहा है। कोई इसे केवल एक सैनिक विद्रोह मानता है तो केई कुछ स्वार्थी भारतीय नरेशों का विद्रोह मानता है। कोई इसे श्वेत और अश्वेत के मध्य जातीय संघर्ष। कुछ इतिहासकार इसे हिन्दु मुस्लिम षडयन्त्र का नाम देते हैं। जबकि कुछ लेखक इसे भारतीय स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम नाम देते है।

सैनिक विद्रोह

सर जान लारेंस के मालेसन ट्रेवलियान तथा सीले जैसे यूरोपियन विद्वानों का विचार है कि वह क्रान्ति एक सैनिक विद्रोह था। जो चर्बी युक्त कारतूस के जारी करने से हुआ कुछ अन्धविश्वासी सैनिकों ने अपने साथियों में अफवाह फैला दी कि कारतूसों में गाय व सुअर की चर्बी है। इसलिए सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। सर जान लारेंस के शब्दों में "यह एक सैनिक विद्रोह से ज्यादा कुछ नहीं था जो चर्बी वाले कारतूसों के कारण हुआ।" मार्शमेन के अनुसार यह "एक सौ हजार सिपाहियों का असभ्य विद्रोह था।" सीले ने कहा है "सन 1857 का विद्रोह देश भक्ति की भावना से रहित था और न ही इसे लोकप्रिय समर्थन प्राप्त था।" अपने इस मत के पक्ष में ये विद्वान अनेक दलीलें देते हैं :–

1. सर्वप्रथम यह कहा जाता है कि यह विद्रोह केवल उत्तरी भारत के थोड़े से भाग में ही फैला और सारे देश ने इसमें कोई भाग नहीं लिया। उत्तरी भारत में भी अनेक देशी रियासतें और यहां तक कि पंजाब भी इसमें बहुत अलग थलग रहा। इस थोड़े से भाग में फैलने वाले विद्रोह को कैसे राष्ट्रीय विद्रोह कहा जा सकता है।
2. दूसरे बहादुरशाह नाना साहब और झांसी की रानी आदि के अतिरिक्त बाकी किसी भारतीय शासक ने इसमें भाग नहीं लिया। इन शासकों ने भी अपनी पैंशन और गद्दी बचाने के लिए हथियार उठाए थे।
3. तीसरे देश के किसान तथा आम जनता बिल्कुल शान्त रहे और उन्होंने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया।
4. चौथे यह कहा जाता है कि यह विद्रोह कुछ शहरों तक ही सीमित रहा और गाँव का इससे कोई सरोकार नहीं था।
5. पांचवे यह विद्रोह थोड़ी सी अंग्रेज सेना से ही दबा दिया गया जो इस बात का प्रमाण है कि न ही भारतीय लोग इस विद्रोह के पीछे थे और न ही कोई स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता से प्रेरित हो कर यह विद्रोह उठ खड़ा हुआ।

परन्तु कुछ अन्य इतिहासकार उपयुक्त विचार से सहमत नहीं है उनका कहना है कि 1857 के विद्रोह को एक सैनिक विद्रोह कहना ठीक प्रतीत नहीं होता। सैनिक कारणों के अतिरिक्त, इस महान विद्रोह के बहुत से राजनीतिक सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक कारण भी थे। विद्रोह में केवल सैनिकों ने ही भाग नहीं लिया नाना साहिब, बहादुर शाह, रानी लक्ष्मी बाई अहमद शाह तथा कई अन्य देशी शासकों तथा लोगों ने भी इसमें महत्वपूर्ण भाग लिया। ये सभी देशी शासक ही इन विद्रोहियों के नेता थे। उनके विद्रोह में भाग लेने से ही विद्रोह ने भयानक रूप धारण कर लिया था।

हिन्दू मुस्लिम षड्यन्त्र

सर जेम्स आउट्रम और डब्लू अैलर ने इसे हिन्दू मुस्लिम षड्यन्त्र का परिणाम बताया है आउट्रम का विचार था कि "यह मुस्लिम षड्यन्त्र था जिसमें हिन्दू शिकायतों का लाभ उठाया गया। एल.ई. आर. रीज ने भी इस विद्रोह को "धर्मान्धों व इसाईयों के विरूद्ध युद्ध बताया है।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम

बहुत से भारतीय लेखकों जैसे अशोक मेहता और बीर सावरकर ने 1857 की क्रान्ति को "प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का नाम दिया गया। अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "1857 का महान विद्रोह" यह लिखा है कि इस विद्रोह का स्वरूप राष्ट्रीय था। वीर सावरकार ने भी इस विद्रोह को एक राष्ट्रीय क्रान्ति के रूप में देखा है भारतीय लेखकों का विचार है कि विस्फोट की सामग्री बहुत समय पहले इकट्ठी हो रही थी। इसे केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी। जो चर्बी वाले कारतूसों से मिल गई। इन लेखकों ने अपने मत के पक्ष में अनेक तर्क दिये हैं।

1. यह क्रान्ति इतनी शीर्घ नहीं फैल सकती थी। यदि इसमें लोगों का साथ न होता।
2. दूसरे इसमें हिन्दू और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों को भारत से निकाल देने का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उन्होंने धार्मिक मतभेदों को भुला दिया।
3. तीसरे स्त्रियों ने भी दिल खोलकर इस क्रान्ति में भाग लिया। कई स्त्रियों ने तो पुरूषों के कपड़े पहनकर इस स्वतन्त्रता संग्राम में अपना पूर्ण योगदान दिया। इसलिए यह क्रान्ति एक सैनिक विद्रोह नहीं था।
4. चौथे बहुत से असैनिक लोगों ने भी जिनमें जनता के प्रत्येक वर्ग के सदस्य सम्मिलित थे, इसमें भाग लिया और दिल खोल कर क्रान्तिकारियों की सहायता की।
5. पाँचवें अंग्रेजों ने जिन लोगों को कठोर दण्ड दिया उनमें साधारण लोगों की संख्या सैनिकों से किसी भी प्रकार कम नहीं थी जो इस बात को सिद्ध करती हैं कि 1857 की घटना एक सैनिक विद्रोह नहीं थी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि 1857 ई. का विद्रोह आरम्भ में तो केवल एक सैनिक विद्रोह था। परन्तु धीरे–धीरे यह देशी शासकों, लोगों तथा सैनिकों के महान विद्रोह का रूप धारण कर गया। इसे एक संगठित राष्ट्रीय विद्रोह अथवा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का नाम देना पूर्ण रूप से ठीक नहीं है। फिर भी यह जरूर मानना पड़ेगा कि इस विद्रोह ने भारत की स्वतन्त्रता के राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा दी, जो लगभग आधी शताब्दी के पश्चात बड़े आवेग से आरम्भ हुआ। बहुत से राष्ट्रवादी यह समझते हैं कि 1857 ई. के विद्रोह से ही भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रा संग्राम प्रारम्भ हुआ।

विद्रोह के कारण

1857 के विद्रोह के कुछ विशेष कारण थे इन कारणों को हम राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सैनिक श्रेणियों में बांट सकते हैं।

राजनैतिक कारण

1. **लॉर्ड डलहौजी की लैप्स की नीति** : डलहौजी ने 1848 से 1856 तक के शासन काल में लैप्स सिद्धान्त को बड़ी

कठोरता से लागू किया। उसने देशी शासकों के गोद लिये पुत्रों को अस्वीकार करने की नीति को अपनाया और उनकी मृत्यु पर उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। लैप्स सिद्धान्त के अनुसार उसने सतारा, आमी, नागपुर, सम्भलपुर, उदयपुर तथा बघार के देशी राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य से मिला लिया। इससे समस्त भारत में असन्तोष और अशान्ति की भावना फैलने लगी।

2. **मुगल सम्राट बहादुर शाह का अपमान** : मुगल सम्राट बहादुरशाह कि स्थिति चाहे कितनी भी शिथिल हो चुकी हो फिर भी भारतीयों विशेषकर मुसलमानों की नजर में उसका बड़ा आदर था। परन्तु जब अंग्रेजों ने उसके प्रति औपचारिक आदर भी दिखाना बन्द कर दिया तो भारतीयों में सामान्यतः असन्तोष की भावना फैलना स्वाभाविक ही था। उनके रोष का ठिकाना न रहा जब बहादुरशाह को लार्ड कैनिंग ने चेतावनी दी कि उसके बाद सम्राट की उपाधि समाप्त कर दी जायेगी और उत्तराधिकारियों को लालकिला खाली करके जाना पड़ेगा परिणाम स्वरूप बहादुरशाह अंग्रेजों का शत्रु बन गया।

3. **नाना साहिब की पेंशन बन्द करना** : 1852 ई. में जब अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हुई तो उसके गोद लिये पुत्र नाना साहिब की पेंशन बन्द कर दी। नाना साहिब ने भारत सरकार तथा इंग्लैण्ड की सरकार को अपनी पेंशन के लिए अपील की, परन्तु उसकी एक न सुनी अन्त में निराश होकर नाना साहिब ने भारतीय शासकों के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध सांठगांठ करनी आरम्भ कर दी। और 1857 के विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

4. **अवध का विलय**: अवध सदा ही अंग्रेजों का वफादार बना रहा और कठिनाई के समय में वहां के नवाब अंग्रेजों की सहायता करते रहे। परन्तु जब 1856 ई. में अंग्रेजों ने कुशासन का बहाना बनाकर इस राज्य को भी हड़प लिया तो वहां के लोग भड़क उठे और उन्होंने अंग्रेजों की दासता को उखाड़ फैंकने के लिए षडयन्त्र रचने आरम्भ कर दिये।

आर्थिक कारण

1. **भारतीय साधनों का शोषण** : अंग्रेजों के भारत में आने से लोगों की आर्थिक दशा दिन प्रतिदिन खराब होती चली गई और उनके दुखों का ठिकाना न रहा। धीरे–धीरे देश का धन देश के बाहर जाने लगा। और देखते ही देखते भारत जैसा समृद्धिशाली देश एक निर्धन देश बनकर रह गया और उसके बच्चे भुखे मरने लगे। अंग्रेज अद्योगपतियों के लाभ के लिए भारतीय उद्योगों को जानबूझ कर नष्ट कर दिया गया। जिसके परिणाम स्वरूप देश निर्धन हो गया।

2. **कर मुक्त भूमि पर कर लगाना** : अनेक व्यक्तियों तथा धार्मिक संस्थाओं को कर मुक्त भूमिया अनुदान के रूप से प्राप्त थी जो सैंकड़ों वर्षों से उनके पास चली आ रही थी। लार्ड विलियम बैन्टिक और बाद में लार्ड डलहौजी के काल में ऐसे लोगों और धार्मिक संस्थाओं को कर मुक्त भूमि के प्रमाण पत्र उपस्थित करने को कहा। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल के कारण आवश्यक प्रमाण नष्ट हो चुके थे। इसलिए बहुत से लोगों को कर देने के लिए विवश किया गया और जो कर न दे सके उनकी भूमियों को जब्त कर लिया गया। इन लोगों ने विद्रोहियों का साथ दिया।

3. **उच्च वर्गीय भूमिपतियों का विनाश** : प्रत्येक राज्य की विजय के पश्चात जब अंग्रेजों ने वहां नवीन भूमि प्रणाली लागू की तो उससे जमींदारों और ताल्लुकेदारों के अस्तित्व को बड़ा धक्का लगा। उनसे उनकी जागीरें छीन ली गई। इस प्रकार ये जमींदार और ताल्लुकेदार अंग्रेजों के घोर शत्रु बन गये।

4. **लोगों में बेकारी तथा गरीबी** : 1857 ई. में भारत में ऐसे लोगों की कमी न थी जो बेकार तथा गरीब थे। उनके लिए जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना कठिन था। वे अपनी इस निर्धनता का कारण अंग्रेजों को समझते थे।

प्रशासनिक कारण

1. **ब्रिटिश प्रशासन का अप्रिय होना** : अंग्रेजों का प्रशासन भारत में अप्रिय था। भारतीय अंग्रेजों को पूर्ण रूप से विदेशी समझते थे। अंग्रेज प्रशासन की जो नीतियाँ होती थी। वे भारतीय जनता के हित की न होकर उनके आर्थिक हितों की रक्षा के लिए होती थी। इसलिए लोग अंग्रेज प्रशासन से नफरत करते थे।

2. **अंग्रेज कर्मचारियों का लोगों से बुरा व्यवहार** : अंग्रेज कर्मचारियों का लोगों के प्रति व्यवहार अच्छा न था वे बहुत अभिमानी थे और भारतीयों को हीन समझकर उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। भारतीय लोग उनके इस व्यवहार से तंग आ रहे थे और उनसे बदला लेने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

3. **भारतीयों को उच्च नौकरियों से वंचित रखना** : भारत की ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को उच्च पदों से वंचित रखा। उन्हें केवल छोटी–छोटी नौकरी दे दी जाती थी। और उच्च पद पर केवल यूरोपियनों को ही नियुक्त किया जाता था। यद्यपि 1833 एक्ट में कहा गया था कि उच्च नौकरियां देते समय जाति धर्म अथवा रंग आदि कोई ख्याल नहीं रखा जायेगा, तथापि भारतीयों को इस एक्ट के पास होने के बाद भी उच्च पदों से वंचित रखा गया।

4. **कानून निर्माण कौंसिलों में भारतीयों के स्थान न देना** : सर सयैद अहमद खाँ के विचारों में 1857 के विद्रोह का एक मुख्य कारण यह भी था कि भारतीय कानून निर्माण कौंसिल में भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। केवल अंग्रेज ही कौंसिल के सदस्य थे और वे भारतीयों के रीति रिवाजों और भावनाओं को जाने बिना ही कानून बना देते थे। इससे भारतीय ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भड़क उठे।

5. **ब्रिटिश न्याय प्रणाली का अप्रिय होना** : अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक न्याय प्रणाली की व्यवस्था की किन्तु उनकी न्याय प्रणाली लोकप्रिय न हो सकी। मुकदमों का निर्णय करने में बड़ी देरी की जाती थी। और लोगों का उन पर बहुत धन खर्च होता था। इन सब कारणों से भारतीय लोगों को ब्रिटिश न्याय प्रणाली से घृणा होने लगी और वे इसे शोषण का एक साधन समझने लगे।

सामाजिक एंव धार्मिक कारण

1. **बैंटिंग व डलहौजी के सामाजिक सुधार** : लार्ड विलियम बैंटिक और लार्ड डलहौजी ने भारत में कई सामाजिक सुधार करने के प्रयत्न किये। उन्होंने सती प्रथा तथा कन्या वध प्रथा का विरोध किया। डलहौजी के काल में विधवा पुर्नविवाह एक्ट भी पास हुआ, जिसके अनुसार विधवाओं को पुनः विवाह करने की आज्ञा दे दी गई इन सुधारों को कट्टर हिन्दुओं को अंग्रेजों का शत्रु बना दिया।

2. **ईसाई धर्म का प्रचार** : 1857 ई. के विद्रोह का मुख्य कारण भारत में अंग्रेजों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार किया जाना था। अंग्रेज पादरी बड़े उत्साह से ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। और उन्हें सरकार की पूर्ण सहायता तथा सहयोग प्राप्त था। कई बार वे अपने धर्म का प्रचार करने में हिन्दू और इस्लाम धर्म का निन्दा करते थे। वे उचित और अनुचित साधनों के द्वारा लोगों को ईसाई बनाने का प्रयास करते थे। इस प्रकार ईसाई धर्म के प्रचार ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को अंग्रेजों के विरूद्ध भड़का दिया।

3. **रेल तथा तार की स्थापना** : लार्ड डलहौजी के शासन काल में भारत में रेल और तार की स्थापना की गई। भारत के रूढ़ीवादी लोग रेलगाड़ियों और तार के महत्त्व को न समझ सके। वे समझने लगे कि ये उन्हें स्थाई रूप से दास बनाने के साधन हैं कुछ लोगों में तो यह अफवाह फैल गई कि जो लोग ईसाई नहीं बनेंगे तो उन्हें रेल के इन्जनों के नीचे कुचलकर या तारों से लपेटकर मार दिया जायेगा।

सैनिक कारण

1. **भारतीय सैनिकों में असन्तोष** : अनेक कारणों से भारतीय सैनिक अंग्रेज सरकार से रूष्ट थे। पहले तो उन्हें वेतन बहुत कम मिलता था कि उसे निर्वाह करना कठिन था। एक भारतीय सैनिक को 9 रू. प्रतिमाह मिलते थे परन्तु इसके मुकाबले एक अंग्रेज सैनिक को 60 या 70 रू. मिलते थे। इतने पैसे तो भारतीय बड़े सैन्य अधिकारी को भी नहीं मिलते थे। इसके अलावा भारतीय सैनिकों से बुरा व्यवहार किया जाता था। इससे भारतीय सैनिकों में रोष था।

2. **अवध का विलय** : बंगाल प्रान्त की सेवा में अधिकतर अवध प्रान्त के ही सैनिक थे। जब डलहौजी द्वारा अवध को मिलाने की घोषणा की तो वे सरकार के विरूद्ध भड़क उठे। अतः 1857 ई. में उन्होंने अवध के नवाब और ताल्लुकदारों के पक्ष में विद्रोह कर दिया।

3. **भारतीय तथा यूरोपियन सैनिकों की संख्या में असमानता** : भारतीय सैनिकों की संख्या यूरोपियन सैनिकों से कोई पांच गुण अधिक थी। इसलिए भारतीय सैनिक अपने आप को अधिक शक्तिशाली समझने लगे। इस समय भारतीयों में तरह–तरह की अफवाहें फैल गई। जैसे रूस ने इंग्लैण्ड पर विजय प्राप्त कर ली है आदि। चाहे ये अफवाहे झूठी हों फिर भी उनसे सैनिकों को विद्रोह करने की प्रेरण मिली।

तत्कालीन कारण

चर्बी वाले कारतूस

1856 ई. में सरकार ने पुरानी बन्दूकों के स्थान पर सैनिकों को नई एनफिल्ड राईफल देने का निश्चय किया। इस राइफल में कारतूस भरने से पहले उन्हें मुंह से काटना पड़ता था। शीर्घ ही यह अफवाह फैल गई कि इन कारतूसों में गाय व सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया है फिर क्या था हिन्दू और मुसलमान सैनिकों ने ऐसे कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। जब उनसे जबरदस्ती की तो छावनियों ने विद्रोह शुरू कर दिया। भारत के बहुत से लोग तथा देशी शासकों ने उनका साथ दिया और शीघ्र ही विद्रोह एक भयानक रूप से धारण कर गया।

विद्रोह की घटनाएं

1. **बैरकपुर** : 1857 के विद्रोह की शुरूआत बैरकपुर 29 मार्च 1857 को जब एक सैनिक मंगल पांडे ने विद्रोह कर दिया। उसने रेजीमेन्ट के दो बड़े अधिकारियों को गोली से उड़ा दिया। इससे रेजीमेन्ट में विद्रोह फैलता गया इससे पहले यह तोड़ दी गई। 8 अप्रैल 1857 को मंगल पांडे को फाँसी दे दी गई।

2. **मेरठ** : 9 मई 1857 को मेरठ में 85 सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूस लेने से इनकार कर दिया। उन्हें आठ और दस वर्ष की सजा देकर जेलों में डाल दिया गया। अगले दिन 10 मई को मेरठ के अन्य भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और अपने साथियों को छुडवा लिया। बहुत से यूरोपीय स्त्री पुरूषों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा उनके घरों को आग लगा दी इसके बाद मेरठ के सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूच किया।

3. **दिल्ली** : मेरट के क्रांतिकारी 11 मई 1857 को दिल्ली पहुंचे। उन्होंने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उन्होंने मुगल सम्राट बहादुर शाह को अपना नेता बनाया और सिंहासन पर बैठा कर भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली पर भारतीय सैनिकों का अधिकार होने का समाचार शीघ्र ही समस्त उत्तरी भारत में फैल गया। और भारतीय सैनिकों ने विभिन्न स्थानों से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। जून 1857 तक अलीगढ़, इटावा, आगरा, लखनऊ, कानुपर, इलाहाबाद, बरेली, बनारस झांसी तथा बिहार के कुछ प्रदेशों में विद्रोह फैल गया।

   लेकिन अंग्रेजीसेना ने जिसका नेतृत्व हैनरी बरनार्ड, विलसन तथ जनरल निकसल कर रहे थे। भारतीय सैनिकों का हरा को फिर से दिल्ली पर कब्जा कर दिया। बहादुरशाह को कैद करके रंगून भेज दिया गया जहां 1863 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

4. **कानपुर** : कानुपर में विद्रोहियों का नेता नाना साहिब था। उसने जून 1857 में कानपुर पर कब्जा कर लिया और अपने आपको पेशवा घोषित कर दिया। 17 जुलाई 1857 को जनरल हैवलाक ने नाना साहिब की सेना को पराजित किया तथा कानपुर में प्रवेश किया उसने अंग्रेजों पर किए गए अत्याचारों का खूब बदला लिया। नाना साहिब नेपाल की ओर भाग निकला वहां रास्ते में कहीं उसकी मृत्यु हो गई।

5. **लखनऊ** : लखनऊ में 4 जून 1857 को विद्रोह का आरम्भ हुआ विद्रोहियों ने ब्रिटिश रेजीडेंसी को घेर लिया चीफ कमिश्नर हैनरी लोरेंसे को मौत के घाट उतार दिया। विद्रोहियों ने शीर्घ ही पूरे अवध पर कब्जा कर लिया। लेकिन अंग्रेज सेना ने मार्च 1858 तक इसे फिर से आजाद करवा दिया।

6. **मध्य भारत** : मध्य भारत में विद्रोहियों का नेतृत्व झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने किया उसने झांसी के सैनिकों को साथ लेकर अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। कानपुर के हाथ से चले जाने के बाद तात्या टोपे भी उससे आ

मिला। 30 अप्रैल जनरल ह्यूरोज के नेतृत्व में अंग्रेज सेना ने झांसी पर आक्रमण कर दिया। रानी बहादुरी से लड़ती हुई ग्वालियर के स्थान पर मारी गई।

7. **बिहार** : बिहार में जगदीशपुर के जमींदार कुंवर सिंह ने विद्रोहियों का नेतृत्व किया। उसने अंग्रेजों पर कई विजय प्राप्त की। और जगदीशपुर को स्वतन्त्र रखा अप्रैल 1858 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसके भाई अमर सिंह ने विद्रोह जारी रखा परन्तु अक्तूबर 1858 को वह पराजित हो गया और जगदीशपुर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

विद्रोह के परिणाम

1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास की एक युगांतकारी घटना है। यद्यपि यह क्रान्ति असफल रही। परन्तु इसके परिणाम बड़े महत्त्वपूर्ण निकले। इसके मुख्य परिणाम निम्नलिखित थे।

1. **प्रशासन पर प्रभाव** : भारत पर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन का अन्त 1857 के विद्रोह का सबसे महत्त्पूर्ण परिणाम था। 2 अगस्त को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक कानून पास किया। इसके अनुसार भारतीय शासन की बागडोर सम्राट के हाथ में चली गई। कम्पनी के शासन के समाप्त हो जाने से बोर्ड आफ कन्ट्रोल तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर भारत मन्त्री का नया पद बनाया गया। और उसकी सहायता के लिए पन्द्रह सदस्यों की नयी समिति बना दी गई। जिसका नाम इण्डिया कौंसिल रखा गया। इस परिवर्तन के फलस्वरूप स्वार्थी एवं धनलोलुप व्यक्तियों के स्थान पर शासन का भार पार्लियामेन्ट पर पडा जिससे भारत में सुधार एवं परिवर्तनों का युग आरम्भ हुआ।

2. **शासन नीति का प्रभाव** : 1857 के विद्रोह का प्रभाव केवल शासन व्यवस्थ पर नहीं पड़ा वरन् शासन नीति पर भी पड़ा। विद्रोह के तुरन्त बाद महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणपत्र निकाला। इस घोषणा में निम्नलिखित बातें कही गयी थी, "परममिता परमेश्वर की अनुकम्पा से जब देश में आन्तरिक शक्ति स्थापित हो जायेगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत के सर्वांगीण विकास के लिए फिर से प्रयत्न किया जाये, जनता के कल्याण के लिए सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान की जायें। सरकार का प्रबन्ध सारी जनता के हित की भावना से किया जाय। जनता का हित हमारा हित हो उसकी सन्तुष्टि से हम अपनी सुरक्षा और उसकी कृतज्ञता में ही अपना गौरव अनुभव करे। हमारी यह भी अभिलाषा है कि जहाँ तक हो सके, हमारी सारी प्रजा चाहे वह किसी भी वंश अथवा धर्म से सम्बन्धित हो, बिना किसी भेदभाव से अपनी योग्यता अनुसार हर प्रकार की नौकरी प्राप्त कर सके। हमारे सभी सरकारी कर्मचारियों को आदेश दिये जाते हैं कि वे हमारी प्रजा के धार्मिक विचारों तथा विश्वासों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। हमारी तनिक भी अभिलाषा नहीं है कि हम अपने साम्राज्य की सीमा को बढ़ाएं।

सैनिक नीति में परिवर्तन

1857 के विद्रोह का सेना के संगठन पर बहुत प्रभाव पड़ा। विद्रोह के बाद अंग्रेजों का भारतीय सैनिकों का पूर्णतया विश्वास न रहा। अब उन्होंने सेना में अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ाने की निश्चय किया। तोपखाना पूर्ण तथा यूरोपिय सैनिकों के साथ में रखा गया। भारतीय सैनिकों की संख्या घटाकर आधी कर दी गई और प्रत्येक छावनी में अंग्रेज सैनिकों की संख्या दो गुनी कर दी गई। भारतीय सैनिकों का संगठन धार्मिक तथा जातीय आधार पर किया गया ताकि राष्ट्रीयता की भावना अंकुरित न हो सके।

पारस्परिक घृणा की उत्पति

1857 के विद्रोह में हिन्दू--मुस्लिम वैमनस्य को भी जन्म दिया जिसका परिणाम बहुत ही खराब हुआ। क्रान्ति के समय दोनों ने एकता का परिचय दिया था। उनके इस संगठन को अंग्रेजों की भेदभाव की नीति ने समाप्त कर दिया। चूंकि हिन्दुओं ने इस विद्रोह में उतना उत्साह नहीं दिखाया जितना मुसलमानों ने दिखाया। अतः दोनों के सम्बन्ध में एक दरार पैदा हो गई। जो आगे बढ़ती चली गई और हमारे भावी राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी बाधक सिद्ध हुई।

Chapter-8 **Objective Types Questions**

1. प्लासी की लड़ाई कब हुई?
   उ0. 1757 ई. में।
2. प्लासी की लड़ाई के समय बंगाल का नवाब कौन था?
   उ0. सिराजुद्दौला
3. बक्सर का यु(कब हुआ?
   उ0. 1764 ई. में।
4. सिराजुद्दौला के पराजित होने पर बंगाल का नवाब किसे बनाया गया?
   उ0. मीरजाफर।
5. भारत मे अंग्रेजी शासन का संस्थापक किसे माना जाता है?
   उ0. क्लाईव।
6. इलाहाबद की सन्धि कब हुई?
   उ0. 1765 ई. मे।
7. वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल कब बना?
   उ0. 1773 ई. में।
8. साल बाई की सन्धि कब हुई?
   उ0. 1782 ई. में।
9. हैदर अली की मृत्यु कब हुई?
   उ0. 1782 ई. में
10. भारत के गवर्नर के पद की स्थापना किस एक्ट के अनुसार हुई?
    उ0. रेगुलेटिंग एक्ट 1773 ई.।
11. सहायक सन्धि किसने चलाई?
    उ0. वैलजी।
12. सहायक सन्धि को सबसे पहले किस शासन ने स्वीकार किया?
    उ0. हैदराबाद के निजाम ने।
13. लार्ड वैलजली भारत का गवर्नर जनरल कब बना?
    उ0. 1778 ई. में।
14. टीपू सुल्तान की मृत्यु कब हुई?
    उ0. 6 मार्च 1799 ई. में।
15. वैलजली ने सूरत को कब अंग्रेजी राज्य में मिलाया?
    उ0. 1800 ई. में।

16. लैप्स की नीति किसने चलाई।

उ0. लार्ड डलहौजी।

17. दो ऐसे राज्यों के नाम बताओं जिन्हें लैप्स की नीति के अनुसार अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल कर लिया था?

उ0. सतारा और नागपुर।

18. लैप्स की नीति का सबसे बड़ा परिणाम क्या हुआ?

उ0. 1857 का विद्रोह।

19. कुशासन का आरोप लगाकर डलहौजी द्वारा छीने गये राज्य का नाम बताओ?

उ0. अवध।

20 लार्ड डलहौजी ने सेना का प्रमुख कार्यालय कहाँ पर बनाया?

उ0. शिमला में।

21. सतारा को अंग्रेजी राज्य में कब मिलाया?

उ0. 1848 ई. में।

22. लार्ड हेस्टिंग्स ने कौन–कौन से दो मराठा सरदारों को हराया?

उ0. भौंसल और होल्कर।

23. डलहौजी ने किस शासक को चेतावनी दी थी कि उसकी मृत्यु के बाद लाल किले पर उसके उत्तराधिकारी का अधिकार नहीं होगा?

उ0. बहादुर शाह द्वितीय।

24. कौन सा प्रदेश हैदराबाद के निजाम ने अंग्रेजों को दिया

उ0. बरार।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्लासी की लड़ाई कब हुई?

(क) 1707 (ख) 1757 (ग) 1740 (घ) 1764

उ0. (ख) 1757

2. बक्सर का युद्ध कब हुआ?

(क) 1526 (ख) 1764 (ग) 1757 (घ) 1772

उ0. (ख) 1764

3. इलाहाबाद की सन्धि कब हुई?

(क) 1764 (ख) 1767 (ग) 1765 (घ) 1771

उ0. (ग) 1765

4. द्वैध शासन प्रणाली का अन्त किसने किया?

(क) क्लाईव (ख) लार्ड वैलेसली (ग) वारेन हेस्टिंग्स (घ) लार्ड डलहौजी

उ0. (ग) वारेन हेस्टिंग्स

5. साल बाई की सन्धि किस वर्ष में हुई?

(क) 1773 (ख) 1780 (ग) 1778 (घ) 1782

उ0. (घ) 1782

6. हैदरअली की मृत्यु किस युद्ध में हुई थी?

(क) मैसूर का पहला युद्ध (ख) मैसूर का तीसरा युद्ध (ग) मैसूर का दूसरा युद्ध (घ) मैसूर का चौथा युद्ध

उ0. (ग) मैसूर का दूसरा युद्ध

7. बसीन की सन्धि कब हुई?

(क) 1801 (ख) 1802 (ग) 1803 (घ) 1804

उ0. (ख) 1802

8. मैसूर का चौथा युद्ध कब हुआ?

(क) 1798 (ख) 1799 (ग) 1797 (घ) 1796

उ0. (ख) 1799

9. लैप्स की सिद्धान्त किसने लागू किया?

(क) लार्ड वैलजली (ख) लार्ड हेस्टिंग्स (ग) लार्ड डलहौजी (घ) क्लाईव

उ0. (ग) लार्ड डलहौजी

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों स पराजित	1.	नाना साहिब
2.	1756 से 1764 बंगाल का सुयोग्य नवाब	2.	वाजिद अली शाह
3.	बनारस का शासक जिसे वारेन हेस्टिंग्स ने गद्दी से उतार दिया।	3.	सिराजुद्दौला
4.	वारेन हेस्टिंग्स द्वारा कोष का मुर्शीदाबाद की अपेक्षा निश्चित किया गया।	4.	मीर कासिम
5.	अवध का अन्तिम नवाब	5.	कलकत्ता
6.	पेशवा का गोद लिया पुत्र जिसकी पेंशन बंद कर दी	6.	चेत सिंह

उत्तर : **1 (3), 2 (4), 3(6), 4 (5), 5 (2), 6 (1)।**

Chapter - 11

1. प्रार्थना समाज की स्थाना कब हुई?

उ0. 1856 ई. में।

2. प्रार्थना समाज के संस्थापक कौन थे?

उ0. आत्मा राम पाण्डूरंग।

3. आर्य समाज के संस्थापक कौन थे?

उ0. स्वामी दयानन्द।

4. आर्य समाज की प्रमुख पुस्तक का नाम क्या है?

उ0. सत्यार्थ प्रकाश।

5. राम कृष्ण मिशन की स्थापना किसने की?

उ0. स्वामी विवेकानन्द।

6. बाल विवाह को कब अवैध करार दिया गया?

उ0. 1891।

7. 1893 ई. में अमेरिका में सर्वधर्म सम्मेलन का प्रतिनिधित्व किसने किया?

उ0. स्वामी विवेकानन्द।

8. शान्ति निकेतन की स्थापना किसने की?

उ0. रविन्द्र निकेतन की स्थापना किसने की?

9. तेहजीब–उल–अखलाक पत्रिका किसने निकाली?

उ0. सर सैय्ययद अहमद खाँ।

10. संवाद कौमुदी नामक पत्रिका किसने निकाली।

उ0. राजा राम मोहन राय।

11. नीची जातियों को हिन्दू धर्म में वापस लाने के लिए आर्य समाज ने कौन सा आन्दोलन चलाया।

उ0. शुद्धी आन्दोलन।

12. अलीगढ़ आन्दोलन के संस्थापक कौन थे?

उ0. सर सैय्यद अहमद खाँ।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. राजा राम मोहन राय का जन्म हुआ?

(क) 1772 (ख) 1765 (ग) 1778 (घ) 1782

उ0. (क) 1772

2. ब्राह्मण समाज की स्थापना हुई?

(क) 1818 (ख) 1882 (ग) 1835 (घ) 1838

उ0. (ख) 1828

3. स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ?

(क) 1814 (ख) 1818 (ग) 1824 (घ) 1832

उ0. (ग) 1824

4. गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना की?

(क) स्वामी दयानन्द ने (ख) महात्मा हंसराज ने (ग) स्वामी श्रद्धानन्द ने (घ) लाला लाजपत राय ने

उ0. (ग) स्वामी श्रद्धा नन्द ने।

5. मुहम्मडन ऐजुकेशन कांफ्रेंस की नीवं किसने रखी?

(क) सैय्यद अहमद खाँ (ख) अबुल कलाम आजाद ने (ग) आगा खां ने (घ) मुहम्मद अली जिन्नाह

उ0. (क) सैय्यद अहमद खाँ

6. 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना हुई?

(क) बम्बई में (ख) कलकत्ता में (ग) दिल्ली में (घ) पूना में

उ0. (क) बम्बई में।

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		**ब**
1.	ब्रह्म समाज का संस्थापक	1.	स्वामी दयानन्द
2.	भारत में ब्रह्म समाज का सुप्रसिद्ध नेता	2.	स्वामी विवेकानन्द
3.	प्रार्थना समाज का सुप्रसिद्ध प्रवर्त्तक	3.	बाबा राम सिंह
4.	'सत्यार्थ प्रकाश' का लेखक	4.	श्रीमती ऐनी बेसन्ट
5.	गुरूकुल कांगड़ी का संस्थापक	5.	भाई गुरमुख सिंह
6.	रामकृष्ण मिशन का प्रवर्त्तक	6.	सर सैय्यद अहमद खां
7.	भारत में थियोसोफीकल सोसायटी के सिद्धान्त की प्रचारिका	7.	स्वामी श्रद्धानन्द
8.	अलीगढ़ आन्दोलन का प्रवर्त्तक	8.	राजा राम मोहन राय
9.	नामधारी आन्दोलन का प्रवर्त्तक	9.	राजा राम मोहन राय
10.	लाहौर की सिंह सभा का संस्थापक	10.	केशन चन्द्र सेन

उत्तर : **1 (8), 2 (10), 3(9), 4 (1), 5 (7), 6 (2), 7 (4), 8 (6), 9 (3), 10 (5)।**

Chapter - 12

1. 1857 की क्रांति के समय दिल्ली का सम्राट कौन था?

   उ0. बहादुर शाह जफर।

2. स्वतंत्रा संग्राम का सबसे पहला शहीद कौन था?

   उ0. मंगल पाण्डे।

3. 1857 की क्रांति की निश्चित तिथि कौन सी थी?

   उ0. 31 मई।

4. कानपुर में विद्रोह का नेतृत्व किसने किया?

   उ0. नाना साहिब ने।

5. लक्ष्मी बाई किस स्थान पर वीर गति को प्राप्त हुई?

   उ0. ग्वालियर में।

6. महारानी विक्टोरिया ने राज घोषण कब की?

   उ0. नवम्बर 1858 ई. को।

7. कम्पनी प्रशासन में ऊँची पदवी किन को दी जाती थी?

उ0. अंग्रेजों को।

8. भारतीय समाज सेवा एक्ट कब पास हुआ?

उ0. 1857 ई. में

9. 1857 की क्रांति का आरम्भ किस छावनी में हुआ?

उ0. बैरकपुर से।

10. तांत्या टोपे को पकड़वाने में किस साथी का हाथ था?

उ0. मान सिंह का।

11. 1857 ई. की क्रांति के बाद गवर्नर जनरल को क्या कहा जाने लगा?

उ0. वायसराय।

12. लखनऊ में विद्रोह की नेता कौन थी?

उ0. बेगम हजरत महल।

13. बिहार में विद्रोह का नेता कौन था?

उ0. ठाकुर कुवंर सिंह।

14. नाना साहिब किसका दत्तक पुत्र था?

उ0. पेशवा बाजीराव का।

बहुविकल्पिय प्रश्न

1. 1857 की क्रांति में नामांकित कौन सा नेतृत्व मध्य प्रेदश में सक्रिय रहा?

(क) नाना साहिब (ख) तांत्या टोपे (ग) झांसी की रानी (घ) कुवंर सिंह

उ0. (ख) तांत्या टोपे

2. **मंगल पाण्डे को कब फांसी दी गई?**

(क) 29 मार्च 1857 (ख) 8 अप्रैल 1857 (ग) झांसी की रानी (घ) 5 जून 1857

उ0. (क) 8 अप्रैल 1857।

3. किस अंग्रेज अधिकारी ने झांसी पर आक्रमण किया?

(क) हैव लाक (ख) जान लारेंस (ग) नीस (घ) ह्यू रोज

उ0. (ग) ह्यू रोज।

4. बैरकपुर छावनी में असन्तुष्टों का नेतृत्व किसने किया?

(क) बहादुरशाह जफर (ख) मंगल पाण्डे (ग) कुवंर सिंह (घ) तांत्या टोपे

उ0. (ख) मंगल पांण्डे।

5. 1857 के विद्रोह का तत्कालिक कारण था।

(क) डलहौजी द्वारा भारतीय रियासतों का विलय

(ख) ईसाई धर्म का प्रचार

(ग) अंग्रेजों का भारतीयों के सामाजिक रीति रिवाजों में हस्तक्षेप

(घ) चर्बी वाले कारतूस।

उ. (घ) चर्बी वाले कारतूस।

मिलान सम्बन्धी प्रश्न

	अ		ब
1.	1857 के विद्रोह के लिये सबसे अधिक उत्तरदायी जनरल	1.	नाना साहिब
2.	अवध के ताल्लुकेदारों से कठोर व्यवहार करने वाला अंग्रेज अधिकारी	2.	बहादुरशाह जफर
3.	1857 के विद्रोह का पहला शहीद	3.	खान बहादुर खाँ
4.	अन्तिम मुगल सम्राट	4.	ह्यू रोज
5.	1857 में कानपुर में विद्रोह का नेता	5.	कैनिंग
6.	1857 में बरेली में विद्रोह का नेता	6.	डलहौजी
7.	रानी लक्ष्मी बाई को पराजित करने वाला अंग्रेज जनरल	7.	मंगल पाण्डे।
8.	1858 में नियुक्त भारत का पहला अंग्रेज जनरल	8.	जैकसन
9.	नामधारी आन्दोलन का प्रवर्त्तक	9.	राजा राम मोहन राय
10.	लाहौर की सिंह सभा का संस्थापक	10.	केशन चन्द्र सेन

उत्तर . 1 (6), 2 (8), 3(7), 4 (2), 5 (1), 6 (3), 7 (4), 8 (5)।

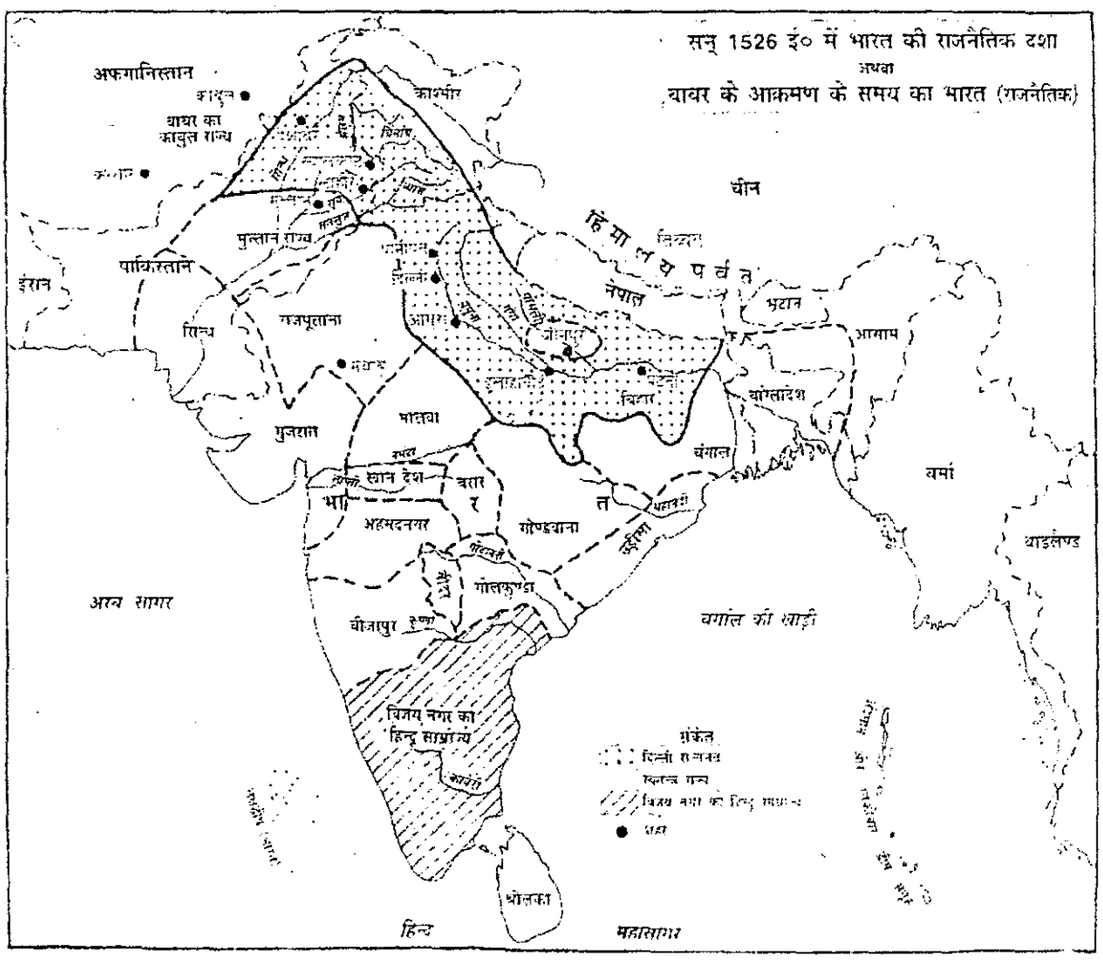

सन् 1526 ई० में भारत की राजनैतिक दशा
अथवा
बाबर के आक्रमण के समय का भारत (राजनैतिक)
अफगानिस्तान
बाबर का
काबुल राज्य
काश्मीर
चीन
हिमालय पर्वत
नेपाल
भूटान
आसाम
मुल्तान राज्य
पाकिस्तान
ईरान
सिन्ध
राजपूताना
आगरा
जौनपुर
बिहार
बांग्लादेश
बंगाल
बर्मा
थाइलैण्ड
मालवा
गुजरात
खान देश
बरार
भा र त
अहमदनगर
गोण्डवाना
गोलकुण्डा
बीजापुर
विजय नगर का
हिन्दु साम्राज्य
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
संकेत
श्रीलंका
हिन्द महासागर

मानचित्र 1

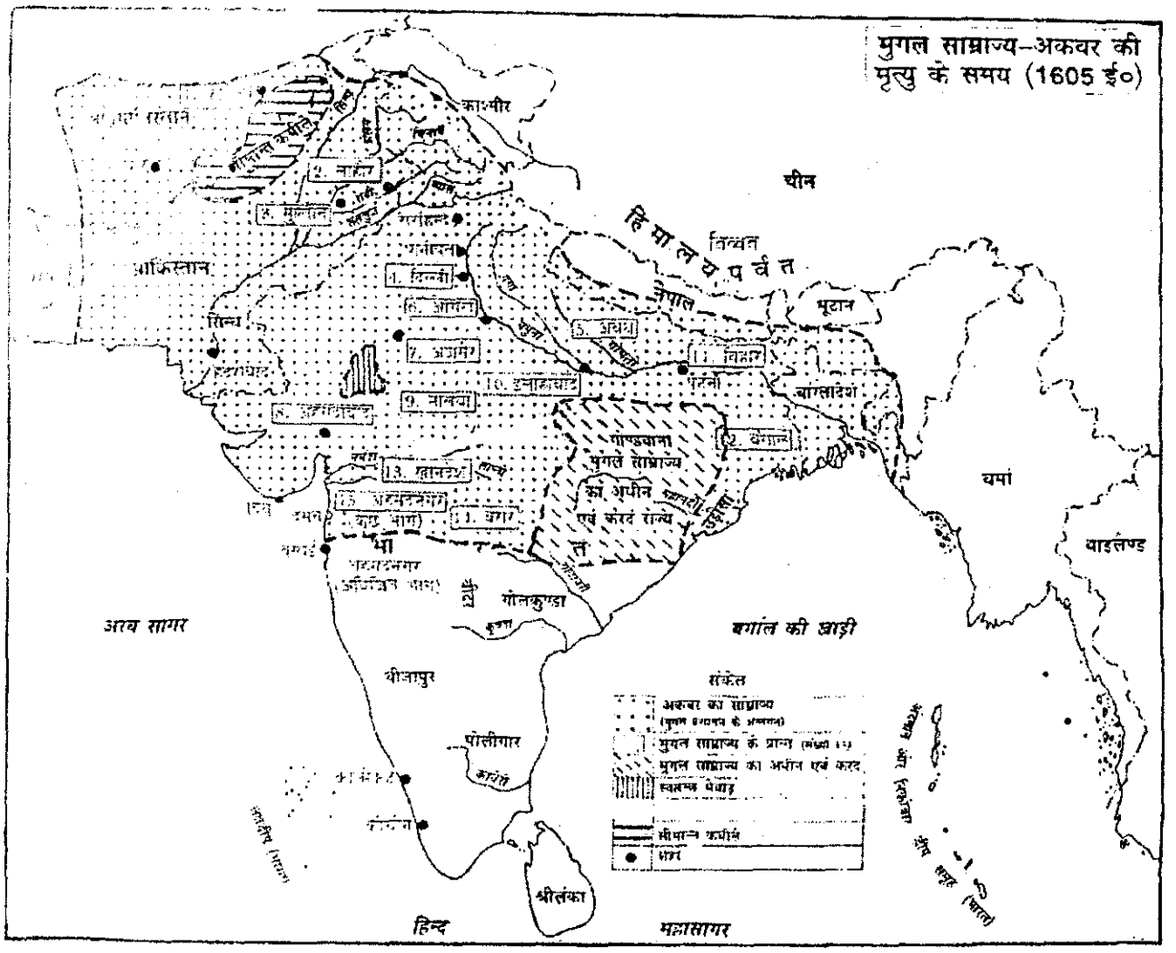

मुगल साम्राज्य–अकबर की
मृत्यु के समय (1605 ई०)
चीन
काश्मीर
तिब्बत
हि मा ल य प र्व त
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
बर्मा
थाइलैण्ड
1. दिल्ली
2. लाहौर
7. अजमेर
9. मालवा
10. इलाहाबाद
11. बिहार
12. बंगाल
13. खानदेश
गोण्डवाना
मुगल साम्राज्य
के अधीन
एवं करद राज्य
गोलकुण्डा
बीजापुर
पोलीगार
श्रीलंका
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिन्द
महासागर
संकेत
अकबर का साम्राज्य
मुगल साम्राज्य के प्रान्त
मुगल साम्राज्य का अधीन एवं करद
स्वतन्त्र मेवाड़

मानचित्र 2

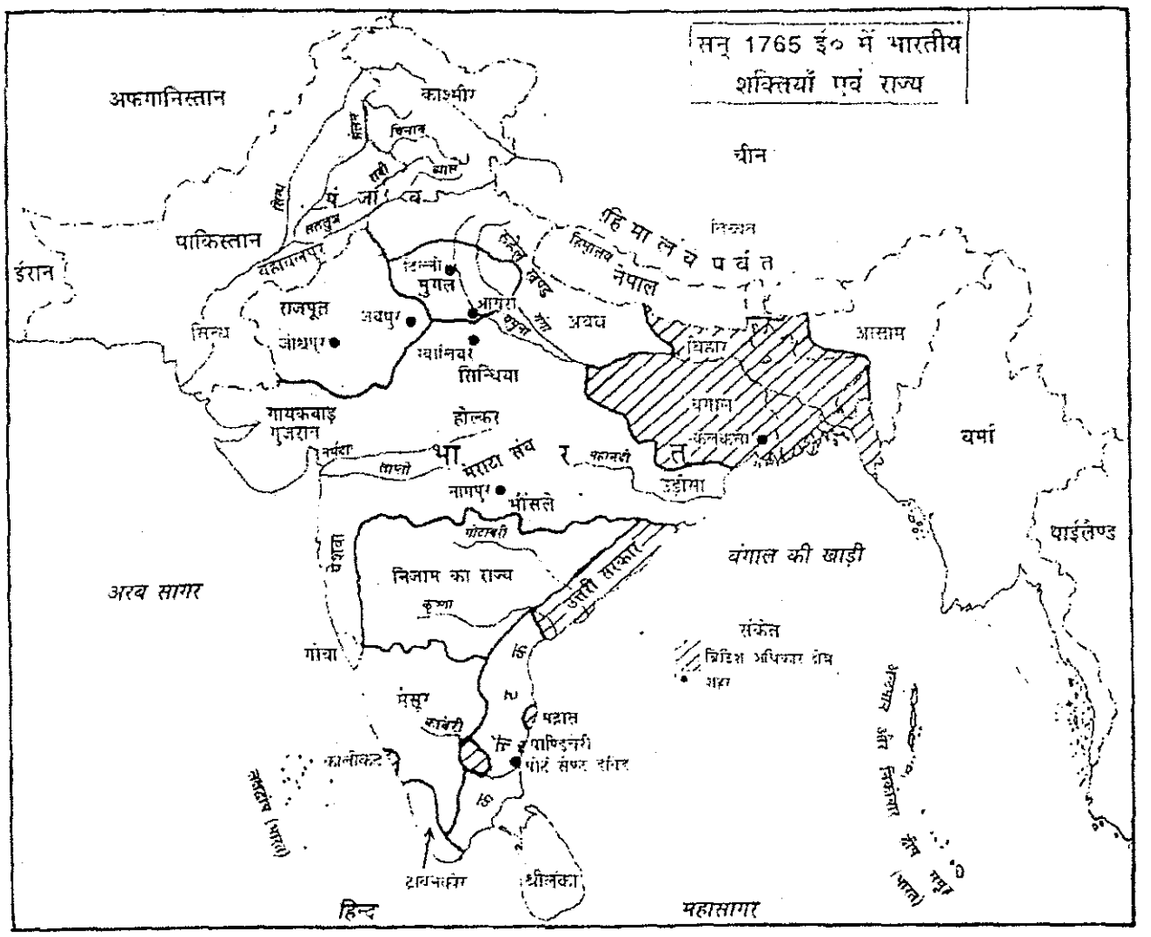

सन् 1765 ई० में भारतीय
शक्तियाँ एवं राज्य
अफगानिस्तान
काश्मीर
चीन
पाकिस्तान
ईरान
हिमालय पर्वत
नेपाल
राजपूत
जयपुर
जोधपुर
सिन्ध
दिल्ली
मुगल
आगरा
अवध
ग्वालियर
सिन्धिया
बिहार
बंगाल
कलकत्ता
आसाम
बर्मा
गायकवाड़
गुजरात
होल्कर
भारत
मराठा संघ
नागपुर
भोंसले
उड़ीसा
थाईलैण्ड
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
निजाम का राज्य
उत्तरी सरकार
गोवा
मैसूर
मद्रास
पाण्डिचेरी
कालीकट
श्रीलंका
संकेत
हिन्द
महासागर

चित्र 3

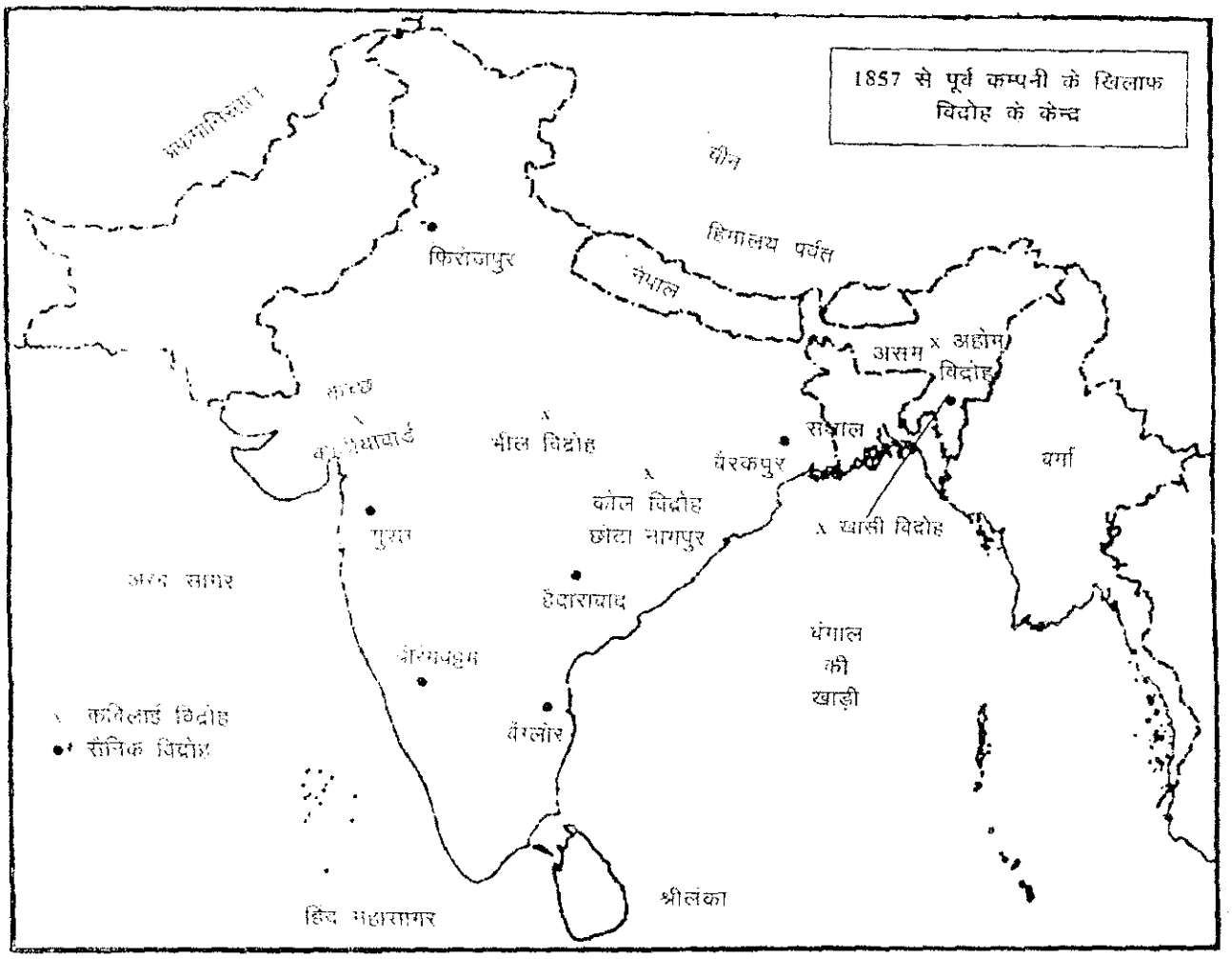

1857 से पूर्व कम्पनी के खिलाफ
विद्रोह के केन्द्र
चीन
हिमालय पर्वत
नेपाल
फिरोजपुर
असम
x अहोम
विद्रोह
x
भील विद्रोह
बैरकपुर
x
कोल विद्रोह
छोटा नागपुर
x खासी विद्रोह
बर्मा
हैदराबाद
बंगाल
की
खाड़ी
बैंगलोर
श्रीलंका
हिंद महासागर
x कबिलाई विद्रोह
• सैनिक विद्रोह

मानचित्र 4

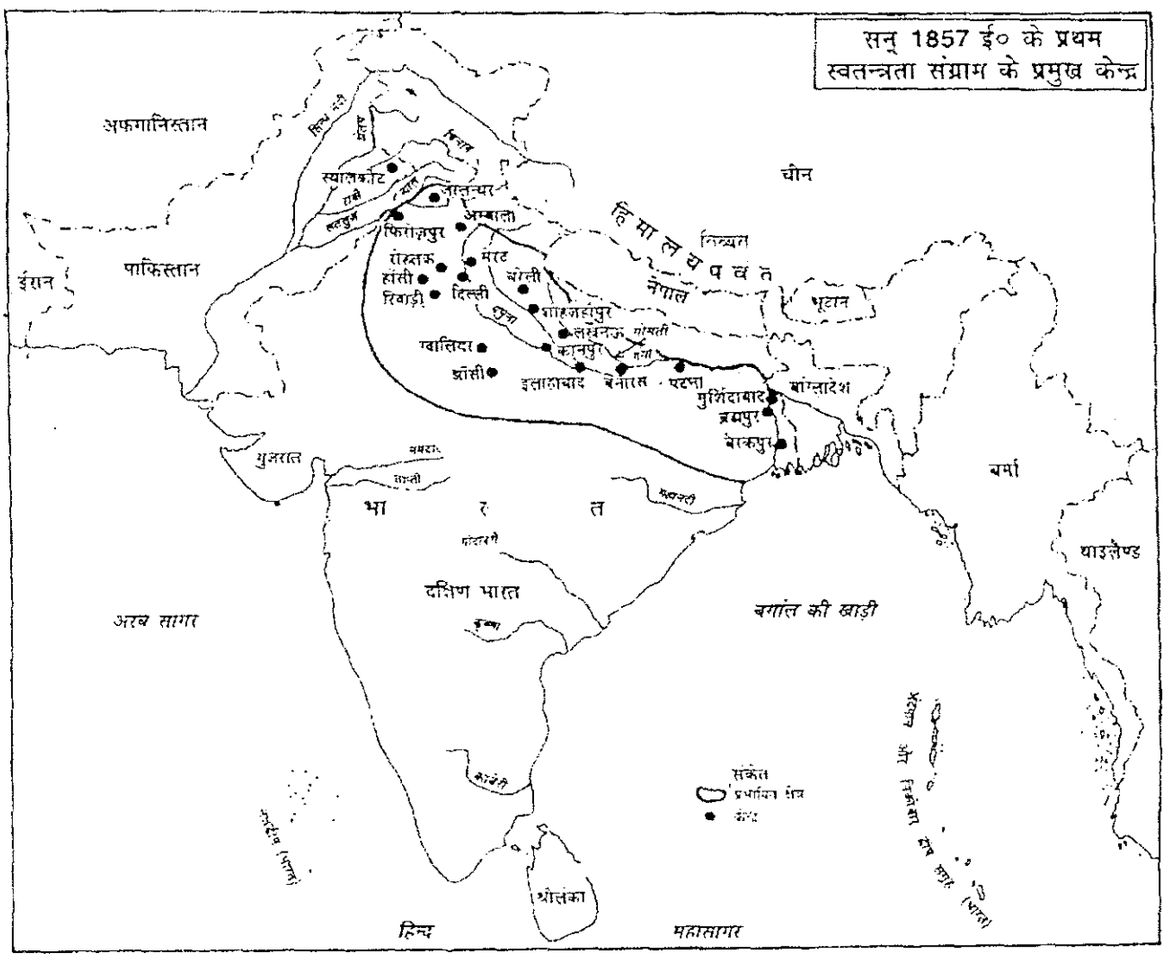

सन् 1857 ई० के प्रथम
स्वतन्त्रता संग्राम के प्रमुख केन्द्र
अफगानिस्तान
चीन
पाकिस्तान
ईरान
हिमालय पर्वत
तिब्बत
नेपाल
भूटान
स्यालकोट
जालन्धर
अम्बाला
फिरोजपुर
रोहतक
हांसी
मेरठ
बरेली
रिवाड़ी
दिल्ली
शाहजहांपुर
लखनऊ
कानपुर
ग्वालियर
झांसी
इलाहाबाद
बनारस
पटना
मुर्शिदाबाद
बांग्लादेश
बैरकपुर
बर्मा
गुजरात
भारत
थाइलैण्ड
दक्षिण भारत
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
संकेत
केन्द्र
श्रीलंका
हिन्द महासागर

मानचित्र 5

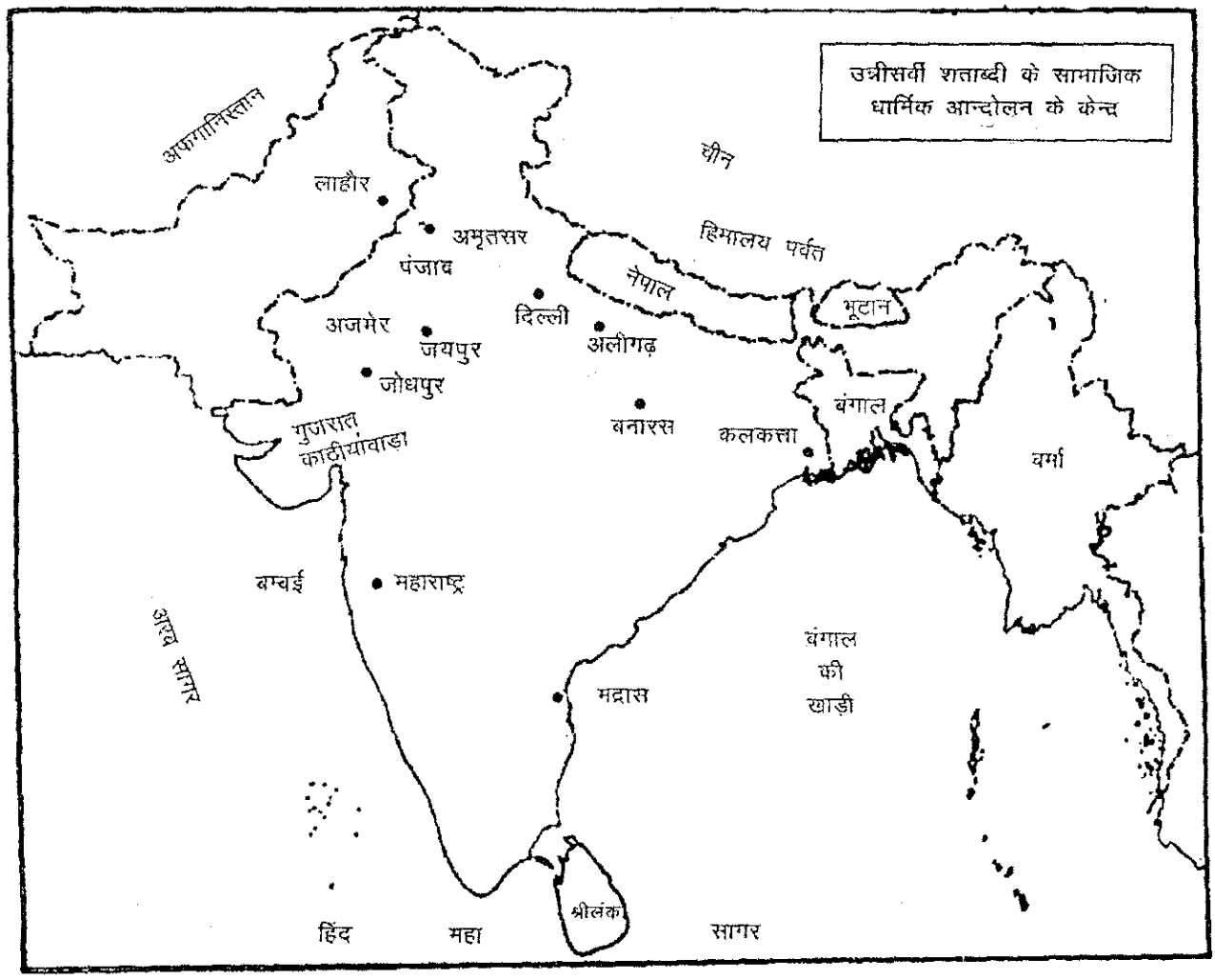
उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक धार्मिक आन्दोलन के केन्द्र
अफगानिस्तान
लाहौर
अमृतसर
पंजाब
चीन
हिमालय पर्वत
नेपाल
भूटान
अजमेर
जयपुर
दिल्ली
अलीगढ़
जोधपुर
बंगाल
बनारस
कलकत्ता
गुजरात
काठीयावाड़ा
बर्मा
बम्बई
महाराष्ट्र
अरब सागर
बंगाल
की
खाड़ी
मद्रास
श्रीलंका
हिंद
महा
सागर

मानचित्र 6